(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

मूलग्रन्थ ग्रन्थ कर्ता

परमपूज्य श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

द्रव्यसंग्रह

की प्रश्नोत्तरी टीका

टीका कर्ता

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री, न्यायतीर्थ

पूज्य श्री गुरुवर्य्य १०५ मनोहर जी वर्णी

श्रीमत्सहजानन्द जी महाराज

सम्पादक

डॉ0 नानकचन्द जैन 'समरस'

सांतौल हाऊस, ठठेरवाड़ा, मेरठ शहर

प्रकाशक

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५, एं, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

पंचम संस्करण १००० सन् १९९९ (लागत रु ३०)

।। आत्म-कीर्तन ।।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी

"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।। टेक ।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह रागवितान।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।। १ ।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।। २ ।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुःख की खान।
निज को निज परको पर जान, फिर दुःख का नहिं लेश निदान ।। ३ ।।

जिन शिव ब्रह्मा ईश्वर राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचूं निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ।। ४ ।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।। ५ ।।

—□—

(धर्म-प्रेमी बन्धुओ ! इस आतमकीर्तन का निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों से भारत में अनेक स्थानों पर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिये ।)

१—शास्त्र सभा के अनन्तर या दो शास्त्रों के बीच में श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूप में।

२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमण के अवसर पर।

३—पाठशाला, शिक्षा सदन, विद्यालय लगने के समय छात्रों द्वारा।

४—सूर्योदय से एक घण्टा पूर्व परिवार में एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा।

५—किसी भी आपत्ति के समय या अन्य समय शान्ति के अर्थ स्वरुचि के अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छन्द का पाठ शन्ति-प्रेमी बन्धुओं द्वारा।

सम्पादकीय (पंचम संस्करण)

आध्यात्मरसिक आदरणीय मुमुक्षु वृन्द,

यह श्री 'द्रव्य संग्रह' नाम का ग्रन्थ नंदी संघ के दिगम्बर जैन मुनीश्वर परम पूज्य प्रातः स्मरणीय १०५ श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती की अद्वितीय रचना है जिसकी सरल भाषा में प्रश्नोत्तरी टीका गुरुवर्य्य १०५ सहजानंद वर्णी जी महाराज ने की। इस ग्रन्थ में काल अर्थात् पर्याय की बहुलता से द्रव्यों का वर्णन है। सन् १९६७ में मेरी प्रार्थना पर पूज्य गुरुवर्य्य ने इसका द्वितीय संस्करण छपवाने की अनुमति दी थी। मेरे ऊपर महाराजश्री का अति वात्सल्य था उनका क्षयोपशम ज्ञान गजब था। वे सरल परिणामी एवं आध्यात्म विद्या व कर्म फिलौसोफी, न्याय और आगम के प्रकांड विद्वान थे।

उनकी लेखनी चलती ही रहती थी। वे मितव्ययी थे यहाँ तक कि जब कापी और कागज बहुत सस्ता तब भी उन्होंने टैनो की कापियों को रबड़ से मिटा मिटाकर अपनी लेखनी से कितने ही अनमोल ग्रन्थ लिखे जिनमें से कुछ अब भी छपने को बाकी हैं। उनकी टीका करने की शैली सभी विद्वानों से भिन्न थी। उनकी सिद्धान्त की पकड़ अति सूक्ष्म थी मोक्ष महल की रचना के वे कुशल कारीगर थे, उन्होंने प्रत्येक श्लोक की टीका के अन्त में में आचार्यों के मर्म को जीवन में उतारने व स्वभाव में घटाने पर बल दिया है।

द्रव्य संग्रह की प्रत्येक गाथा के अन्तिम चरण में समयसार व प्रवचनसार की सप्तदशांगी टीकाओं की ही भाँति प्रयोगात्मक विधि का रभूतपूर्व वर्णन है जो अत्यन्त हृदय ग्राही एवं दिलचस्प है। चारित्र को आगम की आज्ञा के अनुकूल कैसे ढाले और निकट भविष्य में ही निज प्रयत्न पूर्वक कैसे अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त करके सहज सुखी होवें यह ही उनकी टीकाओं का मुख्य उद्देश्य रहा है।

उन्होंने कभी भी आचार्यों के भावों में फेर बदल नहीं किया है बल्कि उनको व्याकरण और न्याय से सिद्ध करके मुमुक्षु को बहकने से रोका है। इसका ज्वलंत उदाहरण है नियमसार की ५३ वीं गाथा की टीका पर आज से तीस वर्ष पहले परम पूज्य आचार्य पद्मप्रभ मलधारी देव के समर्थन में उनके हेतुयुक्त एवं सारगर्भित प्रवचन।

उन्होंने जो कुछ मुझे दिया है मैं उससे उऋण नहीं हो सकता हूँ जन्म-जन्मान्तर में काम आने वाणी विधि का उपयोग उनकी ही कृपा का फल है।

मेरा सौभाग्य है कि सहजानन्द शास्त्र माला के प्रबन्धक व ट्रस्टीगण ने मुझे निस्वार्थ सेवा का अवसर दिया है उसके लिये मैं उनका अभारी हूँ। मैं तन मन धन से शास्त्रमाला के लिये समर्पित हूँ। पर्यायान्वयी जीव द्रव्य को समझकर एक विशुद्ध अभेद चैतन्यस्वरूप जीव तत्त्व पर लक्ष्य करके निर्मल ज्ञान आनन्द का प्रवाह प्रत्येक आत्मा में प्रवाहित हो एवं सम्पूर्ण आत्म बल प्रगट करने की क्षमता रखने वाला ज्ञान समस्त आत्माओं में प्रकट हो। इस पवित्र भावना के साथ——

समस्त मुमुक्षुगण का सेवक
डॉ० नानक चन्द जैन 'समरस'
सांतौल हाऊस, ठठेरवाड़ा, (मेरठ)

१-४-१९९२

संक्षिप्त विषय परिचय

प्रथम अध्याय—गाथा २७, प्रश्नोत्तर ८३०, वर्णन—उद्देश्यसाधक मङ्गलाचरण, जीव स्वरूप के ६ अधिकार, जीव का निरुक्तत्यर्थ, जीव की उपयोगिता, उपयोग के भेद प्रभेदों का विषय विवरण, जीव का लक्षण, अमूर्तित्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, स्वदेह परिमाणत्व, संसारित्व के भेद-प्रभेद, चौदह जीव समास, शुद्ध जीव के भेद, सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्व, अजीवद्रव्यों के भेद पुद्गल पर्यायें, धर्म, अधर्म आकाश और उसके भेद, कालद्रव्य का स्वरूप, कालद्रव्य की संख्या अस्तिकाय की संख्या, अस्तिकाय का स्वरूप, द्रव्यों के प्रदेशों का परिमाण, अणु के अस्तिकायपना, प्रदेशों के स्वरूप का वर्णन।

द्वितीय अध्याय—गाथा ११, प्रश्नोत्तर ८३४, वर्णन—नव तत्त्वों के नाम, आस्रवका स्वरूप, भावास्रवों का विशेष विवरण, बन्धतत्त्व का स्वरूप, द्रव्य बंध के भेद व कारण, संवरता का स्वरूप, भावसंवर का विस्तृत विवरण, निर्जरातत्त्व का स्वरूप, मोक्षतत्त्व का स्वरूप, पुण्य पाप तत्त्व का स्वरूप।

तृतीय अध्याय—गाथा २०, प्रश्नोत्तर ४७४, वर्णन—निश्चयरत्नत्रय, इसे एक बात का कहने का कारण, सम्यग्दर्शन के गुण व दोष, सम्यग्ज्ञान का स्वरूप, दर्शन का स्वरूप, दर्शन ज्ञान की सहभाविता क्रमभाविता, सम्यक्चारित्र, अभेद सम्यक्चारित्र, ध्यान का स्वरूप, ध्यान की सिद्धि का उपाय, पदस्थ ध्यान, अरहंतपरमेष्ठी का स्वरूप, सिद्धपरमेष्ठी का स्वरूप, आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप, उपाध्यायपरमेष्ठी का स्वरूप, निश्चयध्यान व परमध्यान का स्वरूप व उपाय, अन्तिम उपदेश, अन्तिम कथन।

परमात्म आरती

ॐ जय जय अविकारी।

जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी।
हितकारी भयकारी, शाश्वत स्वविहारी। ॐ ॥ टेक ॥

काम क्रोध मद लोभ न माया, सरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी। ॐ ॥ १ ॥

हे स्वभावमय जिन तुम चीना, भव संतति टारी।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी। ॐ ॥ २ ॥

परसंबंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी।
परम ब्रह्मका दर्शन, चहुँगति दुखहारी। ॐ ॥ ३ ॥

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनि मन संचारी।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचि गुन भंडारी। ॐ ॥ ४ ॥

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शान्तिचारी।
टलैं टलैं सब पातक, परबल बलधारी। ॐ ॥ ५ ॥

पूज्यपाद श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिकृत

द्रव्यसंग्रह

की प्रश्नोत्तरी टीका

मंगलाचरण

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

अन्वय—जेण जिणवरवसहेण जीवमजीवं दव्वं णिद्दिट्ठं देविंदविंदवंदं तं सव्वदा सिरसा वंदे ।

अर्थ—जिन जिनवरवृषभ (तीर्थंकरदेव) ने जीव व अजीव द्रव्यका निर्देश किया है, देवेन्द्रोंके समूह द्वारा वंदनीय उन प्रभुको सदा सिर नमाकर वंदन करता हूं ।

प्रश्न १—जिन्हें वंदन किया है उनको जीव अजीव द्रव्यके निर्देष्टा—इस विशेषणसे कहनेका क्या कोई विशेष प्रयोजन है ?

उत्तर—यह विशेषण ग्रन्थनामसे सम्बन्ध रखता है । इस ग्रन्थमें द्रव्योंका वर्णन करना है अतः द्रव्यके निर्देष्टाको वंदित किया है ।

प्रश्न २—इस विशेषणसे क्या कुछ ग्रन्थकी भी विशेषता होती है ?

उत्तर—जिन द्रव्योंका वर्णन इस ग्रन्थमें करना है उन द्रव्योंका निर्देष्टा निर्दोष आप्त बतलानेसे ग्रन्थकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है ।

प्रश्न ३—द्रव्यके नामके लिये यहाँ "जीव अजीव" इतने शब्दोंसे क्यों कहा ?

उत्तर—जीव व अजीवके परिज्ञान बिना स्वभावकी प्राप्ति असम्भव है अतः निजके स्वभाव जाननेके प्रयोजनको जीव शब्दसे बताया है व अन्य जिन सबोंसे लक्ष्य हटाना है उनको अजीव शब्दसे कहा है ।

प्रश्न ४—मूर्त और अमूर्त—इस प्रकार भी तो द्रव्यके दो प्रकार हैं, तब "मुत्तममुत्तं दव्वं" इस प्रकार क्यों नहीं कहा गया ?

उत्तर—मूर्त अमूर्त कहनेपर अमूर्त आत्मा मूर्तसे तो पृथक् हो गया, किन्तु अमूर्त अन्य

४ द्रव्योंसे पृथक् प्रतीत नहीं हो पाता, अतः केवल आत्माके ध्यानका मार्ग बनानेके उद्देश्यसे रचित इस ग्रन्थमें जीव अजीव शब्दका प्रयोग किया है।

प्रश्न ५—जीव अजीवमें जीवका पहिले नाम क्यों रक्खा ?

उत्तर—सब द्रव्योंमें जीव ज्ञाता होनेसे प्रधान है तथा वक्ता श्रोता सभी जीव हैं। जीवको ही कल्याण करना है, अतः जीवका पहिले नाम रक्खा है।

प्रश्न ६—जीव और अजीवका लक्षण क्या है ?

उत्तर—जीव अजीवके सम्बंधमें इसी ग्रन्थमें आगे विस्तारसे वर्णन होगा, अतः यहाँ न कहकर अन्य आवश्यक बातें कही जायेंगी।

प्रश्न ७—श्लोकमें व ग्रन्थनाममें "दव्वं" शब्द क्यों कहा गया, तच्चं (तत्त्व) आदि शब्द भी तो कहा जा सकता था ?

उत्तर—वस्तुको पदार्थ, अस्तिकाय, द्रव्य, तत्त्व—इन चार शब्दोंसे कहा जाता है। इनमें द्रव्यदृष्टिसे तो पदार्थ, क्षेत्रदृष्टिसे अस्तिकाय, कालदृष्टिसे द्रव्य, भावदृष्टिसे तत्त्व नाम पड़ता है। सो इस ग्रंथमें कालकी (पर्याय) बहुलतासे वस्तुका वर्णन है, अतः दव्वं शब्द कहा है।

प्रश्न ८—जिणवरवसहेण इतना बड़ा शब्द क्यों रक्खा, जब तीर्थंकर जिन भी कहलाते हैं, सो मात्र जिन शब्दसे भी काम चल जाता ?

उत्तर—जिणवरवसह (जिनवरवृषभ) शब्दका अर्थ है जो मिथ्यात्व बैरीको जीते सो जिन अर्थात् सम्यग्दृष्टि गृहस्थ व मुनि उन सबमें श्रेष्ठ गणधर व उनसे भी श्रेष्ठ तीर्थङ्कर। इन तीन शब्दोंसे परम्परा भी सूचित कर दी गई है कि सिद्धान्तके मूलग्रन्थकर्ता तो तीर्थंकर देव हैं अर्थात् इनकी दिव्यध्वनिके निमित्तसे सिद्धांतका प्रवाह चला, उसके बाद उत्तरग्रन्थकर्ता गणधर देव हुए, फिर अन्य मुनिजन हुए, बादमें गृहस्थ पंडितोंने भी उसका प्रवाह बढ़ाया।

प्रश्न ९—यहाँ "णिद्दिट्ठं" शब्द ही क्यों दिया, रचित आदि क्यों नहीं दिया ?

उत्तर—किसी भी सत्का रचने वाला कोई नहीं है। जीव अजीव द्रव्य सभी स्वतंत्रता से अपना अस्तित्व रखते हैं; तीर्थंकर परमदेवने तो पदार्थ जैसे अवस्थित हैं वैसा निर्देश मात्र किया (दर्शाया) है। इससे अकर्तृत्व सिद्ध हुआ।

प्रश्न १०—देविंदविंदवंदं इस विशेषणसे प्रभुकी निज महिमा तो कुछ भी नहीं हुई, फिर इस विशेषणसे क्या द्योतित किया ?

उत्तर—जिन्हें देवेन्द्रोंका सर्वसमूह वंदन करता हो, उनमें उत्कृष्ट सच्चाई अवश्य है, सो इस विशेषणसे उत्कृष्ट सच्चाई सुव्यक्त की; तथा वंदनाका प्रकरण है उसमें केवल यही बात नहीं है कि मैं वंदना करता हूं, किन्तु उन्हें तीन लोक वंदन करता है। कहीं मैं नया मार्ग नहीं कर रहा हूं, यह द्योतित होता है।

प्रश्न ११—वंदन कितने प्रकारसे होता है ?

उत्तर—जितनी दृष्टियां हैं उतने प्रकारसे वंदन हैं। उनको संक्षिप्त करनेपर ये पाँच दृष्टियां प्राप्त होती हैं—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्धनिश्चयनय, (३) एकदेशशुद्धनिश्चयनय, (४) सर्वशुद्धनिश्चयनय, (५) परमशुद्धनिश्चयनय।

प्रश्न १२—व्यवहारनयसे किसको वंदन किया जाता है ?

उत्तर—व्यवहारनयसे अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतशक्ति-सम्पन्न घातिकर्मक्षयसिद्ध तीर्थंकर परमदेवको नमस्कार किया है।

प्रश्न १३—अशुद्धनिश्चयनयसे किसको वंदन हुआ ?

उत्तर—तीर्थंकर परमदेवके लक्ष्यके निमित्तसे जो प्रमोद व भक्तिभाव हुआ है उस भावको उस भावमें परिणत होने रूप वंदन हुआ है।

प्रश्न १४—एकदेशशुद्धनिश्चयनयसे किसका वंदन हुआ ?

उत्तर—इस नयसे निज आत्मामें ही जो शुद्धोपयोगका अंश प्रकट हुआ है उसके उपयोगरूप वंदन हुआ है।

प्रश्न १५—सर्वं शुद्धनिश्चयनयसे किसको वंदन हुआ है ?

उत्तर—इस नयसे पूर्ण शुद्धपर्याय गृहीत होती है, वह वंदकके है नहीं और जब होगी तब केवल शुद्ध परिणमन हैं, वहाँ मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहते हैं।

प्रश्न १६—परमशुद्ध निश्चयनयसे किसको नमस्कार हुआ ?

उत्तर—यह नय विकल्पातीत अनादिनिधन स्वतःसिद्ध चैतन्यमात्रको देखता है, वहाँ वन्द्यवंदक भाव नहीं है।

प्रश्न १७—इस श्लोकमें किस नयसे वंदन हुआ है ?

उत्तर—शब्द-प्रणालीसे तो व्यवहारनयसे वंदन हुआ और परमशुद्ध निश्चयनय व सर्वशुद्धनिश्चयनयको छोड़कर शेष अशुद्ध निश्चयनय व एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे पूर्वोक्त वंदन अन्तर्निहित है।

प्रश्न १८—यहाँ सर्वदा वंदन करना लिख रहे हैं यह तो सिद्धांतविरुद्ध भाव है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि यदि सर्वदा कुछ चाहता है तो ज्ञानमात्र परिणमन ही चाहता है ?

उत्तर—यहाँ सर्वदाके कालको सीमाके भीतर ही लेना चाहिये अर्थात् जब तक निर्विकल्प स्थितिके सन्मुख नहीं हुआ तब तक आपका स्मरण वंदन रहे। जब तक अजीवसे पृथक् निज जीवस्वरूपकी निर्विकल्प उपलब्धि न हो तब तक ध्यान रहे।

प्रश्न १९—सिरसा शब्द देनेकी कोई विशेषता है क्या ?

उत्तर—सिर श्रद्धाकी हाँ के साथ ही झुकता है, इससे मनकी संभाल सूचित हुई। अन्तर्जल्पके साथ सिर नमता है, इससे वचनकी संभाल हुई। कायकी संभाल तो प्रकट व्यक्त

है। इस तरह सिरसा इस शब्दसे मन, वचन, काय तीनोंको संभालकर वंदन करना सूचित हुआ।

प्रश्न २०—द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनोंसे रहित परमात्मा तो सिद्ध परमेष्ठी हैं जो अत्यन्त उत्कृष्ट हैं उन्हें नमस्कार करना चाहिये था ?

उत्तर—यद्यपि यह सत्य है कि सर्वोत्कृष्ट देव सिद्ध परमेष्ठी हैं और वे आराधनीय हैं तथापि उनका भी परिज्ञान एवं विविध सम्यग्ज्ञान श्री जिनेन्द्रदेवके प्रसादसे हुआ है तो उनके उपकारके स्मरणके लिये अर्हंत परमेष्ठीको नमस्कार किया है तथा जितने भी सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं वे भी पहिले अरहंत परमेष्ठी थे, सो उनकी पूर्वावस्थाके नमस्कारमें सिद्धप्रभु का नमस्कार तो सिद्ध ही है।

प्रश्न २१—विवेकी जनोंकी शासनप्रवृत्ति सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन, शक्यानुष्ठान बिना होती नहीं है। यहां ये चारों किस प्रकार हैं ?

उत्तर—सम्बन्ध तो यहाँ व्याख्यान व्याख्येयका है। व्याख्यान तो द्रव्य व परमात्म-स्वरूप आदिके विवरणका है और व्याख्येय उसके वाचक सूत्र हैं। अभिधेय परमात्मस्वरूप आदि वाच्य अर्थ हैं। प्रयोजन सब द्रव्योंका परिज्ञान है और निश्चयसे ज्ञानानंदमय निज स्वरूपका संवेदन, ज्ञान है और अन्तमें पूर्ण शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति है। शक्यानुष्ठान तो यह है ही, क्योंकि ज्ञानमय आत्मा ज्ञानरूप मोक्षमार्गको साधे, इसमें कोई कठिनाई भी नहीं है।

प्रश्न २२—क्या ग्रन्थके आदिमें मंगलाचरण करना आवश्यक है ?

उत्तर—यद्यपि परमात्माका व्याख्यान स्वयं मंगल है तथापि जिनेन्द्रदेवके मूल परोप-कारसे सन्मार्गको पानेवाले अंतरात्मासे उनका स्मरण हुए बिना रहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि महापुरुष निरहंकार और कृतज्ञ होते हैं।

प्रश्न २३—मंगलाचरणविधानसे क्या अन्य भी कोई फल व्यक्त होते हैं ?

उत्तर—मंगलाचरणके अन्य भी फल हैं—१–नास्तिकताका परिहार। २–शिष्टाचार की पालना। ३–विशिष्ट पुण्य। ४–शास्त्रकी निर्विघ्न समाप्ति। ५–कृतज्ञताका विकास। ६–निरहंकारताकी सूचना। ७–ग्रन्थकी प्रामाणिकता। ८–ग्रन्थ पढ़ने सुनने वालोंकी श्रद्धाकी वृद्धि आदि।

इस प्रकार श्रीमज्जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करके श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य अब जीवद्रव्यका साधिकार वर्णन करते हैं—

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोढ्ढगई॥२॥

अन्वय—सो, जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो भोत्ता संसारत्थो सिद्धो

विस्ससोड्ढगई ।

अर्थ—वह जीव जीने वाला है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है, कर्ता है, अपने देहके बराबर है, भोक्ता है, संसारमें स्थित है, सिद्ध है और स्वभावसे ऊर्ध्वगमन वाला है ।

प्रश्न १—अन्वयमें सर्वप्रथम 'सो' शब्दसे तभी अर्थ ध्वनित होता जब कि पहले जीवके बारेमें कुछ कह आये होते । यहाँ 'सो' शब्द कैसे दे दिया ?

उत्तर—यद्यपि 'सो' शब्द सिद्धोंके बाद ठीक है, क्योंकि जो ऐसा विशिष्ट है वह स्वभावसे ऊर्ध्वगमन वाला है तथापि अर्थमें साथ साथ नव अधिकारोंको स्पष्ट करनेके लिये सो शब्द पहिले दिया है ।

प्रश्न २—'सो' शब्दसे जीवका ग्रहण कैसे कर लिया ?

उत्तर—इसके कई हेतु ये हैं—१–नमस्कार गाथामें पहिले जीवद्रव्य कहा है, उसके सम्बन्धमें यह उसके बादकी गाथा है । २–इस गाथामें दिये हुए विशेषण स्पष्टतया जीवके हैं । ३–इस ग्रन्थमें अति मुख्यतया जीवद्रव्यका वर्णन है । सर्व द्रव्योंके वर्णनमें जीवका वर्णन मुख्य होता है ।

प्रश्न ३–जीने वाला है, इसका भाव क्या है ?

उत्तर–इस विशेषणको व अन्य सभी विशेषणोंको समझनेके लिये अशुद्धनय व शुद्धनय दोनों दृष्टियोंसे परीक्षण करना चाहिये । जीव शुद्धनयसे तो शुद्ध चैतन्यप्राणसे ही जीता है जो शुद्ध चैतन्य अनादि अनंत अहेतुक व स्व-पर-प्रकाशक स्वभावी है । परन्तु अशुद्धनयसे अनादि कर्मबन्धके निमित्तसे अशुद्ध प्राणों (इन्द्रिय, बल, आयु, उच्छ्‌वास) करि जीता है ।

प्रश्न ४–इस विशेषणके देनेकी क्या सार्थकता है ?

उत्तर—जीवकी सत्ता माननेपर ही तो सर्व धर्म अवलम्बित हैं । कितनोंका तो ऐसा अभिप्राय है कि जीव कुछ नहीं है, यह सब तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके समागमका चमत्कार है, वे निज चैतन्यमें कैसे स्थिर होंगे, वे तो जिस किसी भी भावपूर्वक अंतमें मरण करके भी स्वसे च्युत रहकर भव-दुःख बढ़ावेंगे । इसलिये आस्तिकताकी सिद्धिके लिये वह विशेषण दिया है ।

प्रश्न ५—जीवको जैसा दोनों नयोंसे घटित किया है ये दोनों स्वरूप जीवमें क्या एक साथ हैं अथवा क्रमसे ?

उत्तर—ये दोनों स्वरूप एक साथ हैं, क्योंकि ध्रुव चैतन्य बिना व्यवहार प्राण कैसे बनेंगे और इस संसार दशामें व्यवहार प्राण प्रकट प्रतीत हो रहे हैं । हाँ इतनी बात अवश्य है कि कर्ममुक्त होनेपर वह व्यवहारसे (पर्यायसे) जो कि शुद्ध निश्चयनयस्वरूप है, चैतन्यकी शुद्ध व्यक्तिसे जीता है ।

प्रश्न ६—उक्त तीनों भावों में से किस भावपर दृष्टि देना लाभकारी है ?

उत्तर—इनमें से परमशुद्धनय (जिसे कि शुद्धनय शब्दसे कहा है) के विषयभूत शुद्ध चैतन्यपर दृष्टि देना आवश्यक है, क्योंकि अध्रुव और विकारी पर्यायपर दृष्टि देनेसे निर्विकल्पकता नहीं आती, किन्तु ध्रुव और अनादि अनंत अविकारी स्वभावपर दृष्टि देनेसे निर्विकल्पकताका प्रवाह संचरित होता है ।

प्रश्न ७—उवओगमओ शब्दका अर्थ कितने प्रकारसे है ?

उत्तर—यहाँ उपयोगसे अर्थ चैतन्यके परिणामोंसे है, अतः पर्यायप्ररूपक यह शब्द है, अतएव यहाँ परमशुद्धनिश्चयनयका प्रकार तो नहीं है, शेष दो प्रकार निश्चयनयके हैं—(१) अशुद्ध निश्चयनय, (२) शुद्ध निश्चयनय ।

प्रश्न ८—अशुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसे उपयोग वाला है ?

उत्तर—अशुद्ध निश्चयनयसे यह जीव क्षायोपशमिक ज्ञानोपयोग और क्षायोपशमिक दर्शनोपयोग वाला है ।

प्रश्न ९—जीवको औदयिक अज्ञानके उपयोग वाला यहाँ क्यों नही कहते ?

उत्तर—औदयिक अज्ञान ज्ञानके अभावको कहते हैं । यद्यपि ज्ञानका सर्वथा अभाव कभी भी नहीं होता तथापि कम अधिक विकास वाला ज्ञान तो रह ही सकता है, सो जितने अंशमें ज्ञान है वह तो क्षायोपशमिक है; वहाँ उपयोग होता है, परन्तु जितने अंश प्रकट नहीं है वह अज्ञान औदयिक है वहां तो उपयोग ही क्या होगा ? अतः अशुद्धनिश्चयनयसे क्षायोपशमिक ज्ञान दर्शनोपयोगमय जीव है ।

प्रश्न १०—शुद्ध निश्चयनयसे कैसे उपयोग वाला जीव है ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनयसे निर्मल स्वभावपर्याय रूप केवलज्ञान केवलदर्शनके उपयोग वाला है ।

प्रश्न ११—परमशुद्ध निश्चयनयसे किसी उपयोग वाला क्यों नहीं बताया ?

उत्तर—उपयोग चैतन्यस्वभावकी ही पर्याय है, परमशुद्धनिश्चयनय ध्रुव द्रव्य स्वभावकी दृष्टि करता है, वह पर्यायको विषय नहीं करता, इसलिए उपयोगमय शुद्धनिश्चयनय व अशुद्धनिश्चयनयसे ही कहा गया है ।

प्रश्न १२—जीवके अमूर्तके सम्बन्धमें जाननेके लिये कितनी दृष्टियाँ हैं ?

उत्तर—तीन दृष्टियाँ हैं— १–व्यवहारनय, २–अशुद्धनिश्चयनय, ३–शुद्धनिश्चयनय ।

प्रश्न १३—व्यवहारनयसे जीव कैसा है ?

उत्तर—व्यवहारनयसे जीव मूर्तिक कर्मोंके आधीन होनेसे स्पर्श रस गंध वर्ण वाले कर्म नोकर्मोंसे घिरा है, सो मूर्तिक है ।

प्रश्न १४—जीव अशुद्धनिश्चयनयसे कैसा है ?

उत्तर—औदयिक भाव व क्षायोपशमिक जो कि आत्माके स्वभावकी दृष्टिमें विभाव है उनसे सहित होनेसे जीव मूर्तिक है। यहाँ इन भावोंमें स्पर्श रस गंध वर्ण नहीं समझना, किन्तु ये भाव क्षायिक भावकी अपेक्षा स्थूल हैं अतः मूर्त हैं व इनके सम्बन्धसे आत्मा भी मूर्त कहलाया, ऐसा जानना।

प्रश्न १५—शुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसा है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनयसे जीव अमूर्तिक ही है, क्योंकि आत्माका स्वभाव ही रूप, रस गंध, स्पर्शसे सर्वदा रहित एक चैतन्यस्वभाव है।

प्रश्न १६—अमूर्त विशेषण देनेका फल क्या है ?

उत्तर—जो सिद्धान्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे जीवको उत्पन्न होना मानते हैं उनके मतमें मूर्तिक सिद्ध होता है तथा जो प्रकृतिसे मूर्त मानते हैं उनका निराकरण हो जाता है। जीव वास्तवमें अमूर्त ही है।

प्रश्न १७—अमूर्त शब्दका अर्थ इतना ही किया जाय कि जो मूर्त नहीं सो अमूर्त, तो क्या हानि है ?

उत्तर—इस अर्थमें सद्भावका भाव नहीं आया। जीव मूर्त न होकर भी वास्तवमें अमूर्त असंख्यातप्रदेशी है।

प्रश्न १८—जीव कर्ता किन-किन दृष्टियोंसे कहा है ?

उत्तर—जीव उपचारसे तो कर्म, नोकर्म (शरीर) का कर्ता है और व्यवहारनयसे अपनी पर्यायका कर्ता है जिसमें कि अशुद्धनिश्चयनय रूप व्यवहारसे शुभ अशुभ कर्मका कर्ता है और शुद्धनिश्चयनयरूप व्यवहारसे अनंतज्ञान आदि शुद्धभावका कर्ता है।

प्रश्न १९—परमशुद्ध निश्चयनयसे जीव किसका कर्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव अकर्ता है, क्योंकि यह नय सामान्य स्वभावको ग्रहण करता है वह अनादि अनंत एक स्वरूप है।

प्रश्न २०—कर्ता विशेषणसे किस विशेषताकी सिद्धि होती है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन स्वयं करता है—इस न्यायसे जीव भी अपने कार्योंका कर्ता स्वयं है, अन्य कोई प्रभु या कर्म आदि जीवके विभावोंको नहीं करते हैं यह सिद्ध होता है तथा जो सिद्धान्त मानता है कि जीव कुछ नहीं करता, प्रकृति ही करती है उस सिद्धान्तका निराकरण हुआ।

प्रश्न २१—जीव स्वयं विभाव करता है, कर्म विभाव नहीं करता, ऐसा माननेपर विभाव जावका स्वभाव हो जायेगा ?

उत्तर––जीवका विभाव औपाधिक (नैमित्तिक) है, जीव विभावसे स्वयं परिणमता है वहाँ कर्मोदय निमित्त अवश्य है, अन्यथा विभावकी विभिन्नता भी न बनेगी।

प्रश्न २२—जैसे जीवके विभावमें कर्मोदय निमित्त है इसी प्रकार ईश्वरको निमित्त क्यों न मान लिया जावे ?

उत्तर–ईश्वर क्या सचेष्ट होकर निमित्त होगा या अचेष्ट रहकर ? सचेष्ट होकर निमित्त माननेमें तो ईश्वरको रागी द्वेषी होनेका भी प्रश्न आवेगा फिर वह ईश्वर ही कहाँ रहा तथा एक व्यापी बनकर निमित्त नहीं हो सकता। अनेक अव्यापी होकर निमित्त मानने पर ठीक है। जगतमें ये जितने सचेष्ट जीव दिख रहे हैं उनमें कोई किसीके रागद्वेषादिमें निमित्त हो ही रहे हैं, परन्तु इनकी ईश्वरता व्यक्त नहीं है।

प्रश्न २३–ईश्वर अचेष्ट होकर जीवकी रचनामें निमित्त माना जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर–अचेष्ट होकर यदि ईश्वर निमित्त हो सकता है तो हम लोगोंके अचेष्ट बननेके लिए अचेष्ट बननेसे पहिले तदनुकूल शुभ विकल्पोंमें ही निमित्तमात्र हो सकता है, किन्तु हमारे सब भावोंमें निमित्त नहीं बन सकता, परन्तु उसका यथार्थस्वरूप अवश्य समझ लेना चाहिये।

प्रश्न २४–क्या जीव कर्ता ही है ?

उत्तर–पर्यायदृष्टिमें जीव कर्ता है, क्योंकि पर्यायें परिणतिके बिना नहीं होतीं और परिणतिक्रिया जीवकी स्वयंकी होती है। परन्तु परमशुद्ध निश्चयनय अथवा शुद्धद्रव्यदृष्टिसे जीव अकर्ता है, क्योंकि यह आशय अनादि अनंत सामान्य स्वभावको स्वीकार करता है।

प्रश्न २५–जीव कुछ नहीं करता है, यही मान लेनेमें क्या हानि है ?

उत्तर–प्रथम तो यह सत्स्वरूपके विरुद्ध है अतः अर्थक्रिया न करने वाला असत् हो जावेगा। दूसरी बात यह है कि जीव कुछ नहीं करता है तो मोक्षका यत्न ही किसलिये और कैसे होगा।

प्रश्न २६–आत्माको अपने देहके बराबर बताया है, यदि वट बीजके समान सूक्ष्म (छोटा) माना जाये तो क्या क्षति है ?

उत्तर–आत्मा यदि अतीव छोटा है तो भी समस्त शरीरके बराबर प्रदेशोंमें एक ही समय सुख दुःखका संवेदन होता है, वह न होकर एक देशमें संवेदन होना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं है।

प्रश्न २७–तब फिर आत्माको सर्वव्यापी मान लेना चाहिये ?

उत्तर–आत्मा देहसे बाहर नहीं है, क्योंकि अन्यत्र संवेदनका अनुभव नहीं होता। हाँ, समुद्घातमें अवश्य कुछ समयको देहमें रहता हुआ भी देहसे बाहर जाता है, सो उस समय वहाँ भी सारे प्रदेशोंमें संवेदन होता है।

प्रश्न २८—देह बराबर आत्माके सम्बन्धमें क्या एक ही दृष्टि है या अन्य भी ?

उत्तर—इस सम्बन्धमें ३ दृष्टियां हैं— (१) अशुद्धव्यवहार, (२) शुद्धव्यवहार (३) निश्चय। अशुद्धव्यवहारसे तो जीव जिस गतिमें, जिस देहमें रहता है उस देहके परिमाण व्यञ्जन पर्याय (आकार) हैं तथा उस देहके बढ़ने घटनेपर उस ही जीवनमें भी संकोच बिस्तार हो जाता है।

प्रश्न २९—शुद्धव्यवहारसे जीवके कितने परिमाण हैं ?

उत्तर—जीव जिस अन्तिम मनुष्यभवसे मोक्षको प्राप्त होता है उस मनुष्यके देहसे किञ्चित् ऊन प्रमाण है। फिर वह प्रमाण न कभी घटता है और न कभी बढ़ता है।

प्रश्न ३०—मुक्त किञ्चित् ऊन क्यों हो जाता है ?

उत्तर—इसमें दो प्रकारसे वर्णन आता है—(१) सदेह अवस्थामें भी जीवोंके प्रदेश बाल, नख और ऊपरकी अत्यंत पतली झिल्ली, जैसे चामके अंशमें नहीं होते हैं, सो यद्यपि देह छोड़कर भी इतने ही रहते हैं, परन्तु वे देहसे कम कहे जाते हैं। (२) सदेह अवस्थामें नाक, मुख, कान आदि पोलकी जगहमें आत्मप्रदेश नहीं होते हैं, किन्तु मुक्त अवस्थामें पोल नहीं रहती है। वह स्थान भी भर जाता है जिससे किञ्चित् ऊन कहा है।

प्रश्न ३१—निश्चयसे जीव किस परिमाण वाला है ?

उत्तर—निश्चयसे जीव लोकाकाश-प्रमाण असंख्यातप्रदेशी है, विस्तारकी दृष्टि व्यवहारसे है।

प्रश्न ३२—'सदेहपरिमाणो' इस विशेषणसे क्या विशेषता सिद्ध हुई ?

उत्तर—इस विशेषणसे आत्मा वट-बीज प्रमाण है, सर्वव्यापी है, एक सर्वाद्वैत है आदि विरुद्ध आशयोंका निराकरण हो जाता है।

प्रश्न ३३—आत्मा किस नयसे किनका भोक्ता है ?

उत्तर—इस विषयकी प्ररूपणा उपचार, व्यवहारनय, अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्धनिश्चयनय—इन पाँच दृष्टियोंसे करना चाहिये।

प्रश्न ३४—उपचारसे आत्मा किसका भोक्ता है ?

उत्तर—उपचारसे आत्मा इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थोंको भोगता है।

प्रश्न ३५—व्यवहारनयसे आत्मा किसका भोक्ता है ?

उत्तर—व्यवहारनयसे आत्मा साता असाताके उदयको भोगता है।

प्रश्न ३६—अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर—अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा हर्षविषाद भावको भोगता है।

प्रश्न ३७—शुद्धनिश्चयनयसे आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर– शुद्धनिश्चयनयसे आत्मा रत्नत्रयरूप शुद्धपरिणमनसे उत्पन्न हुए पारमार्थिक आनन्दको भोगता है।

प्रश्न ३८– परमशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर– इस नयकी दृष्टिमें ध्रुव एक चैतन्यस्वभाव ही आता है, उसमें भोक्ताका विकल्प ही नहीं है, इसलिये आत्मा किसीका भी भोक्ता नहीं है।

प्रश्न ३९–आत्माके 'भोक्ता' विशेषणसे अन्य क्या विशेषता सिद्ध हुई ?

उत्तर– क्षणिक सिद्धान्त और कूटस्थ सिद्धान्तमें आत्मा भोक्ता नहीं है। उसका इससे निराकरण हो जाता है।

प्रश्न ४०—आत्मा सभी सदा संसारी तो रहते नहीं हैं, क्योंकि आत्माके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुष्ठानके द्वारा अनन्त भव्य जीव संसारसे मुक्त हो गये और आगे भी अनन्त भव्य मुक्त होते जावेंगे। फिर 'संसारी' विशेषण कैसे घटित होगा ?

उत्तर– प्रथम तो यह बात है कि यद्यपि अनंत भव्य मुक्त हो चुके व होंगे तथापि उनसे अनन्तानंत गुणे जीव संसारी हैं व रहेंगे। दूसरी बात यह है कि जो मुक्त हो चुके वे भी भूतनैगमनयकी अपेक्षा संसारी कहे जाते हैं।

प्रश्न ४१– जीव किस नयसे संसारी है ?

उत्तर– इस विषयकी प्ररूपणाके लिये व्यवहारनय, अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्धनिश्चयनय—इन चार नयोंका आश्रय करना चाहिये।

प्रश्न ४२– व्यवहारनयसे जीव कैसा संसारी है ?

उत्तर– कर्मनोकर्मबंधनवश हुआ जीव गति, जाति, जीवसमास आदि व्यक्त पर्यायों वाला संसारी है।

प्रश्न ४३—अशुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसे संसारी है ?

उत्तर—अशुद्धनिश्चयनयसे जीव दर्शन, ज्ञान, चरित्र आदि गुणोंके विभावपरिणमन में उलझा हुआ संसारी है।

प्रश्न ४४—शुद्धनिश्चयनयसे जीवकी क्या अवस्था है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनयसे जीव संसारसे रहित अपने स्वाभाविक पूर्ण विकासमें तन्मय शुद्ध है।

प्रश्न ४५—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीवकी क्या अवस्था है ?

उत्तर—यह नय अवस्थाको देखता ही नहीं, अतः इस नयकी दृष्टिमें न संसारी है, न मुक्त है, किन्तु सभी जीव एक चैतन्यस्वभावमय हैं।

प्रश्न ४६—'संसारस्थ' विशेषणसे अन्य किस आशयका निराकरण किया है ?

उत्तर—जो सिद्धान्त यह आशय रखते हैं कि आत्मा अनादिसे मुक्त है अथवा अशुद्ध

पुद्गल ही संसारको करता है, आत्मा तो मात्र साक्षी ही है आदि बातोंका निराकरण हो जाता है।

प्रश्न ४७—आत्मा सिद्ध है, यह किन-किन दृष्टियोंसे कहा जाता है?

उत्तर—मुख्य प्रकृत अर्थ तो यह है कि आत्मा कर्म नोकर्म मलोंसे दूर होकर संसार से सर्वथा मुक्त हो जाता है, वह आत्मा सिद्ध है। इस विषयको और विशद करनेके लिये चार दृष्टियाँ लगाना—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्धनिश्चयनय, (३) शुद्धनिश्चयनय, (४) परम-शुद्धनिश्चयनय।

प्रश्न ४८—व्यवहारनयसे क्या सिद्धत्व है?

उत्तर—व्यवहारनयसे यह जीव असिद्ध है, सिद्ध नहीं है। वह तो गति, जाति आदि आकाररूप अपनेको साधता है।

प्रश्न ४९—अशुद्धनिश्चयनयसे क्या सिद्धत्व है?

उत्तर—इस नयसे भी आत्मा असिद्ध है, सिद्ध नहीं है। वह तो कषाय आदि विभावोंको साधता है।

प्रश्न ५०—शुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसे सिद्ध है?

उत्तर—अपने आपके स्वभावपरिणमनसे यह आत्मा अपने गुणोंके पूर्ण विकाससे सिद्धप्रभु है। ये कभी सिद्ध अवस्थासे च्युत नहीं होते, सदा शुद्ध सिद्ध ही रहेंगे।

प्रश्न ५१—परमशुद्धनिश्चयनयसे क्या सिद्धत्व है?

उत्तर—यह नय पर्यायको नहीं देखता, इसलिए इस दृष्टिमें आत्मा न सिद्ध है, न असिद्ध है। एक चैतन्यस्वभावी है जो कि स्वतःसिद्ध है।

प्रश्न ५२—आत्माको सिद्ध होकर भी सिद्धकी मर्यादा समाप्त होनेपर उन्हें असिद्ध हो जाना चाहिये?

उत्तर—सर्व कर्मोंके अत्यन्त क्षयसे जहाँ सिद्ध अवस्था प्रकट होती है वहाँ विभाव उत्पन्न होनेका कोई कारण नहीं, इसलिए सिद्ध भविष्यमें सर्वकाल तक सिद्ध ही रहेंगे, उनकी सीमा होती ही नहीं।

प्रश्न ५३—जीव स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करता है, यह विशेषण तो प्रत्यक्षसे भी बाधित है, क्योंकि हम देखते हैं कि जीव जैसे चाहें जहाँ चाहें फिरते हैं?

उत्तर—जीवका स्वभाव तो ऊर्ध्वगमनका है, परन्तु कर्म नोकर्मकी संगतिसे यह स्व-भाव तिरस्कृत हो रहा है। औदारिक वैक्रियक देहके सम्बन्धसे तो यह विदिशा तकमें भी गमन कर जाता है।

प्रश्न ५४—तब यह ऊर्ध्वगमन स्वभाव कब प्रकट होता है?

उत्तर—जब यह जीव नोकर्म (शरीर) व कर्मसे अत्यन्त विमुक्त होकर केवल शुद्ध-स्वभावमें परिणत हो जाता है तब इसका ऊर्ध्वगमन स्वभाव प्रकट हो जाता है अर्थात् सर्व कर्मोंका क्षय होते ही जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावसे एक ही समयमें एकदम ऊपर चला जाता है।

प्रश्न ५५—यह जीव ऊपर कहाँ तक चला जाता है?

उत्तर—मुक्त जीव लोकके अन्त तक चले जाते हैं, इससे आगे धर्मास्तिकायका निमित्त न होनेसे वह अपने स्वतंत्र अवस्थानसे वहां निश्चल हो जाते हैं।

प्रश्न ५६— तब तो मुक्तोंका भी गमन पराधीन हो गया?

उत्तर—पराधीन तो तब कहलाता जब धर्मास्तिकाय अपनी परिणतिसे मुक्त जीवको चलाता, किन्तु मुक्त जीव अपने स्वभावसे अपनी परिणतिसे गमन करते हैं, वहाँ धर्मास्तिकाय निमित्तमात्र है।

प्रश्न ५७—इस समस्त वर्णनसे हमें संक्षिप्त सारभूत क्या प्रयोजन लेना है?

उत्तर— इन समस्त अवस्थावों रूप जो बनता है, ऐसे एक विशुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव-तत्त्वपर लक्ष्य करना है। जिससे निर्मल ज्ञान आनन्दकी पर्यायका प्रवाह चल उठे।

प्रश्न ५८—जब तो इस ही सारभूत तत्त्वका वर्णन करना था, सब अधिकारोंके वर्णनसे क्या प्रयोजन था?

उत्तर— जीवतत्त्वके व्यवहार पर्यायको ही यथार्थतया न समझे वह पर्यायान्वयी जीव-द्रव्यको समझनेकी पात्रता कहांसे लावेगा? इसलिए यह पर्यायवर्णन भी इस प्रयोजनके लिये आवश्यक है।

अब जीव आदि नव अधिकारोंकी सूचना करने वाली इस द्वितीय गाथाके अनन्तर बारह गाथावोंमें इन्हीं नव अधिकारोंका विवरण किया जावेगा। जिसमें प्रथम जीव अधिकारके सम्बंधमें गाथा कहते हैं—

तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अन्वय—ववहारा जस्स तिक्काले चदु पाणा इंदिय बलं आउ य आणपाणो सो जीवो दु णिच्चयणयदो जस्स चेदणा सो जीवो।

अर्थ— व्यवहारनयसे जिसके तीन कालमें इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास, ये चार प्राण हों वह जीव है, परन्तु निश्चयनयसे जिसके चेतना है वह जीव है।

प्रश्न १—जिस जीवके संसार अवस्थामें तो ये चार प्राण थे, किन्तु अब मुक्त अवस्थामें आनेसे प्राणोंका अभाव है तो क्या वह व्यवहारनयसे जीव नहीं कहा जायगा?

उत्तर—तीनों कालमें हों या केवल भूतकालमें थे, अब नहीं हों तो भी भूतकालमें

होनेसे ग्रहण हो गया, यह "तिक्काले" शब्दका भावार्थ है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मुक्त जीवके इस समय ये प्राण नहीं हैं जो भी भूतकालमें थे, सो व्यवहारनयसे वह भी जीव हैं।

प्रश्न २—इन्द्रियप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्येन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न हुआ क्षायोपशमिक भाव इन्द्रियप्राण है।

प्रश्न ३—इन्द्रियप्राण और इन्द्रियमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण तो क्षायोपशमिक भाव है, परन्तु इन्द्रियसे द्रव्येन्द्रियका ग्रहण होता है। इसी कारण सयोगकेवलीके इन्द्रियप्राण नहीं है, परन्तु ये पंचेन्द्रिय माने ही गये हैं।

प्रश्न ४—इन्द्रियप्राण कितने प्रकारका है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण ५ प्रकारका है—(१) स्पर्शनेन्द्रियप्राण, (२) रसनेन्द्रियप्राण, (३) घ्राणेन्द्रियप्राण, (४) चक्षुरिन्द्रियप्राण, (५) श्रोत्रेन्द्रियप्राण।

प्रश्न ५—इन इन्द्रियप्राणोंके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—स्पर्शन इन्द्रियके निमित्तसे जो क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न हुआ वह स्पर्शनेन्द्रिय प्राण है। इसी प्रकार रसनेन्द्रिय आदिके भी अलग-अलग लगा लेना चाहिये।

प्रश्न ६—बलप्राण किसे कहते हैं और वे कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर—अनन्त शक्तिके एक भाग प्रमाण मन, वचन, कायके निमित्तसे उत्पन्न हुए बलको बलप्राण कहते हैं। ये ३ प्रकारके हैं—(१) मनोबल, (२) वचनबल, (३) कायबल।

प्रश्न ७— इन बलप्राणोंके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—मनके निमित्तसे उत्पन्न हुए वीर्यके विकासको मनोबल प्राण कहते हैं। इसी प्रकार वचन और कायबलमें भी अलग-अलग लगा लेना चाहिये।

प्रश्न ८—बल, प्राण, गुप्ति, योग, पर्याप्ति ये मन, वचन, कायके होते हैं, इनमें अन्तर क्या है ?

उत्तर—वीर्यके विकासको बलप्राण कहते हैं। मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिके विरोधको गुप्ति कहते हैं। मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्मप्रदेश परिस्पंदके लिये जो यत्न होता है उसे योग कहते हैं। मनोवर्गणा, भाषावर्गणा, आहारवर्गणाको ग्रहण करनेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न ९— मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिके निरोधको जब गुप्ति कहा तो इसमें वीर्य गुणका विकास रोक दिया गया, फिर गुप्ति उपादेय नहीं रहेगी ?

उत्तर—अशुद्ध बलको रोककर आत्मबलके विकासको गुप्ति बढ़ाती है, इसलिये परमार्थबलके विकासका कारण होनेसे गुप्ति उपादेय है।

प्रश्न १०—आयुप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदयसे भव सम्बंधी जीवन और क्षयसे मरण हो वह आयुप्राण है।

प्रश्न ११—आयुप्राणके चार भेद क्यों नहीं कहे गये ?

उत्तर—चारों आयुवोंका सामान्यकार्य उस भवमें अवस्थान करना है, इस साधारणताके कारण आयुप्राण एक कहा गया है।

प्रश्न १२—आनप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीरसे किसी भी प्रकार वायुके आने-जानेको आनप्राण कहते हैं। जैसे मुखसे श्वास उच्छ्वास निकलना। रोमछिद्रोंसे वायुका आना-जाना। नाड़ी द्वारा संचरण होना। पृथ्वी आदि सर्व शरीरसे वायुका आना-जाना। वायुकायिक जीवके भी सर्व शरीरसे वायुका आना-जाना आदि।

प्रश्न १३—इन चारों प्राणोंका क्या कभी विनाश भी होता है ?

उत्तर—पाँच इन्द्रियप्राणोंका व मनोबलका विनाश तो क्षीणमोह गुणस्थानके अन्तमें हो जाता है। वचनबल व आनप्राणका विनाश सयोगकेवलीके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें होता है व कायबलका विनाश सयोगकेवलीके अन्तमें होता है और आयुप्राणका विनाश अयोगकेवलीके अन्तमें होता है।

प्रश्न १४—इन प्राणोंके विनाश होनेपर इनके एवजमें क्या किसी विशुद्ध प्राणका विकास होता है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राणके अभावमें अतीन्द्रिय शुद्ध चैतन्यप्राणका विकास होता है। मनोबलके अभावमें अनन्त वीर्यप्राणका विकास होता है। वचनबल श्वासोच्छ्वास व कायबलके अभावमें प्रदेशोंका निश्चलतारूप बलका विकास होता है और आयुप्राणके अभावमें अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्यका सर्वथा निश्चल विकास बना रहता है।

प्रश्न १५—ये प्राण सभी एक साथ होते हैं या किसी जीवके कम भी होते हैं ?

उत्तर—एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, ये तीन प्राण होते हैं। पर्याप्तके श्वासोच्छ्वास सहित ४ प्राण होते हैं। द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीवके दोइन्द्रिय, कायबल व आयु ये ४ प्राण होते हैं। पर्याप्तके वचनबल व उच्छ्वास सहित ६ प्राण होते हैं। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तके ३ इन्द्रिय, १ बल, आयु, ये ५ प्राण होते हैं। पर्याप्तके वचनबल व उच्छ्वाससहित ७ प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तके ४ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ६ प्राण होते हैं। पर्याप्तके वचनबल व उच्छ्वास सहित ८ प्राण होते हैं। असैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तके ५ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ७ प्राण होते हैं। पर्याप्तके वचनबल, उच्छ्वास सहित ९ प्राण होते हैं। सैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तके ५ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ७ प्राण होते हैं। पर्याप्तके मनोबल, वचनबल व उच्छ्वास सहित १० प्राण होते हैं।

सयोगकेवलीके वचनबल, कायबल, आयु व उच्छ्वास—ये चार प्राण होते हैं व अन्त में वचनबल रहित ३ व बादमें उच्छ्वास रहित २ प्राण होते हैं। अयोगकेवलीके केवल आयुप्राण होता है।

प्रश्न १६—ये प्राण जीवमय हैं या अजीवमय ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण तो क्षायोपशमिक भाव है, सो यद्यपि जीवका मलिन भाव है तथापि पुद्गल कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होते हैं, सो वे पुद्गलकर्मके कार्य हैं तथा शेष प्राणोंका पुद्गल उपादान है। अतः सब प्राण पौद्गलिक हैं।

प्रश्न १७— निश्चयनयसे जीवके प्राण कौन-कौन हैं ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनयसे ज्ञान, दर्शन, शक्ति सुखके अनन्त विकास प्राण हैं व परमार्थ शुद्धनयसे चैतन्यप्राण है।

प्रश्न १८—स्पर्शनादि द्रव्येन्द्रिय क्या प्राण नहीं है ?

उत्तर—अशुद्ध भावेन्द्रियप्राणोंका कारण होनेसे ये द्रव्येन्द्रिय भी असद्भूत व्यवहारनयसे प्राण हैं ? इनका अन्तर्भाव इन्द्रियप्राणमें ही कर लेना चाहिये, परन्तु भावेन्द्रिय न होने से सयोगकेवलीके इन्द्रियप्राण नहीं मानना चाहिये।

प्रश्न १९—इन सब कथनोंमें उपाय उपेय भी कुछ सिद्ध होता है क्या ?

उत्तर—उपेयतत्त्व शुद्ध चैतन्यप्राण है। उसकी सिद्धिका उपाय यह है कि अति प्राथमिक अवस्थामें भावेन्द्रियप्राण व बलप्राणका उपयोग देव, शास्त्र, गुरुकी सेवा, ध्यान मनन स्तुतिमें लगावे, फिर प्राप्त योग्यताको निज अभेद स्वभावमें पहुंचनेके प्रयत्नमें लगावे। यद्यपि बुद्धिपूर्वक अभेदस्वभावमें पहुंचनेका कार्य नहीं होता तथापि पहुंचनेका यत्न करता है, फिर अति ज्ञानाभ्यास व ज्ञानसंस्कार एवं योग्यतासे अभेदस्वभावी निज चेतनमें उपयोगकी स्थिरता हो तब सम्पूर्ण आत्मबल प्रकट होता है।

इस प्रकार जीव अधिकारका वर्णन करके अब उपयोगाधिकारकी गाथा कहते हैं—

उवओगो दुवियप्पो दंसणं णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥

अन्वय—उवओगोणे दुवियप्पो दंसणं च णाणं, दंसणं चदुधा णेयं चक्खु, अचक्खु, ओही अध केवलं दंसणं।

अर्थ—उपयोग दो प्रकारका है—१—दर्शनोपयोग, २—ज्ञानोपयोग। दर्शनोपयोग चार प्रकारका जानना चाहिये। १—चक्षुदर्शन, २—अचक्षुदर्शन, ३—अवधिदर्शन और ४—केवलदर्शन।

प्रश्न १—दर्शनोपयोगका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर– आत्मामें एक दर्शन गुण है, उस गुणके व्यक्त उपयोगात्मक परिणमनको दर्शनोपयोग कहते हैं। दर्शनोपयोगका दूसरा नाम अनाकारोपयोग भी है।

प्रश्न २–अनाकारोपयोगका भाव क्या है ?

उत्तर– जिस उपयोगके विषयमें कोई आकार, विशेष, भेद, विकल्प न आवे, किन्तु निराकार, सामान्य, अभेद, विकल्परहित जिसका विषय हो उसे अनाकारोपयोग कहते हैं।

प्रश्न ३–चक्षुर्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर– चक्षुरिन्द्रियके निमित्तसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये उस ज्ञानसे पहिले जो आत्माकी ओर उपयोग होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं। इसी प्रकार अचक्षुर्दर्शनमें लगाना, केवल निमित्तमें चक्षुको छोड़कर बाकी ४ इन्द्रियां और मनको कहना।

प्रश्न ४–क्या ज्ञानसे पहिले दर्शनका होना आवश्यक है ?

उत्तर– मतिज्ञानसे पहिले व अवधिज्ञानसे पहिले दर्शनका होना आवश्यक है, केवल-दर्शन केवलज्ञानके साथ-साथ होता है। कभी-कभी कोई मतिज्ञान पूर्वक भी होता है, उसके लिये पूर्वका दर्शन, दर्शन है।

प्रश्न ५–मतिज्ञान व अवधिज्ञानसे पहिले दर्शनोपयोगकी आवश्यकता क्यों होती है ?

उत्तर–जब पूर्वज्ञानोपयोग तो छूट गया और नया ज्ञानोपयोग करना है तो बीचमें आत्माके अभिमुख होकर नये ज्ञानका बल प्रकट किया जाता है। जैसे पहिले घटको जान रहा था अब पटको जानना है तो घट ज्ञान छूटनेपर जब तक पटको नहीं जाना उस बीचमें दर्शनोपयोग होता है अर्थात् आत्मा यहाँ किसी वस्तुको जानता फिर आत्माकी ओर झुकता, फिर किसी वस्तुको जानता, फिर आत्माकी ओर झुकता, फिर जानता—यह क्रम चलता रहता है।

प्रश्न ६– श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञानसे पहिले दर्शन क्यों नहीं होता ?

उत्तर– ये दोनों ज्ञान पर्याय-विकल्पकी मुख्यता करके जानते हैं और जो पर्याय-विकल्पकी मुख्यता लेकर जानते हैं उन ज्ञानोंसे पहिले दर्शन नहीं होता। ये दोनों ज्ञान मति-ज्ञानोपयोगके अनन्तर होते हैं।

प्रश्न ७–केवलज्ञानके साथ ही केवलदर्शन क्यों होता है ? वहां अन्यकी भांति पहिले केवलदर्शन हो और पीछे केवलज्ञान हो, ऐसा क्यों नहीं होता ?

उत्तर–केवली भगवानके अनंतशक्ति प्रकट हो गई है, अतः ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग दोनों साथ-साथ होते हैं। छद्मस्थ जीवोंके अनंतशक्ति नहीं है, अतः साथ-साथ नहीं होते।

प्रश्न ८–दर्शन और दर्शनोपयोगमें क्या अन्तर है ?

उत्तर– दर्शन तो आत्माकी शक्ति है और दर्शन गुणके विकासका नाम दर्शनोपयोग है। दर्शनशक्ति तो नित्य है और उसका परिणमन जो दर्शनोपयोग है वह उत्पाद व्यय स्वरूप है।

प्रश्न ९-- सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोगमें क्या अन्तर है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शन तो श्रद्धा गुणकी निर्मल पर्याय है और दर्शनोपयोग दर्शन गुणकी पर्याय है।

प्रश्न १०– दर्शन और श्रद्धामें क्या अन्तर है ?

उत्तर– दर्शन तो अन्तर्मुखचित्प्रतिभासका नाम है और श्रद्धा उसे कहते हैं जिसके होने पर प्रतीति, विश्वास अथवा पर्यायकी समीचीनता होने लगे।

प्रश्न ११-- दर्शनोपयोगका सम्यग्दर्शनके साथ क्या कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर-- दर्शनोपयोगका जो विषय है वह सामान्य–आत्मा है। यदि उस सामान्य आत्मामें अहं अर्थात् निजद्रव्यकी प्रतीति करे तो सम्यग्दर्शन होता है। विषयमें आया हुआ द्रव्य दोनोंका विषय है, इतना मेल तो घटित होता है, किन्तु दोनों पर्यायमें पृथक्-पृथक् गुणों के परिणमन हैं, अतः स्वलक्षण की अपेक्षा सम्बंध नहीं है।

प्रश्न– १२ मिथ्यादृष्टिके दर्शनोपयोग क्या मिथ्या होता है ?

उत्तर-- दर्शनोपयोग न मिथ्या होता है और न सम्यक् होता है। हां, यह अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि दर्शनोपयोगके विषयका अनुभव नहीं करता, परन्तु सम्यग्दृष्टि दर्शनोपयोगके विषयकी प्रतीति करता है। यथार्थतः ज्ञान भी न सम्यक् है और न मिथ्या है। ज्ञान मिथ्यात्व व अनंतानुबन्धीके उदयमें उपचारसे मिथ्या कहलाता है। परन्तु दर्शनोपयोगमें यह उपचार भी नहीं है, क्योंकि दर्शनोपयोग निराकार है।

प्रश्न १३– अवधिदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अवधिज्ञानसे पहिले होने वाले अन्तर्मुख चित्प्रतिभासको अवधिदर्शनोपयोग कहते हैं।

प्रश्न १४-- केवलदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- केवलज्ञानके साथ-साथ होने वाले अन्तर्मुख चित्प्रतिभासको केवलदर्शन कहते हैं।

प्रश्न १५-- ये दर्शनोपयोग किस निमित्तको पाकर प्रकट होते हैं ?

उत्तर-- चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण व अवधिदर्शनावरणके क्षयोपशमसे तो क्रमशः चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन व अवधिदर्शन प्रकट होते हैं और केवलदर्शनावरणके क्षयसे केवलदर्शन प्रकट होता है।

प्रश्न १६-- क्षयोपशम किसे कहते हैं ?

उत्तर-- उदयमें आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयाभावी क्षय और आगामी उदयमें आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उपशम तथा देशघाती स्पर्द्धकोंके उदयको क्षयोपशम कहते हैं।

प्रश्न १७-- दर्शनोपयोगके पाठसे हमें किस कर्तव्यकी प्रेरणा लेनी चाहिये ?

उत्तर-- दर्शनोपयोगका जो विषय है उसे हम ज्ञानोपयोगसे ज्ञात करें और उसके ज्ञानोपयोगके स्थिर रहनेका यत्न करें। इस उपायसे हमें सम्यक्त्वकी प्राप्ति होगी। अब उपयोगाधिकारमें वर्णित किये गये दो प्रकारके उपयोगमें से दर्शनोपयोगका वर्णन करके ज्ञानोपयोगका वर्णन करते हैं—

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुद ओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥५॥

अन्वय-- णाणं अट्ठवियप्पं अणाणणाणाणि मदिसुदओही, मणपज्जय अवि केवलं च पच्चक्खपरोक्खभेयं।

अर्थ—ज्ञानोपयोग ८ प्रकारका है—कुज्ञान और ज्ञानस्वरूप, मति, श्रुत, अवधि ये ३ और मनःपर्यय व केवलज्ञान। ज्ञानोपयोग प्रत्यक्ष, परोक्षके भेदसे दो प्रकारका भी है।

प्रश्न १-- दो प्रकारसे ज्ञानोपयोगके वर्णनमें कुछ सामञ्जस्य है क्या ?

उत्तर-- ज्ञानोपयोगके दो भेद हैं--१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष। इनमें प्रत्यक्ष २ प्रकारका है १. विकलप्रत्यक्ष, २. सकलप्रत्यक्ष। विकलप्रत्यक्ष मनःपर्ययज्ञान व अवधिज्ञान हैं। परोक्षज्ञान मति और श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न २-- मति, श्रुत, अवधि ये तीन कुज्ञानरूप क्यों हो जाते हैं ?

उत्तर-- मिथ्यात्वके उदयके सम्बन्धसे ये तीनों ज्ञान कुज्ञान कहलाते हैं।

प्रश्न ३-- क्या मिथ्यात्वके उदयका प्रभाव ज्ञानपर भी पड़ता है ?

उत्तर-- यद्यपि मिथ्यात्वके उदयसे श्रद्धागुणका ही विपरीत परिणमन होता है तथापि विपरीत श्रद्धा वाले जीवके द्रव्य-वस्तुके ज्ञानमें यथार्थता व अनुभव न होनेसे ये ज्ञान भी कुज्ञान कहलाते हैं।

प्रश्न ४-- मिथ्यादृष्टिके भी तो बड़े-बड़े आविष्कारों तकमें सच्चा ज्ञान पाया जाता है तब सारी वस्तुवोंमें मिथ्याज्ञान कैसे कहते ?

उत्तर-- जिन्हें शुद्धात्मादितत्त्वके विषयमें विपरीत अभिप्राय रहित यथार्थ ज्ञान नहीं है उनके ज्ञानको मिथ्याज्ञान ही कहा गया है। क्योंकि आत्महितके साधक ज्ञानको ही सम्यग्ज्ञान कहा है।

प्रश्न ५– सम्यग्दृष्टिके भी घट-पटादि अनेक पदार्थोंके सम्बंधमें संशय विपर्ययज्ञान हो जाता है, फिर तो वह ज्ञान मिथ्याज्ञान कहा जाना चाहिये ?

उत्तर– सम्यग्दृष्टिके द्रव्य, गुण, पर्यायका यथार्थ विवेक है। उसमें संशयादिक नहीं हैं। अतः आत्मसाधक ज्ञानमें बाधा नहीं आती है, अतः सम्यग्ज्ञान है। हाँ लौकिक अपेक्षा संशय विपर्यय ज्ञान है, परन्तु इससे मोक्षमार्गमें कोई बाधा नहीं आती।

प्रश्न ६– मनःपर्ययज्ञान भी कोई-कोई कुज्ञान क्यों नहीं होता ?

उत्तर– मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिधारी भावलिङ्गी साधुके ही होता है। अतः वह कुज्ञान हो ही नहीं सकता।

प्रश्न ७—आत्मा तो एक द्रव्य है, उसके ये अनेक ज्ञानोपयोग क्यों हो गये ?

उत्तर– आत्मा तो निश्चयसे एक स्वभाव है, जिसकी स्वाभाविक पर्याय केवलज्ञान ही होना चाहिये, परन्तु अनादिकालसे कर्मबन्ध करि सहित होनेसे मतिज्ञानावरणादिके क्षयोपशमके अनुसार ज्ञान प्रकट होते हैं। अतः ये इतने प्रकारसे ज्ञानोपयोग हो गये। केवलज्ञान को छोड़कर शेष ७ ज्ञानोंमें भी असंख्यात असंख्यात भेद हैं।

प्रश्न ८—मतिज्ञानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– मतिज्ञानावरण एवं वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे तथा इन्द्रिय, मनके निमित्तसे वस्तुका एकदेश ज्ञान होना मतिज्ञान है।

प्रश्न ९– तब तो यह मतिज्ञान बहुत पराधीन हो गया ?

उत्तर—उक्त निमित्तोंके रहते हुये भी मतिज्ञान ज्ञानस्वभावके उपादानसे ही प्रकट होता है, अन्य द्रव्योंसे नहीं, अतः स्वाधीन ही है।

प्रश्न १०—मतिज्ञानका प्रसिद्ध अपर नाम क्या है ?

उत्तर– मतिज्ञानका प्रसिद्ध अपर नाम आभिनिबोधिक ज्ञान है।

प्रश्न ११—आभिनिबोधिक ज्ञानका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर– अभि याने अभिमुख और नि याने नियमित अर्थके अवबोधको आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न १२—अभिमुख किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्थूल, वर्तमान और व्यवधान रहित पदार्थोंको अभिमुख कहते हैं।

प्रश्न १३– नियमित किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय और मनके नियत विषयोंको नियमित पदार्थ कहते हैं।

प्रश्न १४—किस-किस इन्द्रियका क्या-क्या विषय नियत है ?

उत्तर– स्पर्शनेन्द्रियका स्पर्श, रसनेन्द्रियका रस, घ्राणेन्द्रियका गन्ध, चक्षुरिन्द्रियका

रूप और श्रोत्रेन्द्रियका सुनना नियत विषय है।

प्रश्न १५—मनमें कौनसा विषय नियत है ?

उत्तर—मनमें दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं।

प्रश्न १६—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—श्रुतज्ञानावरण वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे व नोइन्द्रियके अवलम्बनसे जो ज्ञान प्रकट होता है वह श्रुतज्ञान है। इसका स्पष्ट स्वरूप एक यह भी है कि मतिज्ञानसे जाने हुये पदार्थमें और अन्य विशेष ज्ञान करना सो श्रुतज्ञान है।

प्रश्न १७—स्मरण आदि ज्ञानका किस ज्ञानमें अन्तर्भाव है ?

उत्तर– स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान व सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष—इन ज्ञानोंका मतिज्ञानमें अन्तर्भाव है, क्योंकि ये सब मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे प्रकट होते हैं।

प्रश्न १८– स्मरणका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरण व वीर्यान्तरायके क्षयोपशम व मनके अवलम्बनसे अनुभूत अतीत अर्थका स्मरण होना स्मरण है।

प्रश्न १९– प्रत्यभिज्ञानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– मतिज्ञानावरण व वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे, मनके अवलम्बनसे पूर्वविज्ञात पर्यायसे वर्तमान पर्यायके बीच एकता, सदृशता, विसदृशता व प्रतियोगिताके जोड़रूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। जैसे यह वही है, यह अमुकके समान है, यह अमुकसे विपरीत है, यह उससे दूर है इत्यादि।

प्रश्न २०– तर्क किसे कहते हैं ?

उत्तर– साध्य, साधनके व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते हैं। जैसे जहाँ धूम्र होता है वहाँ अग्नि होती है और जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम्र भी नहीं होता।

प्रश्न २१--अनुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर-- साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं। जैसे धूम देखकर अग्निका ज्ञान करना।

प्रश्न २२-- एक वस्तुके ज्ञानके बाद अन्य वस्तुका जानना तो श्रुतज्ञान हो गया, इसका मतिज्ञानमें अन्तर्भाव कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर-- अभ्यस्त पुरुषके संस्कारवश साधन देखते ही मन द्वारा साध्यका ज्ञान हो जाता है, ऐसा स्वार्थानुमान मतिज्ञानमें अन्तर्गत होता है।

२३-- सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर-- वर्तमान पदार्थको इन्द्रिय या मनके द्वारा एकदेश स्पष्ट जानना, सो सांव्यवहा-

रिक प्रत्यक्ष है।

प्रश्न २४– यह मन व इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुआ इसे तो परोक्ष ही कहना चाहिये ?

उत्तर– मन, इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेके कारण वास्तवमें यह मति परोक्ष ही है, किन्तु व्यवहारसे ऐसा प्रतीत होता है कि देखनेसे वस्तु स्पष्ट देखी जा रही है, कानोंसे शब्द स्पष्ट सुना जा रहा है, इस कारण वह सब उपचारसे प्रत्यक्ष है। लोक कहते भी हैं कि मैंने प्रत्यक्ष देखा, प्रत्यक्ष सुना आदि।

प्रश्न २५– स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानके विषय किस इन्द्रियके नियत विषय हैं ?

उत्तर– स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानके विषय मनके नियत विषय हैं।

प्रश्न २६– सर्व प्रकारके मतिज्ञानके जाननेकी प्रगतिकी अपेक्षा कितने भेद हैं ?

उत्तर– सर्व मतिज्ञानोंके ४–४ भेद हैं। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।

प्रश्न २७– अवग्रहज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– विषयविषयीके सन्निपातके अनन्तर जो आद्य ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते हैं।

प्रश्न २८– सन्निपातका मतलब क्या है ?

उत्तर– बाह्य पदार्थ तो विषय होते हैं और इन्द्रिय एवं मन विषयी कहलाते हैं। इन दोनोंकी ज्ञानके उत्पन्न करने योग्य अवस्थाका नाम सन्निपात है।

प्रश्न २९– अवग्रहके कितने भेद हैं ?

उत्तर– अवग्रहके दो भेद हैं—(१) व्यञ्जनावग्रह, (२) अर्थावग्रह।

प्रश्न ३०– व्यञ्जनावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर– प्राप्त अर्थात् स्पष्ट अर्थके ग्रहणको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं अथवा अस्पष्ट अर्थके ग्रहण करनेको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। इस ज्ञानमें इतनी कमजोरी है कि जाननेकी दिशा भी अनिश्चित रहती है।

प्रश्न ३१– अर्थावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर– अप्राप्त अर्थात् अस्पृष्ट अर्थके ग्रहण करनेको अर्थावग्रह कहते हैं, अथवा स्पष्ट अर्थके ग्रहण करनेको अर्थावग्रह कहते हैं। इस ज्ञानमें जाननेकी दिशा निश्चित है और इस ज्ञानके बाद ईहा आदि ज्ञान हो सकते हैं।

प्रश्न ३२– ईहाज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– अवग्रहसे गृहीत अर्थकी विशेष परीक्षाको ईहा कहते हैं। इस ज्ञानमें संदेहपना नहीं है, किन्तु वस्तुका विशेष परिज्ञान हो रहा है। फिर भी यह ज्ञान संदेहसे ऊपर और

अवायसे नीचेकी विचार-बुद्धि है।

३३-- अवायज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर-- ईहाज्ञानसे जो पदार्थका ज्ञान हुआ है उसके पूर्ण प्रतीतियुक्त ज्ञानको अवाय-ज्ञान कहते हैं।

३४-- धारणा ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अवायज्ञानसे निर्णय किये गये पदार्थके कालान्तरमें विस्मरण न होनेको धारणाज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ३५-- मतिज्ञानका विषय पदार्थ है या गुण है या पर्याय ?

उत्तर-- मतिज्ञानका विषय पदार्थ है, केवल गुण नहीं और न केवल पर्याय। हां, पदार्थ गुणपर्यायात्मक ही होता है।

प्रश्न ३६-- केवल गुण या केवल पर्याय क्या किसी अन्य ज्ञानका विषय हो सकता है ?

उत्तर—केवल गुण या केवल पर्याय किसी भी ज्ञानका विषय नहीं है, क्योंकि केवल गुण या केवल पर्याय असत् है। असत् किसी भी ज्ञानका विषय नहीं है।

प्रश्न ३७-- द्रव्यार्थिक दृष्टिसे गुण जाना तो जाता है फिर वह असत् कैसे है ?

उत्तर-- द्रव्यार्थिक दृष्टिसे गुणकी मुख्यतासे पदार्थ जाना जाता है, केवल गुण नहीं।

प्रश्न ३८—पर्यायार्थिक दृष्टिसे पदार्थ जाना जाता है, फिर वह असत् कैसे ?

उत्तर-- पर्यायार्थिक दृष्टिसे पर्यायकी मुख्यतासे पदार्थ जाना जाता है, केवल पर्याय नहीं।

प्रश्न ३९-- गुण या पर्याय सत् न सही, किन्तु सत्के अंश तो हैं ?

उत्तर—सत् कभी गुणकी मुख्यतासे जाना जाता है और कभी पर्यायकी मुख्यतासे जाना जाता है। इस प्रकार सत्के अंशकी कल्पना की गई है। वस्तुतः सदृश परिणमन और विसदृश परिणमनमें वर्तता वह एक अखण्ड पदार्थ ही है।

प्रश्न ४०—अवग्रहादिक चारों प्रकारके मतिज्ञान कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर-- अवग्रहादिक मतिज्ञान १२-१२ प्रकारके हैं—(१) बहु-अवग्रह, (२) एक-अवग्रह, (३) बहुविध-अवग्रह, (४) एकविध-अवग्रह, (५) क्षिप्र-अवग्रह, (६) अक्षिप्र-अवग्रह, (७) अनिःसृत-अवग्रह, (८) निःसृत-अवग्रह, (९) अनुक्त-अवग्रह, (१०) उक्त-अवग्रह, (११) ध्रुव-अवग्रह और (१२) अध्रुव-अवग्रह।

प्रश्न ४१-- बहु-अवग्रह ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—बहुत पदार्थोंका एक साथ अवग्रहज्ञान करना बहु-अवग्रहज्ञान है। जैसे पांचों अंगुलियोंका एक साथ ज्ञान होना।

प्रश्न ४२—एक-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक ही पदार्थका ग्रहण होना एक-अवग्रह है।

प्रश्न ४३—बहुविध-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—बहुत प्रकारके पदार्थोंका अवग्रह करना बहुविध-अवग्रह है।

प्रश्न ४४—एकविध-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक ही प्रकारके पदार्थका अवग्रह करना एकविध-अवग्रह है।

प्रश्न ४५—एकविध-अवग्रह एक प्रकारके बहुत पदार्थोंका होता होगा ?

उत्तर—एकविध अवग्रह एक प्रकारके अनेक पदार्थोंमें भी होता है और एक ही पदार्थमें भी होता है।

प्रश्न ४६—एक पदार्थमें भी एकविध अवग्रह हो तो इस एकविध व एक-अवग्रहमें क्या अन्तर हुआ ?

उत्तर— एक पदार्थमें एकविधमें अवग्रह हो तो एकको एक प्रकारकी दृष्टिसे जाननेसे होता है और प्रकारकी दृष्टि बिना एकको जाननेसे एक अवग्रह होता है।

प्रश्न ४७—क्षिप्र-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—शीघ्रतासे पदार्थका अवग्रहज्ञान कर लेना क्षिप्र-अवग्रह है।

प्रश्न ४८—अक्षिप्र-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर— शनैः शनैः पदार्थका अवग्रह ज्ञान करना, अक्षिप्र-ज्ञान करना अक्षिप्र-अवग्रह है।

प्रश्न ४६—निःसृत-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—निःसृत पदार्थका अवग्रह करना निःसृत-अवग्रह है।

प्रश्न ५०—अनिःसृत-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—निःसृत अंशको जानकर अनिःसृत पदार्थको जानना अनिःसृत अवग्रह है।

प्रश्न ५१—उक्त-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रियों व मनके द्वारा अपने नियत विषयको जानना उक्त-अवग्रह है।

प्रश्न ५२—अनुक्त-अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी इन्द्रिय या मन द्वारा अपने नियत विषयको जानते हुये साथ ही अन्य विषयोंको जानना अनुक्त-अवग्रह है। जैसे चक्षुरिन्द्रिय द्वारा आगको देखते हुये इसको भी जान जाना।

प्रश्न ५३—व्यञ्जनावग्रह भी क्या सर्व इन्द्रिय व मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है ?

उत्तर— व्यञ्जनावग्रह चक्षुरिन्द्रिय व मनके निमित्तसे उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय और मन अप्राप्यकारी हैं, इनसे जो जाना जाता है वह एकदम स्पष्ट हो जाता है। व्यञ्जनावग्रह केवल स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र—इन चार इन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न होता है।

प्रश्न ५४-- मतिज्ञानके कितने प्रभेद हो सकते हैं।

उत्तर-- मतिज्ञानके मूल भेद ५ हैं—(१) सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, (२) स्मरण, (३) प्रत्यभिज्ञान, (४) तर्क, (५) अनुमान (स्वार्थानुमान)। इनमें से प्रत्येकके भेद लगाना चाहिये। विस्तारसे तो मतिज्ञानके असंख्यात भेद हो जाते हैं।

प्रश्न ५५--सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके कितने भेद हैं ?

उत्तर—सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके कुल भेद ३३६ हैं। वे इस प्रकार हैं—व्यञ्जनावग्रहके ४८, क्योंकि व्यञ्जनावग्रह चार इन्द्रियोंसे बहु आदि बारह प्रकारके पदार्थोंके विषयमें उत्पन्न होता है। अर्थावग्रहके ७२, क्योंकि अर्थावग्रह पाँचों इन्द्रिय व छठा मन इन ६ साधनों से बारह प्रकारके पदार्थोंके विषयोंमें उत्पन्न होता है। इसी प्रकार ईहाके ७२, अवायके ७२ और धारणाके भी ७२ भेद हो जाते हैं। सब मिलाकर सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके ३३६ भेद हुये।

प्रश्न ५६– स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क व स्वार्थानुमानके कितने भेद हो जाते हैं ?

उत्तर—इनके प्रत्येकके १२, १२ भेद हो जाते हैं, क्योंकि उक्त चारों ज्ञान मनके निमित्तसे उत्पन्न होते हैं, इन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न नहीं होते, अतः बारह प्रकारके पदार्थ-विषयक मनसे उत्पन्न होने वाले स्मरणादि १२-१२ प्रकारके हो जाते हैं।

प्रश्न ५७-- श्रुतज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर– श्रुतज्ञानके २ भेद हैं—(१) अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान, (२) अक्षरात्मक श्रुतज्ञान।

प्रश्न ५८– अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिसका ग्रहण अक्षरके रूपमें नहीं किया जाता है उसे अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं ?

प्रश्न ५९– अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किन जीवोंके होता है ?

उत्तर—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असैनी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके तो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही होता है। *सैनी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके भी अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो सकता है।*

प्रश्न ६०– अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके २ भेद हैं—(१) पर्याय, (२) पर्यायसमास।

प्रश्न ६१—पर्याय श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्यायका अर्थ यहाँ सबसे छोटा अंश (भाग) है। अक्षर (जिसका क्षरण अर्थात् विनाश न हो ऐसा ज्ञान) के अनन्तवें भाग पर्यायनामक मतिज्ञान है।

यह पर्यायनामक मतिज्ञान निरावरण व अविनाशी है। यह पर्याय नामक मतिज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त भवमें उत्पन्न होने वाले जीवके प्रथम समयमें होता है। इस पर्याय मतिज्ञानसे जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है उसे भी उपचारसे पर्याय श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ६२—पर्यायसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय श्रुतज्ञानसे अनन्त भाग अधिक श्रुतज्ञानको पर्यायसमास श्रुतज्ञान कहते हैं और इसके बाद भी असंख्यात लोक प्रमाण षड्वृद्धियों ऊपर तक पर्यायसमास श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ६३—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसका ग्रहण अक्षरोंके रूपमें हो, उसे अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान सैनी जीवोंके ही होता है।

प्रश्न ६४—अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के १८ भेद हैं—(१) अक्षर, (२) अक्षरसमास, (३) पद, (४) पदसमास, (५) संघात, (६) संघातसमास, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रतिपत्तिसमास, (९) अनुयोग, (१०) अनुयोगसमास, (११) प्राभृतप्राभृत, (१२) प्राभृतप्राभृतसमास, (१३) प्राभृत, (१४) प्राभृतसमास, (१५) वस्तु, (१६) वस्तुसमास, (१७) पूर्व और (१८) पूर्वसमास।

प्रश्न ६५—अक्षर श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यश्रुत-प्रतिबद्ध एक अक्षरकी जिससे उत्पत्ति हो सके उसे अक्षरज्ञान कहते हैं अथवा उत्कृष्ट पर्यायसमास श्रुतज्ञानसे अनन्तगुणा ज्ञान अक्षरश्रुतज्ञान है।

प्रश्न ६६—अक्षरश्रुतज्ञान किन जीवोंके होता है ?

उत्तर—अक्षरश्रुतज्ञान सैनी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके ही हो सकता है, क्योंकि अक्षरश्रुतज्ञान मनका विषय है।

प्रश्न ६७—अक्षरसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अक्षरज्ञानके ऊपर और पदज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद हैं वे सब अक्षरसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ६८—पदश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अक्षरसमास श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर बढ़नेपर पदश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ६९—एक द्रव्यश्रुतपदमें कितने अक्षर होते हैं ?

उत्तर—एक द्रव्यश्रुतपदमें १६३४८३७८८८ अक्षर होते हैं। इन अक्षरोंसे उत्पन्न हुए भावश्रुतको भी उपचारसे पदश्रुतज्ञान नामसे कहते हैं।

प्रश्न ७०—पदसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– पदश्रुतज्ञानसे ऊपर और संघातश्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब पदसमास श्रुतज्ञान कहलाते हैं।

प्रश्न ७१– संघातश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट पदसमासमें एक अक्षर बढ़नेपर संघातश्रुतज्ञान होता है। इसके द्वारा चार गतिमार्गणामें से एक गति मार्गणाका प्ररूपण हो जाता है।

प्रश्न ७२– संघातश्रुतज्ञानमें कितने पद होते हैं ?

उत्तर– संघातश्रुतज्ञानमें संख्यात पद होते हैं ?

प्रश्न ७३—संघातसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—संघातश्रुतज्ञानसे ऊपर और प्रतिपत्तिश्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब संघातसमास श्रुतज्ञान कहलाते हैं।

प्रश्न ७४– प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट संघातसमासमें एक अक्षर बढ़नेपर प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान होता है। प्रतिपत्तिश्रुतज्ञानके पदोंके द्वारा १४ मार्गणावोंके एक-एक भेद प्ररूपित हो जाते हैं।

प्रश्न ७५—प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानसे ऊपर और अनुयोग श्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं ये सब प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ७६-- अनुयोग श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट प्रतिपत्तिसमासमें एक अक्षर बढ़नेपर अनुयोग श्रुतज्ञान हो जाता है। अनुयोगश्रुतज्ञानके पदों द्वारा १४ मार्गणावोंका पूर्ण प्ररूपण हो जाता है।

प्रश्न ७७– अनुयोगसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनुयोगश्रुतज्ञानसे ऊपर और प्राभृत श्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब अनुयोगसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ७८– प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– उत्कृष्ट अनुयोगसमास श्रुतज्ञानमें एक अक्षर बढ़नेपर प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ७९– प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानमें कितने अनुयोग हैं ?

उत्तर—प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानमें संख्यात अनुयोग हैं।

प्रश्न ८०– प्राभृतप्राभृत समास किसे कहते हैं ?

उत्तर– प्राभृतप्राभृतसे ऊपर और प्राभृतसे नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सभी प्राभृतप्राभृत समास कहलाते हैं।

प्रश्न ८१– प्राभृतश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– उत्कृष्ट प्राभृतप्राभृतसमाससे ऊपर एक अक्षर बढ़नेपर प्राभृतश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८२—प्राभृतसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्राभृतश्रुतज्ञानसे ऊपर और वस्तु श्रुतज्ञानसे नीचे एक एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब प्राभृतसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ८३—वस्तुश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– उत्कृष्ट प्राभृतसमासके ऊपर एक अक्षर बढ़नेपर वस्तुश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८४—वस्तुश्रुतज्ञानमें कितने प्राभृत होते हैं ?

उत्तर—वस्तुश्रुतज्ञानमें २० प्राभृत होते हैं।

प्रश्न ८५–वस्तुसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तुश्रुतज्ञानसे ऊपर और पूर्व श्रुतज्ञानसे नीचे एक एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब वस्तुसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ८६—पूर्वश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट वस्तुसमासमें एक अक्षर बढ़नेपर पूर्वश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८७—पूर्वसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पूर्वश्रुतज्ञानसे ऊपर जब तक लोकबिन्दुसार नामक १४वां पूर्व पूर्ण हो जाता है तब तक एक एक अक्षर बढ़कर जितने भेद हैं वे सर्व पूर्वसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ८८– उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर क्या कोई श्रुतज्ञान नहीं है ?

उत्तर– उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर भी श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८९—फिर उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर वाले श्रुतज्ञानको श्रुतज्ञानके उक्त भेदोंमें क्यों नहीं अलग नामसे बताया ?

उत्तर– उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर जितना श्रुतज्ञान रह जाता है वह सब एकद्रव्य श्रुतपदके बराबर भी नहीं है, इसलिये इस प्रक्रियामें उसे अलग भेद करके बताया नहीं है।

प्रश्न ९०– इस अवशिष्ट श्रुतज्ञानको किस नामसे बोलते हैं ?

उत्तर—अवशिष्ट श्रुतज्ञानका नाम अङ्गबाह्य है। इसमें सामायिकादि १४ विषयोंका वर्णन है।

प्रश्न ६१– विषयवारकी अपेक्षासे अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर– विषयवारकी अपेक्षा से श्रुतज्ञानके मूल भेद २ हैं—(१) अङ्गबाह्य, (२) अङ्गप्रविष्ट ।

प्रश्न ६२– अङ्गबाह्यके कितने भेद हैं ?

उत्तर– अङ्ग बाह्य के १४ भेद हैं—(१) सामायिक, (२) चतुर्विंशतिस्तव, (३) वन्दना, (४) प्रतिक्रमण, (५) वैनयिक, (६) कृतिकर्म, (७) दशवैकालिक, (८) उत्तराध्ययन, (९) कल्पव्यवहार, (१०) कल्प्याकल्प्य, (११) महाकल्प्य, (१२) पुण्डरीक, (१३) महापुण्डरीक, (१४) निषिद्धिका ।

प्रश्न ६३—सामायिक नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानमें किसका वर्णन अथवा ज्ञान है ?

उत्तर—सामायिक श्रुताङ्गमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन छह पद्धतियों द्वारा समताभावके विधानका वर्णन है ।

प्रश्न ६४—चतुर्विंशतिस्तव श्रुताङ्गमें किसका वर्णन है ?

उत्तर– चतुर्विंशति तीर्थङ्करोंके नाम, अवगाहना, कल्याणक, अतिशय व उनकी वन्दना विधि व वन्दनाफलका वर्णन इस श्रुताङ्गमें है ।

प्रश्न ६५– वन्दना नामक श्रुताङ्गमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—एक जिनेन्द्रदेवकी व एक जिनेन्द्रदेवके अवलम्बनसे जिनालयकी वन्दनाकी विधिका वर्णन वन्दना नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानमें है ।

प्रश्न ६६—प्रतिक्रमण नामक श्रुताङ्गमें किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर—दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक व औत्तमार्थिक, इन सात प्रकारके प्रतिक्रमणोंका काल व शक्तिके अनुसार करनेकी विधिका वर्णन है ।

प्रश्न ६७—वैनयिक नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानमें किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस श्रुतांगमें, ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय व उपचारविनय, इन चार प्रकारके विनयोंका वर्णन है ।

प्रश्न ६८– कृतिकर्म नामक श्रुतांगमें किसका वर्णन है ?

उत्तर– अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु, इन पाँचों परमेष्ठियोंकी पूजाविधिका वर्णन कृतिकर्म नामक अंगबाह्य श्रुतज्ञानमें है ।

प्रश्न ६९—दशवैकालिक श्रुतांगमें किसका वर्णन है ?

उत्तर– दस विशिष्ट कालोंमें होने वाली विशेषता व मुनिजनोंकी आचरणविधिका वर्णन दशवैकालिक श्रुतमें है ।

प्रश्न १००—उत्तराध्ययन श्रुतांगमें किसका वर्णन है ?

उत्तर– कैसे उपसर्ग सहना चाहिये, कैसे परीषह सहना चाहिये इत्यादि अनेक प्रश्नों के इसमें उत्तर दिये गये हैं।

प्रश्न १०१– कल्पव्यवहारनाम श्रुतांगमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—साधुओंके कल्प्य याने योग्य आचरणोंके व्यवहार याने आचरणका कल्प्यव्यवहारमें वर्णन है।

प्रश्न १०२–कल्प्याकल्प्य श्रुताङ्गमें किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर– द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके अनुसार मुनियोंके लिये यह योग्य है व यह अयोग्य है—इस प्रकार सब कल्प्य और अकल्प्योंका इस श्रुताङ्गमें वर्णन है।

प्रश्न १०३– महाकल्प्य नामक अङ्गबाह्य श्रुतमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—काल व संहननकी अनुकूलताको प्रधानतासे साधुओंके योग्य द्रव्य, क्षेत्र आदिका वर्णन इस श्रुताङ्गमें है।

प्रश्न १०४—पुण्डरीक नामक बाह्य श्रुतमें किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस श्रुताङ्गमें चार प्रकारके देवोंमें उत्पत्तिके कारणभूत पूजा, दान, तप, व्रत आदिके अनुष्ठानोंका वर्णन है।

प्रश्न १०५– महापुण्डरीक श्रुतांगमें किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर– इस श्रुताङ्गमें इन्द्र व प्रतीन्द्रोंमें उत्पत्तिके कारणभूत विशिष्ट तपोंके अनुष्ठानका वर्णन है।

प्रश्न १०६– निषिद्धिका नामक श्रुताङ्गमें किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर—दोषोंके निराकरणमें समर्थ अनेक प्रकारके प्रायश्चितोंका वर्णन निषिद्धिका नामक बाह्यश्रुतमें है।

प्रश्न १०७—अंगप्रविष्टके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अंगप्रविष्टके बारह भेद हैं—(१) आचारांग, (२) सूत्रकृताङ्ग, (३) स्थानांग, (४) समवायाङ्ग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति, (६) ज्ञातृकथाङ्ग, (७) उपासकाध्ययनांग, (८) अन्तःकृद्दशाङ्ग, (९) अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, (१०) विपाकसूत्राङ्ग, (११) प्रश्नव्याकरणाङ्ग और (१२) दृष्टिवादाङ्ग। इन बारह अंगोंमें से सबसे अधिक विस्तृत दृष्टिवाद अंग है, इसके भी भेद प्रभेद अनेक हैं।

प्रश्न १०८—दृष्टिवाद अंगके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दृष्टिवाद अंगके ५ भेद हैं—(१) प्रथमानुयोग, (२) परिकर्म, (३) सूत्र, (४) चूलिका और (५) पूर्व। इनमें से परिकर्म, चूलिका और पूर्वके भी अनेक भेद हैं।

प्रश्न १०९—परिकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर—परिकर्मके ५ भेद हैं—(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (२) सूर्यप्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (४) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति ।

प्रश्न ११०—चूलिकाके कितने भेद हैं ?

उत्तर—चूलिकाके ५ भेद हैं—(१) जलगता, (२) स्थलगता, (३) मायागता, (४) आकाशगता और (५) रूपगता ।

प्रश्न १११—पूर्वके कितने भेद हैं ?

उत्तर—पूर्वके १४ भेद हैं—(१) उत्पादपूर्व, (२) अग्रायणीपूर्व, (३) वीर्यानुवाद, (४) अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, (५) ज्ञानप्रवादपूर्व, (६) सत्यप्रवादपूर्व, (७) आत्मप्रवादपूर्व, (८) कर्मप्रवादपूर्व, (९) प्रत्याख्यानवादपूर्व, (१०) विद्यानुवादपूर्व, (११) कल्याणवादपूर्व, (१२) प्राणवादपूर्व, (१३) क्रियाविशालपूर्व और (१४) लोकबिन्दुसारपूर्व ।

प्रश्न ११२—परिमाणकी अपेक्षा कहे गये १८ प्रकारके अक्षरात्मक श्रुतज्ञानमें से किन भेदोंमें किन अंग पूर्व आदिका समावेश होता है ?

उत्तर—चौदह पूर्वोंको छोड़कर बाकी श्रुतज्ञान वस्तु समासपर्यन्त १६ भेदोंमें समाविष्ट है और चौदह पूर्व पूर्वश्रुतज्ञान पूर्वसमासश्रुतज्ञानमें समाविष्ट है ।

प्रश्न ११३—आचाराङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें मुनियोंके आचारका वर्णन है कि वह किस तरह समस्त आचरण करे, यत्नपूर्वक भाषण करे, यत्नपूर्वक आहार विहार करे आदि । इस अङ्गमें ८ हजार पद हैं । एक पदमें १६३४८३७८८८ अक्षर होते हैं ?

प्रश्न ११४—सूत्रकृताङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—सूत्रकृताङ्गमें ३६ हजार पद हैं । इस अङ्गमें सूत्रोंके द्वारा ज्ञान विनय आदि अध्ययन क्रिया, कल्प्याकल्प्य आदि व्यवहारधर्मक्रिया व स्वसमय और परसमयके स्वरूपका वर्णन है ।

प्रश्न ११५—स्थानाङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—स्थानाङ्गमें ४२ हजार पद हैं । इस अङ्गमें प्रत्येक द्रव्योंके १, २, ३ आदि अनेक भेद, विकल्पोंका वर्णन है । जैसे जीव एक है, जीव दो हैं—मुक्त और संसारी । जीवके तीन भेद हैं—कर्ममुक्त, जीवन्मुक्त, संसारी इत्यादि ।

प्रश्न ११६—समवायांगमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें १ लाख ६४ हजार पद हैं । इस अङ्गमें सदृश विस्तार वाले सदृश धर्म वाले, सदृश संख्या वाले जो जो पदार्थ हैं उन सबका वर्णन है । जैसे ४५ लाख योजन वाले ५ पदार्थ हैं—ढाई द्वीप, सिद्धक्षेत्र आदि ।

प्रश्न ११७-- व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस अङ्गमें दो लाख अट्ठाइस हजार पद हैं। इसमें साठ हजार प्रश्न और उत्तर हैं। जैसे जीव नित्य है या अनित्य ? जीव वक्तव्य है या अवक्तव्य इत्यादि।

प्रश्न ११८-- ज्ञातृधर्मकथाङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इसमें पाँच लाख छप्पन हजार पद हैं। इसमें वस्तुओंका स्वभाव तीर्थंकरोंका माहात्म्य, दिव्यध्वनिका समय व स्वरूप, गणधर आदि मुख्य ज्ञाताओंकी कथावोंका वर्णन है।

प्रश्न ११९– उपासकाध्ययनांगमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ग्यारह लाख सत्तर हजार पद हैं। इसमें श्रावकोंकी प्रतिमा, आचरण व क्रियाकाण्डोंका वर्णन है। श्रावकोचित मन्त्रोंका भी इसमें वर्णन है।

प्रश्न १२०– अन्तःकृद्दशाङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर-- इसमें २३ लाख २८ हजार पद हैं और इसमें उन अन्तःकृत केवलियोंका वर्णन है जो प्रत्येक तीर्थङ्करोंके तीर्थमें दश दश मुनि घोर उपसर्ग सहन करके अन्तमें समाधि द्वारा संसारके अन्तको प्राप्त हुए हैं।

प्रश्न १२१-- अनुत्तरोपपादिकदशाङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ९२४४००० पद हैं। इसमें प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें होने वाले उन दश दश मुनियोंका वर्णन है जो घोर उपसर्ग सहन करके समाधि भावसे प्राण तज करके विजयादिक अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए हैं।

प्रश्न १२२—प्रश्न व्याकरणाङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ९३१६००० पद हैं। इसमें अनेक प्रश्नोंके द्वारा तीन काल सम्बन्धी धनधान्यादि लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, जय पराजय आदि फलोंका वर्णन है।

प्रश्न १२३—विपाकसूत्रमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें एक करोड़ चौरासी लाख पद हैं और इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार शुभ अशुभ कर्मोंका तीव्र भेद आदि अनेक प्रकारके फल (विपाक) होनेका वर्णन है।

प्रश्न १२४—दृष्टिवाद अङ्गमें कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस अङ्गमें १०८ करोड़ ६८ लाख ५६ हजार पाँच पद हैं। इसमें ३६३ मिथ्यामतोंका वर्णन और निराकरण है। लोक, द्रव्य, मंत्र, विद्या, कलाओं, कथाओं आदि का भी वर्णन है।

प्रश्न १२५—प्रथमानुयोगमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ५ हजार पद हैं। इसमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र और प्रतिनारायणोंकी कथाओं व इनसे सम्बन्धित उपकथाओंका वर्णन है।

प्रश्न १२६– परिकर्ममें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें १ करोड़ ८१ लाख ५ हजार पद हैं। इसमें भूवलय आदिके सम्बंध में गणितके करणसूत्रोंका वर्णन है। इसके चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि जो ५ भेद हैं उनके वर्णनमें इसके पदों और विषयोंका विवरण होगा।

प्रश्न १२७– चन्द्रप्रज्ञप्तिमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—चन्द्रप्रज्ञप्तिमें ३६ लाख ५ हजार पद हैं और इसमें चन्द्र इन्द्रके विमान, परिवार, आयु, गमन आदिका वर्णन है एवं चन्द्रविमानका पूर्णग्रहण अर्द्धग्रहण कैसे होता है इत्यादि तद्विषयक सभी वर्णन हैं।

प्रश्न १२८– सूर्यप्रज्ञप्तिमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस परिकर्ममें ५ लाख ३ हजार पद हैं और इसमें सूर्य प्रतीन्द्रके विमान, परिवार, आयु, गमन, ग्रहण आदि सभी बातोंका वर्णन है।

प्रश्न १२९– जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस परिकर्ममें ३ लाख २५ हजार पद हैं और इसमें जम्बूद्वीपके क्षेत्र, कुलाचल, ह्रद, मेरु, वेदिका, वन, अकृत्रिम चैत्यालय, व्यन्तरोंके आवास, महानदियों आदिका वर्णन है।

प्रश्न १३०– द्वीपसागरप्रज्ञप्तिमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमें ५२ लाख ३६ हजार पद हैं। इसमें असंख्याते द्वीपसमुद्रोंके विस्तार, रचना, अकृत्रिम चैत्यालय आदिका वर्णन है।

प्रश्न १३१– व्याख्याप्रज्ञप्तिमें कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर– इसमें रूपी अरूपी द्रव्य, जीव अजीव द्रव्य, अनन्तरसिद्ध परम्परासिद्ध एवं अनेक पदार्थोंका व्याख्यान है। इसमें ८४ लाख ३६ हजार पद हैं।

प्रश्न १३२– सूत्र नामक दृष्टिवादाङ्गमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इसमें ८८ लाख पद हैं। इसमें ३६३ मिथ्यामतोंका विशेष विवरण है और उन समस्त पूर्वपक्षोंका निराकरण है। न्यायशास्त्रोंका उद्गम इस सूत्र नामक दृष्टिवाद अङ्गसे हुआ है।

प्रश्न १३३—चूलिकामें कितने पद हैं और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसके जलगता आदि ५ भेदोंके प्रत्येकके २०९८९२०० पद हैं। इन पाँचों के पदोंका जोड़ १०४९४६००० होता है। इतने चूलिकामें समस्त पद हैं। इन भेदोंके विषय विवरणमें चूलिकाके विषयका वर्णन हो जावेगा।

प्रश्न १३४—जलगता चूलिकामें किसका वर्णन है ?

उत्तर—जलमें अथवा जलपर किस प्रकार गमन किया जा सकता है, अग्निका स्तम्भन, भक्षण कैसे हो सकता है? अग्निमें प्रवेश अथवा अग्निपर बैठना कैसे हो सकता है? इन सब बातोंके करनेके मंत्र, तंत्र, तपस्याओंका इसमें वर्णन है।

प्रश्न १३५—स्थलगता चूलिकामें किस बातका वर्णन है?

उत्तर—इसमें ऐसे मन्त्र-तन्त्र आदिका वर्णन है, जिसके प्रभावसे मेरु, पर्वत, भूमिमें प्रवेश किया जा सकता है और शीघ्र गमन किया जा सकता है।

प्रश्न १३६—मायागता चूलिकामें किस बातका वर्णन है?

उत्तर—अद्भुत मायामय बातें दिखाना, जो वस्तु यहाँ नहीं है उसे शीघ्र हाजिर करना, किसीकी गुप्त बातको बता देना आदि इन्द्रजाल सम्बन्धी बातोंका इसमें वर्णन है।

प्रश्न १३७—आकाशगता चूलिकामें किसका वर्णन है?

उत्तर—इसमें ऐसे मन्त्र-तन्त्र आदिका वर्णन है, जिसके प्रभावसे आकाशमें नाना प्रकारसे गमन किया जा सकता है।

प्रश्न १३८—रूपगता चूलिकामें किस बातका वर्णन है?

उत्तर—इसमें सिंह, वृषभ आदि अनेक प्रकारके रूप बना लेनेके कारणभूत मन्त्र-तन्त्र आदिका वर्णन है।

प्रश्न १३९—पूर्वनामक दृष्टिवाद अंगमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है?

उत्तर—समस्त पूर्वोंमें ९५५०५००० पद हैं। इसके उत्पादपूर्व आदि १४ भेद हैं, उनके विषयोंके विवरणमें पूर्वोंका विषय जान लिया जाता है।

प्रश्न १४०—उत्पादपूर्वमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है?

उत्तर—इसमें एक करोड़ पद हैं। इसमें प्रत्येक पदार्थके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मोंका वर्णन है।

प्रश्न १४१—अग्रायणीपूर्वमें कितने पद हैं और किसका वर्णन है?

उत्तर—इसमें ९६ लाख पद हैं और इसमें ५ अस्तिकाय, ६ द्रव्य, ७ तत्त्व, ७०० सुनय, ७०० दुर्नय आदिका वर्णन है। यह विषय द्वादशांगका एक मुख्य विषय है।

प्रश्न १४२—वीर्यानुवादपूर्वमें कितने पद हैं और किस बातका वर्णन है?

उत्तर—इस पूर्वमें ७० लाख पद हैं, इसमें आत्माकी शक्ति, परपदार्थकी शक्ति, द्रव्य गुण पर्यायकी शक्ति, कालकी शक्ति, तपस्याकी शक्ति आदि अनेक प्रकारकी शक्तियोंका वर्णन है।

प्रश्न १४३—अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वमें किसका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं?

उत्तर—इस पूर्वमें स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य आदि सप्तभंगीका वर्णन है जिससे द्रव्यका स्वरूप ज्ञात होता है। इसमें ६० लाख पद हैं।

प्रश्न १४४—ज्ञानप्रवाद पूर्वमें किस बातका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर– इस पूर्वमें पाँचों सम्यग्ज्ञान और तीनों मिथ्याज्ञानोंके स्वरूप, भेद, विषय, फल आदिका वर्णन है। इसमें ९९९९९९९ पद हैं (एक कम एक करोड़ पद हैं।)

प्रश्न १४५—सत्यप्रवादपूर्वमें किस बातका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—शब्दोच्चारणके ८ स्थान, ५ प्रयत्नोंका, वचनके भेद, बारह प्रकारकी भाषा, दस प्रकारके सत्यवचन, अनेक असत्यवचन, वचनगुप्ति, मौन आदि अनेक वचन सम्बंधी विषयों का वर्णन है। इसमें १ करोड़ ६ पद हैं।

प्रश्न १४६—आत्मप्रवादपूर्वमें किस बातका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इसमें आत्मतत्त्वसम्बंधी विषयोंका वर्णन है। जैसे आत्मा किसे करता है, किसे भोगता है, आत्माका शुद्ध स्वरूप क्या है आदि। इसमें २६ करोड़ पद हैं।

प्रश्न १४७—कर्मप्रवादपूर्वमें किसका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर-- इसमें कर्मकी अनेक अवस्थाओंका वर्णन है। जैसे– कर्मोंके मूल भेद कितने हैं ? उत्तर भेद कितने हैं ? बंध, उदय, उदीरणा कैसे होती है आदि। इसमें एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं।

प्रश्न १४८– प्रत्याख्यानपूर्वमें किस बातका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर-- इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व पुरुषके संहननके अनुसार सदोष वस्तुका त्याग, उपवासविधान, व्रत आदिका वर्णन है। इसमें ८४ लाख पद हैं।

प्रश्न १४९– विद्यानुवादपूर्वमें किस बातका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर-- विद्यानुवादमें अंगुष्ठप्रसेन आदि ७०० अल्पविद्या और रोहिणी आदि ५०० महाविद्याओंके स्वरूप, सामर्थ्य, साधनविधि और मन्त्र-तन्त्रका तथा सिद्ध विद्याओंके फलका वर्णन है। इसमें एक करोड़ दस लाख पद हैं।

प्रश्न १५०-- कल्याणवादपूर्वमें कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर-- इस पूर्वमें २६ करोड़ पद हैं और इसमें तीर्थंकरोंके पंचकल्याणकोंका, षोडश कारण भावनाओंका, ग्रहण, शकुन आदिके फलोंका वर्णन है।

प्रश्न १५१—प्राणानुवादपूर्वमें किस बातका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—इसमें आयुर्वेद सम्बन्धी चिकित्सा, नाड़ीगति, औषधियोंके गुण अवगुण आदि सर्वविषयोंका वर्णन है। इसमें १३ करोड़ पद हैं।

प्रश्न १५२– क्रियाविशाल पूर्वमें किन बातोंका वर्णन है और इसमें कितने पद हैं ?

उत्तर—संगीत, काव्य, अलंकार, कला, शिल्पविज्ञान, गर्भाधानादि क्रिया आदि नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंका इसमें वर्णन है। इसमें ९ करोड़ पद हैं।

प्रश्न १५३— लोकबिन्दुसार पूर्वमें कितने पद हैं और इसमें किसका वर्णन है ?

उत्तर— इस पूर्वमें १२ करोड़ ५० लाख पद हैं। इसमें तीनों लोकोंका स्वरूप, मोक्ष का स्वरूप और मोक्ष प्राप्त करनेके कारण, ध्यान आदिका वर्णन है।

प्रश्न १५४— पूर्ण श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर— पूर्ण श्रुतज्ञान श्रुतकेवलीके होता है। द्वादशांगके पाठी व ज्ञाता तो इन्द्र, लौकान्तिकदेव व सर्वार्थसिद्धिके देव भी होते हैं, किन्तु अंगबाह्यसे अपरिचित होनेसे वे श्रुत-केवली नहीं कहलाते। श्रुतकेवली निर्ग्रन्थ साधु ही हो सकते हैं।

प्रश्न १५५— श्रुतज्ञान क्या सर्वथा परोक्ष ही होता है या किसी प्रकार प्रत्यक्ष भी हो सकता है ?

उत्तर— शब्दात्मक श्रुतज्ञान तो सर्व परोक्ष ही है, स्वर्ग आदि बाह्य विषय ज्ञान भी परोक्ष ही है। मैं सुख-दुःखादिरूप हूं, ज्ञानरूप हूं, यह ज्ञान ईषत् परोक्ष है। शुद्धात्माभिमुख स्वसम्वेदनरूप ज्ञान प्रत्यक्ष है, हाँ केवलज्ञानकी अपेक्षा परोक्ष है।

प्रश्न १५६— यदि श्रुतज्ञान क्वचित् प्रत्यक्ष है तो "आद्ये परोक्षम्" इस सूत्रसे विरोध आ जायगा ?

उत्तर— "आद्ये परोक्षम्" यह उत्सर्ग कथन है। जैसे मतिज्ञान परोक्ष होकर भी अप-वादस्वरूप, सांव्यवहारिकको प्रत्यक्ष भी माना है, वैसे श्रुतज्ञान परोक्ष होकर भी अपवादस्व-रूप अन्तर्ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाता है।

प्रश्न १५७— अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर— अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे व वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे मूर्त वस्तुको आत्मीय शक्तिसे एकदेश प्रत्यक्ष जाननेको अवधिज्ञान कहते हैं। अवधि मर्यादाको कहते हैं। जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादाको लेकर जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं। अवधिज्ञानसे पहिलेके सब ज्ञान भी मर्यादाके भीतर ही जानते हैं।

प्रश्न १५८— इससे तो मनःपर्ययज्ञान मर्यादा रहित जानने वाला हो जावेगा ?

उत्तर— नहीं, मनःपर्ययज्ञान भी अवधिज्ञानसे पहिलेका ज्ञान है, क्योंकि वास्तवमें ज्ञानोंके नाम इस क्रमसे हैं— (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) मनःपर्ययज्ञान, (४) अवधि-ज्ञान, (५) केवलज्ञान।

प्रश्न १५९— सूत्रमें व इस गाथामें तो "मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्" ऐसा क्रम दिया है।

उत्तर— मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिधारी संन्यासी मुनिके ही होता है, इस विशेष प्रयोजनको दिखानेके लिये मनःपर्ययज्ञान व अवधिज्ञानके बाद और केवलज्ञानसे पहिले लिखा गया है।

प्रश्न १६०—अवधिज्ञानका दूसरा अर्थ भी कोई है ?

उत्तर– है। अवाग्धानादवधिः इस व्युत्पत्तिके अनुसार अवधिज्ञानका यह अर्थ है जो नीचे विशेष क्षेत्र लेकर जावे सो अवधिज्ञान है। अवधिज्ञानका क्षेत्र नीचे विशेष होता है, ऊपर कम होता है। पूर्ण अवधिज्ञानकी बात विशेष है।

प्रश्न १६१– अवधिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर– अवधिज्ञानके २ भेद हैं—(१) गुणप्रत्यय अवधिज्ञान, (२) भवप्रत्यय अवधिज्ञान। गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य, तिर्यञ्चोंका कहलाता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकियोंके होता है।

प्रश्न १६२-- क्या अवधिज्ञानके अन्य प्रकारसे भी भेद हैं ?

उत्तर-- अवधिज्ञानके ३ भेद हैं– (१) देशावधि, (२) परमावधि और (३) सर्वावधि। देशावधि चारों गतियोंमें हो सकता है। परमावधि और सर्वावधि मनुष्यके ही और तद्भव मोक्षगामीके ही होते हैं।

प्रश्न १६३—अवधिज्ञानके और भी अन्य प्रकारसे भेद हैं क्या ?

उत्तर—अवधिज्ञानके ६ भेद हैं—(१) अनुगामी, (२) अननुगामी, (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान, (५) अवस्थित, (६) अनवस्थित।

प्रश्न १६४– इन सब भेदोंके स्वरूप क्या हैं ?

उत्तर—इन सब भेदोंके स्वरूप आदि जाननेके लिये गोम्मटसार जीवकाण्ड आदि सिद्धान्त ग्रन्थ देखें। इस टीकामें विस्तारभयसे नहीं लिखा जा रहा है।

प्रश्न १६५– मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो ज्ञान इन्द्रिय व मनकी सहायता बिना आत्मीय शक्तिसे दूसरोंके मनमें तिष्ठते हुये विकल्पको व विकल्पागत रूपी पदार्थको एकदेश स्पष्ट जाने उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

प्रश्न १६६– क्या मनःपर्ययज्ञान मनके अवलम्बनसे प्रकट नहीं होता ?

उत्तर– मनःपर्ययज्ञानोपयोग होनेसे पहिले ईहामतिज्ञान होता है और ईहामतिज्ञान मनके अवलम्बनसे प्रकट होता है। इस तरह मनःपर्ययज्ञानसे पहिले तो मनका अवलम्बन है, किन्तु मनःपर्ययज्ञानोपयोगके समय मनका अवलम्बन नहीं है।

प्रश्न १६७—मन.पर्ययज्ञानके कितने भेद हैं ?

उत्तर– मनःपर्ययज्ञानके २ भेद हैं– (१) ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान, (२) विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान।

प्रश्न १६८– ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर— जो मनःपर्ययज्ञान परके मनमें स्थित सरल सीधी बातको जाने वह ऋजुमति-मनःपर्ययज्ञान है ।

प्रश्न १६९-- विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर— जो मनःपर्ययज्ञान परके कुटिल मनमें भी स्थित, अर्धचिन्तित, भविष्यमें विचारी जाने वाली, भूतकालमें विचारी गई आदि बातोंको जाने वह विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान है ।

प्रश्न १७०— केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर— जो स्वतंत्रतासे केवल आत्मशक्ति द्वारा त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों सहित समस्त द्रव्योंको सर्वदेश प्रत्यक्ष जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान सर्व प्रकार उपादेयभूत है ।

प्रश्न १७१-- इस ज्ञानकी उत्पत्तिका साधन क्या है ?

उत्तर— निज शुद्धात्मतत्त्वका सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप एकाग्र ध्यान केवलज्ञानको उत्पत्तिका साधन है ।

उत्थानिका—अब उक्त ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके वर्णनका नयोंसे विभाग करते हुए उपसंहार करते हैं—

अट्ठ चदुणाण दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

अन्वय—ववहारा अट्ठ णाणं चदु दंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं, पुण सुद्धणया सुद्धं दंसणं णाणं जीवलक्खणं ।

अर्थ—व्यवहारनयसे आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन सामान्य रूपसे जीवका लक्षण कहा गया है, परन्तु शुद्धनयसे शुद्ध (निरपेक्ष) दर्शन ज्ञान जीवका लक्षण है ।

प्रश्न १— व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर— जो बुद्धि, पर्याय, भेद, संयोगको विषय करे उसे व्यवहारनय कहते हैं ।

प्रश्न २— आठ प्रकारके ज्ञान और चार प्रकारके दर्शन जीवके लक्षण व्यवहारनयसे क्यों हैं ?

उत्तर-- केवलज्ञान और केवलदर्शन तो शुद्ध पर्याय है और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन और अवधिदर्शन ये अशुद्ध अर्थात् अपूर्ण पर्यायें हैं । अतः इनको जीवका लक्षण कहना व्यवहारनयसे ही बनता है ।

प्रश्न ३-- केवलज्ञान, केवलदर्शन किस व्यवहारनयसे जीवका लक्षण है ?

उत्तर-- केवलज्ञान व केवलदर्शन शुद्ध सद्भूत व्यवहारनयसे जीवका लक्षण है । इस प्रसंगमें इस नयका दूसरा नाम अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय भी है । केवलज्ञान और केवल-

दर्शन निरपेक्ष पूर्ण स्वाभाविक शुद्ध पर्याय है।

प्रश्न ४-- मतिज्ञानादिक ४ ज्ञान व चक्षुर्दर्शनादिक तीन दर्शन किस व्यवहारनयसे जीवके लक्षण माने गये हैं ?

उत्तर-- मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय—ये चार ज्ञान और आदिके ३ दर्शन अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनयसे जीवके लक्षण कहे गये हैं। इस नयका दूसरा नाम उपचरित सद्भूत व्यवहारनय भी है। ये ज्ञान व दर्शन, ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्मके क्षयोपशमके कारण यथार्थ कुछ प्रकट हैं इसलिये सद्भूत हैं, किन्तु कारणवश अपूर्ण हैं, अतः अशुद्ध अथवा उपचरित हैं, पर्यायें हैं, अतः व्यवहारनयके विषय हैं।

प्रश्न ५-- कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान किस व्यवहारनयसे जीवके लक्षण हैं ?

उत्तर-- ये कुज्ञान उपचरितासद्भूतव्यवहारसे जीवके लक्षण हैं। ये कुज्ञान मिथ्यात्वके उदयवश होते हैं, इसलिये उपचरित हैं, विकृत भाव हैं। अतः असद्भूत हैं और पर्यायें हैं, इस कारण व्यवहारनयके विषय हैं।

प्रश्न ६— ये सामान्यसे जीवके लक्षण हैं, इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—ये बारह प्रकारके उपयोग समूह रूपमें जीवके लक्षण कहे जा रहे हैं। अतः इसे व्यवहारनयसे कहनेपर भी संसारी या मुक्त जीवके लक्षण हैं, ऐसी विवक्षा नहीं है।

प्रश्न ७— उपयोग बिना तो जीव रहता ही नहीं है, फिर ये उपयोग व्यवहारनयमें क्यों कहे ?

उत्तर—उपयोग अर्थग्रहणके व्यापारको कहते हैं। यह उपयोग चाहे शुद्ध भी हो तो भी एक समयमें जो जाननवृत्ति है वही दूसरे समयमें नहीं है। दूसरे समयमें दूसरी ही उस समयकी जाननवृत्ति है। इसी कारण उपयोग जीवका लक्षण व्यवहारसे ही है, क्योंकि उपयोग त्रैकालिक स्वभाव नहीं है।

प्रश्न ८— उपयोग कितनी प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—उपयोग ३ प्रकारके होते हैं— (१) शुद्ध, (२) शुभ और (३) अशुभ।

प्रश्न ९—शुद्ध उपयोग कौन है ?

उत्तर-- केवलज्ञान और केवलदर्शन-- ये दो शुद्ध उपयोग हैं।

प्रश्न १०-- शुभ उपयोग कौन हैं ?

उत्तर— मतिज्ञानादिक ४ ज्ञान और चक्षुर्दर्शनादिक ३ दर्शन, ये शुभ उपयोग हैं।

प्रश्न ११— अशुभ उपयोग कितने और कौन-कौन हैं ?

उत्तर— कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान-- ये तीन कुज्ञान अशुभ उपयोग हैं।

प्रश्न १२— शुद्धनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अभिप्राय अखण्ड निरपेक्ष त्रैकालिक शुद्धस्वभावको जाने उसे शुद्धनय कहते हैं।

प्रश्न १३—शुद्ध दर्शनका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर— शुद्ध दर्शन सहज दर्शनगुण याने दर्शनसामान्य है जो क्रमशः अनेक दर्शनोपयोग पर्यायरूप परिणाम करके भी किसी दर्शनोपयोगरूप नहीं रहता।

प्रश्न १४—शुद्ध ज्ञानका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान ज्ञानसामान्य अर्थात् सहज ज्ञानगुणको कहते हैं। यह शुद्ध ज्ञान क्रमशः अनेक ज्ञानोपयोगरूप परिणाम करके भी किसी ज्ञानोपयोगरूप नहीं रहता।

प्रश्न १५-- यह शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन शुद्धनयसे क्यों जीवका लक्षण है ?

उत्तर-- शुद्धनय पर्यायकी अपेक्षा न करके बनता है और यह शुद्ध दर्शन और ज्ञान भी पर्यायकी अपेक्षा न करके प्रतिभास होता है, अतः शुद्ध दर्शन व शुद्ध ज्ञान जीवके लक्षण शुद्धनयसे कहे गये हैं।

प्रश्न १६-- उक्त चार नयोंसे कहे गये लक्षणोंमें किस नयसे देखे गये जीवके लक्षण की दृष्टि उपादेय है ?

उत्तर-- उक्त चार प्रकारके लक्षणोंमें से शुद्धनयसे ज्ञात हुये जीवके लक्षणकी दृष्टि उपादेय है।

प्रश्न १७-- शुद्धनयसे जीवके लक्षणकी दृष्टि क्यों उपादेय है ?

उत्तर-- शुद्ध ज्ञान व दर्शन सहज शुद्ध, निर्विकार, अनाकुलस्वभाव, ध्रुवपारिणामिक भाव हैं। यह उपादेयभूत शाश्वत सहजानन्दमय अक्षय सुखका उपादान कारण हैं। शुद्धकी दृष्टिसे शुद्ध पर्याय प्रकट होती है, निर्विकारकी दृष्टिसे निर्विकार पर्याय प्रकट होती है, ध्रुवकी दृष्टिसे ध्रुव पर्याय प्रकट होती है। अतः सहज शुद्ध निर्विकार ध्रुव शुद्ध ज्ञान दर्शनकी दृष्टि उपादेय है।

प्रश्न १८-- शुद्ध ज्ञान व दर्शनकी दृष्टि भी तो एक पर्याय है, फिर यह दृष्टि क्यों उपादेय है ?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान दर्शनकी दृष्टि भी पर्याय है, इसलिये इस दृष्टिकी दृष्टि नहीं करना चाहिये, किन्तु शुद्ध ज्ञानदर्शन परमपारिणामिक भाव है, अतः शुद्ध ज्ञानदर्शन अर्थात् शुद्ध चैतन्यका अवलम्बन करना चाहिये, यही "शुद्धज्ञान दर्शनकी दृष्टि उपादेय है" इसका तात्पर्य है।

इस प्रकार "जीव उपयोगमय है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके जीव अमूर्त है, इसका वर्णन करते हैं।

वण्णरस पंच गंधा दो फ़ासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ।।७।।

अन्वय– णिच्चया जीवे पंच वण्ण रस दो गंधा अट्ठ फासा णो संति तदो अमुत्ति, ववहारा बंधादो मुत्ति ।

अर्थ—निश्चयनयसे जीवमें पांच वर्ण, ५ रस, दो गंध, ८ स्पर्श नहीं हैं, इसलिये जीव अमूर्त है । व्यवहारनयसे कर्मबन्ध होने के कारण जीव मूर्तिक है ।

प्रश्न १-- वर्ण किसे कहते हैं ?

उत्तर– वर्ण्यते अवलोक्यते चक्षुरिन्द्रियेन यः सः वर्णः । चक्षुरिन्द्रियके द्वारा जो देखा जाता है उसे वर्ण कहते हैं ।

प्रश्न २–वर्ण द्रव्य है कि गुण है या पर्याय ?

उत्तर—वर्ण द्रव्य नहीं है, वर्ण सामान्य गुण है । वर्ण गुणके परिणमन वर्ण पर्याय हैं ।

प्रश्न ३-- वर्णगुणके कितने परिणमन हैं ?

उत्तर– वर्णगुणकी पर्यायें असख्यात प्रकारकी हैं, किन्तु उन पर्यायोंको सदृश जातियों में संक्षिप्त करके देखा जावे तो पांच पर्यायें हैं—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) रक्त, (४) पीत और (५) श्वेत ।

प्रश्न ४– ये पांचों पर्यायें एक साथ एक द्रव्यमें रह सकती हैं क्या ?

उत्तर-- एक द्रव्यमें एक वर्ण पर्याय ही रह सकती है । एक वर्णकी ही बात नहीं प्रत्येक द्रव्यमें जितने गुण होते हैं उनमें प्रत्येक गुणकी एक-एक पर्याय ही एक समयमें उस द्रव्यमें होती है ।

प्रश्न ५—रस किसे कहते हैं ?

उत्तर– रस्यते इति रसः । जो रसनाइन्द्रियके द्वारा स्वादा जाय उसे रस कहते हैं । यह रससामान्य तो गुण है और रसपरिणमन पर्याय हैं ।

प्रश्न ६– रस गुणके कितने परिणमन हैं ?

उत्तर– संक्षेपमें रस गुणके परिणमन पाँच हैं-- (१) तिक्त, (२) कटु, (३) कषाय, (४) अम्ल याने खट्टा और (५) मधुर अर्थात् मीठा ।

प्रश्न ७– गन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—गन्ध्यते इति गन्धः । घ्राणेन्द्रियके द्वारा जो सूंघा जाय सो गन्ध है । गन्ध-सामान्य तो गुण है और गन्ध गुणके परिणमन पर्यायें हैं ।

प्रश्न ८-- गन्ध गुणके कितने परिणमन हैं ?

उत्तर—गन्ध गुणके परिणमन दो प्रकारके हैं—(१) सुगन्ध, (२) दुर्गन्ध ।

प्रश्न ९– स्पर्श किसे कहते हैं ?

उत्तर– 'स्पृश्यते इति स्पर्शः' इन्द्रियके द्वारा छुवा जाय उसे स्पर्श कहते हैं । स्पर्श सामान्य तो गुण है और स्पर्श गुणके परिणमन पर्यायें हैं ।

प्रश्न १०– स्पर्शगुणकी कितनी पर्यायें हैं ?

उत्तर—स्पर्श गुणकी ८ पर्यायें हैं—(१) स्निग्ध, (२) रूक्ष, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) गुरु, (६) लघु, (७) मृदु और (८) कठोर ।

प्रश्न ११– स्पर्श गुणकी पर्याय एक समयमें एक द्रव्यमें एक ही रहती है या अनेक ?

उत्तर—उक्त ८ पर्यायोंमें से ४ पर्यायें तो आपेक्षिक हैं—(१) गुरु, (२) लघु, (३) मृदु और (४) कठोर । ये स्कंध पर्यायोंमें ही पाये जाते हैं इनका आधारभूत द्रव्यमें कोई गुण नहीं है, केवल स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा ये समझमें आते हैं सो ये स्पर्शगुणकी पर्यायें उपचारसे कही जाती हैं । आदिकी चार पर्यायोंमें गुण पर्यायपना है ।

प्रश्न १२– स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण क्या ये चारों पर्यायें एक द्रव्यमें एक साथ रहती हैं या क्रमसे ?

उत्तर—एक द्रव्यमें (१ परमाणुमें) इन चारमें से दो रहती हैं स्निग्ध रूक्षमें से एक व शीत उष्णमेंसे एक ।

प्रश्न १३– एक स्पर्शगुणकी २ पर्यायें एक साथ कैसे रह सकती हैं ?

उत्तर—भेदविवक्षासे वास्तवमें एक परमाणु द्रव्यमें एतद्विषयक दो गुण हैं—एक गुणके परिणमन तो स्निग्ध, रूक्ष हैं और दूसरे गुणके परिणमन शीत, उष्ण हैं । परन्तु ये पर्यायें एक स्पर्शनइन्द्रियके द्वारा जानी जाती हैं । अतः इन सबको एक स्पर्श गुणके परिणमन कहा जाता है ।

प्रश्न १४—उन दोनों स्पर्श गुणोंके नाम क्या हैं ?

उत्तर– इन दोनों स्पर्श गुणोंके नाम उपलब्ध नहीं हैं. फिर भी एक गुणकी एक ही पर्याय होती है । इस अकाट्य नियमके कारण दो गुण सिद्ध ही हैं । जैसे एक चैतन्य गुणके दो परिणमन हैं—(१) ज्ञानोपयोग, (२) दर्शनोपयोग । ये दोनों उपयोग एक साथ होते हैं, अतः दो गुण सिद्ध होते हैं । एक गुणका नाम है ज्ञान और दूसरे गुणका नाम है दर्शन । चेतनकार्य दोनोंका होनेसे इन दोनों गुणोंका एक अभेद नाम चैतन्य है । इसी प्रकार स्पर्श गुण का भी दो प्रकार परिणमन जानना ।

प्रश्न १५—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग छद्मस्थोंमें तो क्रमसे होता है, फिर ये दो गुणोंके परिणमन कैसे हुए ?

उत्तर—छद्मस्थोंमें यद्यपि इनका उपयोग एक साथ नहीं है तो भी ज्ञानगुण और

दर्शनगुण दोनोंका परिणमन सदैव होता रहता है। हाँ छद्मस्थ उपयोग क्रमसे लगा पाता है।

प्रश्न १६—उक्त बीसों पर्यायें निश्चयसे आत्मामें क्यों नहीं हैं ?

उत्तर– इन बीसों पर्यायोंका और उनके आधारभूत चारों गुणोंका व्याप्यव्यापक भाव पुद्गल द्रव्यके साथ है, आत्माके साथ नहीं। इस कारण आत्मामें निश्चयसे ये वर्ण, रस, गंध, स्पर्श नहीं हैं।

प्रश्न १७—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श न होनेसे आत्मा अमूर्त क्यों है ?

उत्तर– वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शका नाम मूर्त है। यह मूर्त जहाँ नहीं, वह अमूर्त है।

प्रश्न १८– यदि आत्मा अमूर्त है तो उसके कर्मबन्ध कैसे होता है ?

उत्तर—संसारी आत्मा व्यवहारनयसे मूर्त है, अतः इस मूर्त आत्माके कर्मबन्ध हो जाता है।

प्रश्न १६—संसारी आत्मा किस कारणसे मूर्त है ?

उत्तर– अनादि परम्परासे चले आये कर्मोंके बन्धनके कारण आत्मा मूर्त है।

प्रश्न २०– यदि आत्मा व्यवहारनयसे मूर्त है तो कर्मबन्ध भी व्यवहारसे ही होगा, निश्चयसे नहीं होगा ?

उत्तर– ठीक है। कर्मबन्ध भी व्यवहारसे है, निश्चयसे नहीं है। निश्चयनय तो केवल एक द्रव्यको या एक शुद्ध स्वभावको देखता है।

प्रश्न २१– यदि कर्मबन्ध व्यवहारसे है तो उसका फल दुःख भी व्यवहारसे होता होगा ?

उत्तर—यह भी ठीक है। आत्माके दुःख भी व्यवहारसे हैं। निश्चयनयसे तो आत्मा सुख दुःखके विकल्पसे रहित शुद्ध ज्ञायकभावरूप जाना जाता है।

प्रश्न २२—यदि दुःख भी व्यवहारसे है तो कर्मबन्धके दूर करनेका उद्यम क्यों करना चाहियें ?

उत्तर—जिसे व्यवहारका दुःख नहीं चाहिये उसे व्यवहारका कर्मबन्धन हटानेका उद्यम करना ही चाहिये। हाँ, जिसे व्यवहारका दुःख इष्ट हो वह व्यवहारका कर्मबन्ध न हटावे। ऐसे जीव तो संसारमें अब भी अनन्तानन्त हैं।

प्रश्न २३—किस व्यवहारनयसे आत्मा मूर्तिक है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे आत्मा मूर्तिक है। ऐसो मूर्तिकता अनादि परम्परासे है अतः अनुपचरित है, मूर्तिकता स्वरूपमें नहीं है इसलिये असद्भूत है और इसमें कर्मसंयोगकी अपेक्षा है इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न २४—तब संसार अवस्थामें जीवको मूर्त ही माना जावे, अमूर्त नहीं मानना

चाहिये ।

उत्तर– संसार अवस्थामें यह जीव कथंचित् मूर्त है और कथंचित् अमूर्त है । बन्धके प्रति एकत्व होनेसे यह व्यवहारनयसे मूर्त है और अपने स्वरूपसे अमूर्त है । निश्चयसे आत्मा चैतन्यमात्र है, इसमें वर्ण, रस, गन्ध व स्पर्श नहीं हैं, इसलिये अमूर्त है ।

प्रश्न २५– आत्मा कथंचित् मूर्त व अमूर्त है ऐसा जानकर हमें क्या करना चाहिये ?

उत्तर-- इस अमूर्तस्वरूप आत्माकी दृष्टि उपलब्धिके न होनेसे यह आत्मा मूर्त बनकर चतुर्गतिके दुःखोंको भोगता है । अतः मूर्त विषयोंका त्याग करके, पर्यायबुद्धिको छोड़कर शुद्ध-चैतन्यस्वभावमात्र अमूर्त आत्माका ध्यान करना चाहिये ।

इस प्रकार "जीव अमूर्त है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव कर्ता है" इसका वर्णन करते हैं—

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ।।८।।

अन्वय—आदा ववहारदो पुग्गल कम्मादीणं कत्ता, दु णिच्चयदो चेदणकम्माण कत्ता । सुद्धणया सुद्धभावाणं कत्ता ।

अर्थ-- आत्मा व्यवहारनयसे पुद्गलकर्मादिका कर्ता है, परन्तु निश्चयनयसे चेतनकर्मका कर्ता है और शुद्धनयकी अपेक्षा शुद्ध भावोंका कर्ता है ।

प्रश्न १—पुद्गलकर्म आदिमें आदि शब्दसे और किन-किनका ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर– आदि शब्दसे औदारिक, वैक्रियक, आहारक--इन तीन शरीरके योग्य नोकर्म और आहारादि ६ पर्याप्तियोंके योग्य नोकर्म रूप पुद्गलका ग्रहण करना तथा घट, पट, मकान आदि बाह्य पदार्थोंका ग्रहण करना ।

प्रश्न २—आत्मा पुद्गल कर्मका कर्ता किस व्यवहारनयसे है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञानावरण आदि पुद्गल कर्मोंका कर्ता अनुपचरित असद्भूत व्यवहार-नयसे है । ज्ञानावरणादि कर्मोंका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बंध है और जब तक सम्बंध है तब तक जहाँ आत्माकी गति हो वहीं उनकी गति है आदि । आत्मा जब कषायभाव करता है तब ये कर्मरूप परिणमते ही हैं । इन कारणोंसे यह कर्तृत्व अनुपचरित है । कर्म भिन्न पदार्थ हैं, अतः असद्भूत हैं । भिन्न पदार्थके प्रति कर्तृत्व देखा जा रहा है सो व्यवहार है ।

प्रश्न ३– शरीर और पर्याप्तिके योग्य पुद्गलोंका कर्ता आत्मा किस नयसे है ?

उत्तर—शरीरादिका भी कर्ता आत्मा अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे है । ये पुद्गल भी आत्माके एकक्षेत्रावगाहमें है और जब तक इनका आत्मासे सम्बन्ध है तब तक आत्माकी गति आदिके साथ इनकी गति आदि है, अतः अनुपचरित कर्तृत्व है, भिन्न पदार्थ हैं,

इसलिए असद्भूत कर्तृत्व है तथा भिन्न पदार्थोंका कर्तृत्व देखा जा रहा है, अतः व्यवहार है।

प्रश्न ४—घट-पट आदिका कर्ता आत्मा किस नयसे है ?

उत्तर—आत्मा घट-पट आदिका कर्ता उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे है। ये पदार्थ भिन्न क्षेत्रमें हैं और बाह्यसम्बंधसे भी पृथक् हैं। हाँ, आत्माकी चेष्टाके निमित्त और निमित्तके निमित्त, उपनिमित्तोंका निमित्त पाकर घट-पट आदि निमित्त हो जाते हैं, इसलिये इन बाह्य पदार्थोंका कर्तृत्व उपचरित है। भिन्न पदार्थ हैं, सो इनका कर्तृत्व असद्भूत है। पृथक् द्रव्योंमें कर्तृत्व बताया जा रहा है, इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न ५—जब ये पदार्थ भिन्न हैं तब इनके प्रति ऐसा भी कर्तृत्व क्यों बन गया ?

उत्तर— आत्मा निज शुद्ध आत्मतत्त्वको भावनासे रहित होकर ही इन बाह्य पदार्थों का कर्ता बन जाता है।

प्रश्न ६— पुद्गल कर्म क्या वस्तु है ?

उत्तर— जगत्में अनन्तानन्त कार्माणवर्गणायें हैं और प्रत्येक संसारी जीवके साथ विस्रसोपचयके रूपमें अनन्त कार्माणवर्गणायें लगी हुई हैं। कार्माणवर्गणाका अर्थ है कर्मरूप बनने योग्य सूक्ष्म पुद्गल स्कंध। ये ही कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणत हो जाते हैं, जब जीव कषायभाव करता है।

प्रश्न ७—जीवका कर्मके साथ तो गहरा सम्बन्ध है, फिर जीवको कर्मका असद्भूत व्यवहारनयसे कर्ता क्यों कहा गया है ?

उत्तर—जीवका कर्ममें अत्यन्ताभाव है। तीन कालमें भी जीवका द्रव्य, प्रदेश, गुण और पर्याय कर्ममें नहीं जा सकता और कर्मके द्रव्य प्रदेश, गुण और पर्याय जीवमें नहीं जा सकते। हाँ, सहज निमित्तनैमित्तिक बात ही ऐसी हो जाती है कि जीव जब अपने कषाय-परिणमनसे परिणमता है तो कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणम जाती हैं तो भी अत्यन्ताभावके कारण असद्भूतपना ही ठीक है।

प्रश्न ८-- चेतन कर्मोंका जीव किस नयसे कर्ता है ?

उत्तर— जीव अशुद्धनिश्चयनयसे चेतनकर्मोंका कर्ता है।

प्रश्न ९-- चेतनकर्म तो जीवकी परिणति है, फिर उसका कर्ता जीव अशुद्धनयसे क्यों है ?

उत्तर—चेतनकर्मका तात्पर्य है पुद्गल कर्म उपाधिको निमित्त पाकर रागादि विभाव रूप परिणमने वाला जीवका विभावपरिणमन। ये रागादिभाव जीवमें स्वयं अर्थात् स्वभाव के निमित्तसे नहीं होते, परद्रव्यके निमित्तसे होते हैं, अतएव ये क्षणिक और विपरीत भाव याने अशुद्ध भाव हैं, किन्तु हैं ये जीवकी ही पर्याय। इसी कारण जीव इन चेतनकर्मोंका

अशुद्ध निश्चयनयसे कर्ता है।

प्रश्न १०– रागादि भाव जब आत्माके स्वभाव नहीं हैं तब जीव इन्हें करता क्यों है ?

उत्तर—आत्माका स्वभाव निष्क्रिय अभेद चैतन्य है। इस निजस्वभावकी दृष्टि, उपलब्धिसे रहित होकर यह जीव रागादि भावकर्मोंका कर्ता होता है।

प्रश्न ११– जिन कर्मोंके उदयको निमित्त पाकर यह भावकर्म हुआ वे द्रव्यकर्म कैसे बने ?

उत्तर—पूर्वके भावकर्मोंको निमित्त पाकर द्रव्यकर्मकी रचना हुई।

प्रश्न १२—इस तरह तो इतरेतराश्रय दोष आ जावेगा, क्योंकि जब द्रव्यकर्म हो तो भावकर्म बने और जब भावकर्म हो तो द्रव्यकर्म बने ?

उत्तर-- इसमें इतरेतराश्रय दोष नहीं आता, क्योंकि पूर्वका भावकर्म पूर्वबद्ध द्रव्यकर्मके उदयसे होता है और वह द्रव्यकर्म भी पूर्वके भावकर्मके निमित्तसे बंधता है। इस तरह भावकर्म और द्रव्यकर्ममें बीज वृक्षकी तरह या पितापरम्पराकी तरह अनादि परम्परा सम्बन्ध है।

प्रश्न १३– शुद्ध भावोंका कर्ता जीव किस शुद्धनयसे है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनयसे जीव शुद्ध भावोंका कर्ता है।

प्रश्न १४—शुद्ध भावसे यहाँ क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—मलिनतासे रहित अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य आदि शुद्ध भाव हैं।

प्रश्न १५—इन शुद्ध भावोंका कर्ता कौन जीव है ?

उत्तर—शुद्ध भावोंका कर्ता पूर्ण शुद्धनिश्चयनयसे तो मुक्त जीव याने अरहंत और सिद्धप्रभु है। भावनारूप एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे छद्मस्थावस्थामें अन्तरात्मा शुद्ध भावोंका कर्ता है।

प्रश्न १६—शुद्ध भावोंका कर्ता जीव शुद्ध निश्चयनयसे क्यों है ?

उत्तर—अनन्तज्ञानादि शुद्ध पर्यायें कर्म उपाधिके अभावमें होती हैं और स्वभावके अनुरूप हैं, अतः इनका कर्तृत्व शुद्ध है और जीवकी ही परिणति है, अतः निश्चयसे इनका कर्तृत्व है। इस प्रकार जीव अनन्तज्ञानादि शुद्ध भावोंका शुद्धनिश्चयनयसे कर्ता है।

प्रश्न १७-- परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव किसका कर्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव अकर्ता है। इस नयके अभिप्रायमें निजमें भी कर्ताकर्म भेद नहीं है। समस्त भेद, विकल्प, पर्यायकी दृष्टिसे रहित अखण्ड विषय परमशुद्ध निश्चयनयका है।

प्रश्न १८—इस कर्तृत्वके प्रकरणसे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर-- निरञ्जन, निष्क्रिय निज शुद्ध चैतन्यकी भावनाके अवलम्बनसे तो शुद्ध भावों का कर्ता बन जाता है, जिसका फल अनन्त सुख है और इस निज शुद्ध चैतन्यकी भावनासे रहित होकर रागादि विभावोंका कर्ता होता है, जिसका फल घोर दुःख है। सर्व दुःखोंसे मुक्त होनेके लिये शुद्ध चैतन्यस्वभावका अवलम्बन लेना चाहिए।

इस प्रकार "जीव कर्ता है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव भोक्ता है" इसका वर्णन करते हैं—

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मपफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

अन्वय– आदा ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मपफलं पभुंजेदि, खु णिच्छयणयदो आदस्स चेदणभावं पभुंजेदि।

अर्थ– आत्मा व्यवहारनयसे सुख दुःखरूप पुद्गलकर्मके फलको भोगता है और निश्चयनयसे अपने-अपने चेतनभावको भोगता है।

प्रश्न १—व्यवहारके कितने भेद हैं ?

उत्तर– व्यवहारके ४ भेद हैं—(१) उपचरित असद्भूतव्यवहार, (२) अनुपचरित असद्भूतव्यवहार, (३) उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहार, (४) अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहार। इनमें से उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहारका नाम तो अशुद्धनिश्चयनय है और अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहारका नाम शुद्ध निश्चयनय है।

प्रश्न २– उपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव किसको भोगता है ?

उत्तर—उपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थोंसे उत्पन्न सुख दुःखको भोगता है अथवा विषयोंको भोगता है। यहाँ "पदार्थोंसे उत्पन्न" इस अर्थकी मुख्यता है। विषयभूत पदार्थ बाह्य हैं और एकक्षेत्रावगाही भी नहीं, अतः इनका भोक्तृत्व उपचरित है पदार्थ अथवा विषयज सुख आत्मस्वभावसे विपरीत हैं, अतः असद्भूत है और पर्याय है, इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न ३—अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव सुख दुःखरूप पुद्गल कर्मोंके फल को भोगता है। पुद्गल कर्म एकक्षेत्रावगाही हैं, अतः उनके फलका भोक्तृत्व अनुपचरित है। कर्म और कर्मफल आत्मस्वभावसे विपरीत है, अतः असद्भूत है, पर्याय है, अतः व्यवहार है।

प्रश्न ४– निश्चयनयके कितने भेद हैं ?

उत्तर—निश्चयनयके २ भेद हैं– (१) अशुद्धनिश्चयनय, (२) शुद्धनिश्चयनय,

(३) परमशुद्धनिश्चयनय। इनमें अशुद्धनिश्चयनयका प्रतिपादन उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है और शुद्धनिश्चयनयका प्रतिपादन अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहार है।

प्रश्न ५— अशुद्धनिश्चयनयसे जीव किसका भोक्ता है?

उत्तर— अशुद्धनिश्चयनयसे जीव अशुद्ध चेतनभाव अर्थात् हर्ष-विषादादि परिणामका भोक्ता है। हर्ष-विषादादि विभाव हैं, अतः अशुद्ध हैं, किन्तु हैं जीवके ही परिणमन, अतः निश्चयनयसे हैं, पर्यायें हैं, अतः व्यवहार हैं। इस प्रकार जीव हर्षविषादादि अशुद्ध चेतनभावका अशुद्धनिश्चयनयसे भोक्ता है।

प्रश्न ६— शुद्धनिश्चयनयसे जीव किसका भोक्ता है?

उत्तर — शुद्धनिश्चयनयसे जीव अनन्त सुख आदि निर्मल भावोंका भोक्ता है। अनन्त सुख आदि जीवके स्वाभाविक शुद्ध भाव हैं, अतः इनका भोक्तृत्व शुद्धनिश्चयनयसे है।

प्रश्न ७— परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव किसका भोक्ता है?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव अभोक्ता है, क्योंकि परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिसे भोक्ता भोग्य आदि कोई विकल्प भेद नहीं है। यह नय तो केवल, शुद्ध, निरपेक्ष स्वभावको विषय करता है।

प्रश्न ८—इस भोक्तृत्वके विवरणसे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये?

उत्तर— व्यवहारनयसे जो भोक्तृत्व बताया है वह तो असद्भूत ही है, इसलिये वस्तुस्वरूप जानकर यह प्रतीति हटा देनी चाहिये कि मैं विषयोंसे अथवा कर्मोंसे सुख या दुःखको भोगता हूं।

प्रश्न ९— तब मैं यह सुख दुःख किससे पाता हूं?

उत्तर— सुख दुःख मैं अपने गुणोंके परिणमनसे पाता हूं। कर्मोदय तो बाह्य निमित्तमात्र है और विषय केवल आश्रयमात्र है।

प्रश्न १०—यह सुख दुःख क्यों उत्पन्न हो जाता है?

उत्तर—निज शुद्ध चैतन्यस्वभावका श्रद्धान, ज्ञान एवं अनुचरण न होनेसे उपयोग अनात्माकी ओर जाता है और तब बाह्य पदार्थोंका आश्रय बनानेसे सुख दुःखका उसमें वेदन होने लगता है।

प्रश्न ११— इस सुख दुःखका भोक्तृत्व कैसे मिटे?

उत्तर—स्वाभाविक आनन्दका भोक्तृत्व होते ही सूक्ष्म भी सुख दुःखका भोक्तृत्व मिट जाता है।

प्रश्न १२—जीव स्वाभाविक आनन्दका भोक्ता कैसे होता है?

उत्तर—नित्य निरञ्जन अविकार चैतन्य परम स्वभावकी भावनासे स्वाभाविक

आनन्दरूप निर्मल पर्यायकी उत्पत्ति होती है।

प्रश्न १३—यह आनन्द आत्माके किस गुणकी पर्याय है ?

उत्तर—आनन्द आत्माके आनन्द गुणकी पर्याय है।

प्रश्न १४—सुख, दुःख किस गुणकी पर्यायें हैं ?

उत्तर– सुख, दुःख भी आनन्द गुणकी पर्यायें हैं। आनन्द गुणकी तीन पर्यायें हैं—(१) आनन्द, (२) सुख और (३) दुःख। आनन्द तो स्वाभाविक परिणमन है और सुख एवं दुःख विकृत परिणमन है।

प्रश्न १५– अनन्त सुख तो स्वाभाविक परिणमन माना गया है, फिर सुखको विकृत परिणमन कैसे कहा ?

उत्तर– सुखका अर्थ है—ख–इन्द्रियोंको, सु–सुहावना लगना। सो यह अशुद्ध परिणमन ही है, क्योंकि आत्मा तो इन्द्रियोंसे रहित है। दुःखका भी अर्थ है, ख–इन्द्रियोंको, दुः–बुरा लगना। जैसे दुःख विकृत परिणमन है वैसे सुख भी विकृत परिणमन है। परन्तु सुखसे परिचित प्राणियोंपर दया करके आनन्दके स्थानमें सुख शब्द रखकर अनन्त सुख शब्दसे आचार्योंने प्रतिपादन किया है। जिससे ये प्राणी "अनन्त समृद्धि मुक्तावस्थामें है" यह समझ जावे।

प्रश्न १६—आनन्द शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर—"आ समन्तात् नन्दनं आनन्दः।" सर्व प्रकार सर्वप्रदेशोंमें सत्य समृद्धि होना आनन्द है। आत्माकी सत्य समृद्धि सुख दुःखसे रहित परमनिराकुलताके अनुभवमें है। एतदर्थ आनन्दके स्रोतरूप चैतन्यस्वभावकी निरन्तर भावना करना चाहिये।

इस प्रकार "जीव भोक्ता है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव स्वदेहपरिमाण है" इसका वर्णन करते हैं—

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अन्वय– चेदा ववहारा असमुहदो उवसंहारप्पसप्पदो अणुगुरुदेहपमाणो, वा णिच्चयणयदो असंखदेसो।

अर्थ– आत्मा व्यवहारनयसे समुद्घातके सिवाय अन्य सब समय संकोच और विस्तार के कारण अपने छोटे-बड़े शरीरके प्रमाण है और निश्चयनयसे असंख्यात प्रदेशोंका धारक है।

प्रश्न १– समुद्घातमें यह जीव शरीरके प्रमाण क्यों नहीं रहता ?

उत्तर– जिन कारणोंसे अथवा जिन प्रयोजनोंके लिये समुद्घात होता है उनकी सिद्धि शरीरसे भी बाहर आत्मप्रदेशोंके रहनेमें है।

प्रश्न २– समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने मूल शरीरको न छोड़कर और तैजसशरीर और कार्माणशरीरके प्रदेशों सहित आत्माके प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना समुद्घात है।

प्रश्न ३—समुद्घातके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—समुद्घातके ७ प्रकार हैं—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) विक्रियासमुद्घात, (४) मारणान्तिकसमुद्घात, (५) तैजससमुद्घात, (६) आहारकसमुद्घात और (७) केवलिसमुद्घात।

प्रश्न ४– वेदनासमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर– तीव्र वेदनाके कारण मूल शरीरको न छोड़कर आत्मप्रदेशोंका बाहर फैल जाना वेदनासमुद्घात है।

प्रश्न ५—इस समुद्घातसे क्या कोई लाभ भी होता है ?

उत्तर—वेदनासमुद्घातमें जो आत्मप्रदेश तैजसकार्माणशरीर सहित बाहर फैलते हैं यदि उनसे किसी औषधिका स्पर्श हो जाय तो वेदना शान्त हो सकती है। औषधिका स्पर्श ही हो, ऐसा नियम नहीं है। वेदनासमुद्घात तो तीव्रवेदनाके कारण हो जाता है।

प्रश्न ६—वेदनासमुद्घातमें आत्मप्रदेश कितनी दूर तक फैल जाते हैं ?

उत्तर– देहप्रमाणसे तिगुने प्रमाण बाहर प्रदेश जाते हैं। वेदनासमुद्घातसे प्रायः प्राणी शरीरसे निरोग हो जाया करते हैं।

प्रश्न ७—कषायसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीव्र कषायका उदय हो जानेसे परके घातके लिये मूलशरीरको न छोड़कर आत्मप्रदेशोंका बाहर निकल जाना कषायसमुद्घात है।

प्रश्न ८—कषायसमुद्घातसे क्या परका घात हो जाता है ?

उत्तर—इसका नियम नहीं है।

प्रश्न ९—कषायसमुद्घातमें आत्मप्रदेश कितनी दूर तक फैल जाते हैं ?

उत्तर– देहप्रमाणसे तिगुने प्रमाण बाहर प्रदेश जाते हैं।

प्रश्न १०—विक्रियासमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर या शरीरका अंग बढ़ानेके लिये अथवा अन्य शरीर बनानेके लिये आत्मप्रदेशोंका मूल शरीर न छोड़कर बाहर निकल जाना विक्रियासमुद्घात है।

प्रश्न ११– विक्रियासमुद्घात किनके होता है ?

उत्तर—विक्रियासमुद्घात देव व नारकियोंके तो होता ही है, किन्तु विक्रियाऋद्धिधारी मुनीश्वरोंके भी विक्रियासमुद्घात हो जाता है।

प्रश्न १२–अन्य शरीर बनानेपर आत्मा अनेक क्यों नहीं हो जाते ?

उत्तर– अन्य शरीर बनानेपर भी मूलशरीर व अन्य शरीर तथा इसके अन्तरालमें उसी एक आत्माके प्रदेश फैले हुए होते हैं, अतः आत्मा एक ही है। हां, आत्मप्रदेशोंका विस्तार वहां तक निरन्तर है।

प्रश्न १३– मूलशरीर और उत्तरशरीरमें क्रियायें तो अलग-अलग होती हैं, इसलिये क्या उपयोग अनेक मानने पड़ेंगे ?

उत्तर–नहीं, एक ही उपयोगसे त्वरितगति होनेके कारण दोनों शरीरमें क्रियायें होती रहती हैं।

प्रश्न १४—विक्रियासमुद्‌घातमें आत्मप्रदेश कहां तक फैल जाते हैं ?

उत्तर– जिसका जितना विक्रियाक्षेत्र है और उसमें भी जितनी दूर तक विक्रिया की जा रही है उतनी दूर तक आत्मप्रदेश फैल जाते हैं।

प्रश्न १५– मारणान्तिक समुद्‌घात किसे कहते हैं ?

उत्तर– मरण समयमें मूलशरीरको न छोड़कर जहां कहीं भी आयु बांधी हो वहांके क्षेत्रका स्पर्श करनेके लिये आत्मप्रदेशोंका बाहर निकल जाना मारणान्तिक समुद्‌घात है। मारणान्तिक समुद्धात एक दिशाको प्राप्त होता है।

प्रश्न १६– मारणान्तिक समुद्‌घातमें बाहर प्रदेश निकलनेके बाद पुनः मूलशरीरमें आते हैं अथवा नहीं ?

उत्तर—मारणान्तिक समुद्‌घातमें जन्मक्षेत्रको स्पर्शकर आत्मप्रदेश अवश्य मूलशरीरमें आते हैं। पश्चात् सर्वप्रदेशोंसे आत्मा निकलकर जन्मक्षेत्रमें पहुंचकर नवीन शरीर अपना लेता है।

प्रश्न १७– मारणान्तिकसमुद्‌घात क्या सभी मरने वाले जीवोंके होता है या किसी किसीके ?

उत्तर—मारणान्तिकसमुद्‌घात उन्हीं जीवोंके हो सकता है जिन्होंने अगले भवकी पहलेसे आयु बांध ली है और जिनके एतद्विषयक विलक्षण आतुरता होती है। इस समुद्धात की अपेक्षा त्रस जीव भी त्रसनालीसे बाहर पाये जा सकते हैं।

प्रश्न १८– तैजससमुद्‌घात किसे कहते हैं ?

उत्तर– संयमी महामुनिके विशिष्ट दया उत्पन्न होने पर अथवा तीव्र क्रोध उत्पन्न होनेपर उनके दायें अथवा बायें कन्धेसे तैजसशरीरका एक पुतला निकलता है। उसके साथ आत्मप्रदेशोंका बाहर निकलना तैजससमुद्‌घात है।

प्रश्न १९–तैजससमुद्‌घात कितने तरहका होता है ?

उत्तर—तैजससमुद्‌घात दो तरहका होता है—(१) शुभ तैजससमुद्‌घात, (२) अशुभ

तैजससमुद्घात ।

प्रश्न २०– शुभ तैजससमुद्घात कब और किसलिये निकलता है ?

उत्तर– जब लोकको व्याधि, दुर्भिक्ष आदिसे पीड़ित देखकर तैजस ऋद्धिधारी संयमी महामुनिके कृपा उत्पन्न होती है तब मुनिके दाहिने कन्धेसे पुरुषाकार तेजस्वरूप एक पुतला निकलता है । वह व्याधि और दुर्भिक्ष आदि उपद्रवको नष्ट करके फिर मूलशरीरमें प्रवेश कर जाता है । इसे शुभ तैजसशरीर कहते हैं ।

प्रश्न २१– शुभ तैजसशरीरका स्वरूप कैसा है ?

उत्तर– शुभ तैजसशरीर श्वेतरूपका सौम्य आकार वाला पुरुषाकार १२ योजन तक का विस्तार वाला तेजोमय होता है ।

प्रश्न २२—अशुभ तैजससमुद्घात कब और किसलिये निकलता है ?

उत्तर—जब मनको अनिष्टकारी किसी कारण व उपद्रवको देखकर तैजस ऋद्धिधारी महामुनिके क्रोध उत्पन्न होता है तब सोची हुई विरुद्ध वस्तुको भस्म करनेके लिये मुनिके बायें कंधेसे तैजसशरीरमय पुतला निकलता है । वह विरुद्ध वस्तुको भस्म करके और फिर उस ही संयमी मुनिको भस्म करके नष्ट हो जाता है । इसे अशुभतैजसशरीर कहते हैं ।

प्रश्न २३—अशुभतैजसशरीरका स्वरूप कैसा है ?

उत्तर– अशुभतैजसशरीर सिन्दूरकी तरह लाल रंगका, बिलावके आकार वाला, १२ योजन लम्बा, मूलमें सूच्यंगुलके संख्यातभागप्रमाण चौड़ा और अन्तमें ६ योजन चौड़ा तेजोमय होता है ।

प्रश्न २४– आहारकसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर– किसी तत्त्वमें संदेह होनेपर संदेहकी निवृत्तिके अर्थ आहारकऋद्धिधारी महा-मुनिके मस्तकसे एक हाथका पुरुषाकार श्वेत रंगका केवलज्ञानी प्रभुके दर्शनके लिये आहारक शरीर निकलता है, उसके साथ आत्मप्रदेशोंका बाहर निकलना आहारकसमुद्घात है । यह आहारकशरीर सर्वज्ञदेवके दर्शन कर मूलशरीरमें प्रविष्ट हो जाता है । सर्वज्ञ प्रभुके दर्शनसे तत्त्वसन्देह दूर हो जाता है । यह समुद्घात एक ही दिशाको प्राप्त होता है ।

प्रश्न २५– केवलिसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर—आयुकर्मकी स्थिति अत्यल्प रहनेपर और शेष ३ अघातिया कर्मोंकी स्थिति अधिक होनेपर सयोगकेवली भगवानके आत्मप्रदेशोंका दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूरणके प्रकार से बाहर निकलना होता है वह केवलिसमुद्घात है ।

प्रश्न २६– केवलिसमुद्घात क्या सभी सयोगकेवली भगवानके होता है या किसी किसीके ?

उत्तर– जिन मुनिराजोंके ६ माह आयु शेष रहनेपर केवलज्ञान उत्पन्न होता है उन सयोगकेवलियोंके केवलिसमुद्घात होता है। इसके अतिरिक्त कुछ आचार्योंके अन्य भी मत हैं। निष्कर्ष यह समझिये कि कुछ बिरलोंको छोड़ सभी सयोगकेवलियोंके समुद्घात होता है।

प्रश्न २७– केवलिसमुद्घातमें दण्डसमुद्घात किस तरह होता है ?

उत्तर– सयोगकेवली यदि आसीन हों तो आसन प्रमाण याने देहके त्रिगुण विस्तार प्रमाण और यदि खड्गासनसे स्थित हों तो देह विस्तार प्रमाण चौड़े आत्मप्रदेश निकलते हैं और ऊपरसे नीचे तक वातवलयोंके प्रमाणसे कम १४ राजू लम्बे फैल जाते हैं।

प्रश्न २८—कपाटसमुद्घात किस तरह होता है ?

उत्तर—दण्डसमुद्घातके अनन्तर अगल बगल चौड़े हो जाते हैं। यदि भगवान पूर्वाभिमुख हों तो ऊपर, मध्यमें, नीचे सर्वत्र वातवलयप्रमाणसे कम ७-७ राजू प्रमाण आत्मप्रदेश फैल जाते हैं और यदि भगवान उत्तराभिमुख हों तो वातवलय प्रमाणसे हीन ऊपर तो एक राजू, ब्रह्मक्षेत्रमें ५ राजू, मध्यमें १ राजू व नीचे ७ राजू प्रमाण चौड़े हो जाते हैं।

प्रश्न २९– प्रतरसमुद्घात किस प्रकार होता है ?

उत्तर—इस समुद्घातमें सामने व पीछे जितना लोकक्षेत्र बचा है उसमें वातवलय प्रमाणसे हीन सर्वलोकमें फैल जाते हैं।

प्रश्न ३०– लोकपूरण समुद्घातमें क्या होता है ?

उत्तर– इसमें आत्मप्रदेश वातवलयके क्षेत्रमें भी फैलकर पूरे लोकप्रमाण प्रदेश हो जाते हैं।

प्रश्न ३१-- लोकपूरण समुद्घातके बाद प्रवेश-विधि किस प्रकारसे है ?

उत्तर—लोकपूरण समुद्घातके बाद लौटकर प्रतरसमुद्घात होता है, फिर कपाट समुद्घात, फिर दण्डसमुद्घात, इसके बाद मूलशरीरमें प्रवेश हो जाता है।

प्रश्न ३२—समुद्घातोंमें समय कितना लगता है ?

उत्तर– केवलिसमुद्घातमें तो ८ समय लगता है और शेषके ६ समुद्घातोंमें अन्तर्मुहूर्त समय लगता है।

प्रश्न ३३-- केवलिसमुद्घातमें ८ समय कैसे लगता है ?

उत्तर-- दण्डमें १, कपाटमें १, प्रतरमें १, लोकपूरणमें १, फिर लौटते समय प्रतरमें १, कपाटमें १, दण्डमें १, फिर प्रवेशमें १, इस प्रकार आठ समय लगता है।

प्रश्न ३४-- केवलिसमुद्घातसे क्या फल होता है ?

उत्तर– केवलिसमुद्घात होनेसे शेष ३ अघातिया कर्मोंकी स्थिति घटकर आयुस्थिति-

प्रमाण स्थिति रह जाती है।

प्रश्न ३५– केवलिसमुद्घात होनेका कारण क्या है ?

उत्तर– केवलिसमुद्घात स्वयं होता है, इसमें निमित्त कारण अघातिया कर्मोंकी स्थिति पूर्वोक्त प्रकारसे विषम शेष रह जाना है।

प्रश्न ३६– समुद्घातके सिवाय अन्य समयोंमें आत्मा किस प्रमाण है ?

उत्तर—समुद्घातके सिवाय अन्य समयोंमें आत्मा व्यवहारनयसे अपने-अपने छोटे या बड़े देह प्रमाण है।

प्रश्न ३७– आत्मा देहप्रमाण ही क्यों है ?

उत्तर—आत्मा अनादिसे निरन्तर देह धारण करता चला आया है उनमें यदि बड़े देहसे छोटे देहमें आता है तो संकोच स्वभावके कारण उस छोटे देहके प्राण हो जाता है और यदि छोटे देहसे बड़े देहमें आता है तो विस्तार स्वभावके कारण उस बड़े देह प्रमाण हो जाता है।

प्रश्न ३८– देहसे सर्वथा मुक्त होनेपर आत्मा कितने प्रमाण रहता है ?

उत्तर– जिस देहसे मुक्त हुआ उस देह प्रमाण यह मुक्त आत्मा मुक्ति अवस्थामें रहता है।

प्रश्न ३९– मुक्त होनेपर आत्मा ज्ञानकी तरह प्रदेशोंसे भी सर्वलोकमें क्यों नहीं फैल जाता ?

उत्तर– देहसे मुक्त होनेके बाद संकोच विस्तारका कोई कारण न होने से आत्मा जिस प्रमाण था उस ही प्रमाण रह जाता है। ज्ञान भी सर्वलोकमें नहीं फैलता, किन्तु ज्ञान आत्मप्रदेशोंमें ही रहकर समस्त लोक अलोकके आकार ज्ञानरूपसे परिणम जाता है।

प्रश्न ४०– किस व्यवहारनयसे आत्मा देह प्रमाण है ?

उत्तर– अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे आत्मा देह प्रमाण है। यहां देह और आत्माका एकक्षेत्रावगाह है इसलिये अनुपचरित है। देहका निज क्षेत्र देहमें है, आत्माका निज क्षेत्र आत्मामें है, इस प्रकार आत्मा व देहका परस्पर अत्यन्ताभाव होनेसे असद्भूत है। यह आकार पर्याय है, इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न ४१– निश्चयनयसे आत्मा किस प्रमाण है ?

उत्तर– निश्चयनयसे आत्मा अपने असंख्यात प्रदेश प्रमाण है। यह प्रमाणता सर्वत्र सर्वदा इतनी हीं रहती है।

प्रश्न ४२– शरीरकी अवगाहना कमसे कम कितनी हो सकती है ?

उत्तर– कमसे कम शरीरकी अवगाहना उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती

है। उत्सेधांगुल प्रायः आजकल अंगुल प्रमाण होता है। इतना ही शरीर लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म-निगोदियाका होता है।

प्रश्न ४३-- शरीरकी अवगाहना बड़ीसे बड़ी कितनी हो सकती है ?

उत्तर-- शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन प्रमाण हो सकती है। इतना शरीर स्वयंभूरमण समुद्रमें महामत्स्यका होता है।

प्रश्न ४४-- मध्यम अवगाहना कितने प्रकारकी है ?

उत्तर—जघन्य अवगाहनासे ऊपर और उत्कृष्ट अवगाहनासे नीचे असंख्यात प्रकारकी मध्यम अवगाहना होती है।

प्रश्न ४५—यह आत्मा देहमें ही क्यों बसता चला आया है ?

उत्तर—देहमें ममत्व होनेके कारण देहोंमें बसता चला आया है। आयु स्थितिके क्षयके कारण किसी एक देहमें चिरस्थायी नहीं रह सकता है तथापि देहात्मबुद्धि होनेके कारण त्वरित अन्य देहको धारण कर लेता है। जन्म मरणके दुःख और देहके सम्बन्धसे होने वाले क्षुधा, तृषा, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वेदना आदिके दुःख इस देहात्मबुद्धिके कारण ही भोगने पड़ते हैं।

प्रश्न ४६—देहसे मुक्त होनेके क्या उपाय हैं ?

उत्तर—देहसे ममत्व हटावे, देहमें आत्मबुद्धि न करना देहसे मुक्त होनेका मूल उपाय है।

प्रश्न ४७-- देहात्मबुद्धि दूर करनेके लिये क्या पुरुषार्थ करना चाहिये ?

उत्तर-- मैं अशरीर, अमूर्त, अकर्ता, अभोक्ता, शुद्ध चैतन्यमात्र हूं----इस प्रकार अपना अनुभव करे। इस परम पारिणामिक भावमय निज शुद्ध आत्माके अवलम्बनसे जीव पहिले मोहभावसे मुक्त होता है, पश्चात् कषायोंसे मुक्त होता है, इनके साथ ही मोहनीय कर्मका क्षय हो जाता है। तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तरायका क्षय एवं अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन व अनन्तशक्तिका आविर्भाव हो जाता है। तत्पश्चात् शेष अघातिया कर्मोंसे व देहसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। इस सबका एक मात्र उपाय अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्य-मात्र निज कारणपरमात्माका अवलम्बन है।

इस प्रकार "आत्मा स्वदेह प्रमाण है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव संसारस्थ है" इसका वर्णन करते हैं---

पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा तस जीवा होंति संखादी ॥११॥

अन्वय-- पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहए इंदा थावरे होंती संखादि विगतिगचदु-

पंचक्खा तस जीवा होंति ।

अर्थ-- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायरूप नाना एकेन्द्रिय जीव स्थावर जीव हैं और शंख, पिपीलिका आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस जीव हैं।

प्रश्न १—पृथ्वीकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिनका पृथ्वी ही शरीर हो उन्हें पृथ्वीकाय कहते हैं। जो जीव मरकर पृथ्वीशरीर धारण करनेके लिये मोड़े वाली विग्रहगति जा रहा हो, वह उस विग्रहगति वाला जीव भी पृथ्वीकाय है। इसका शुद्ध नाम पृथ्वी जीव है।

प्रश्न २—पृथ्वीकायकी कितनी जातियाँ हैं ?

उत्तर-- पृथ्वीकायकी ३६ जातियां हैं—(१) मृत्तिका, (२) बालुका, (३) शर्करा, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवण, (७) लोह, (८) ताम्र, (९) रांगा, (१०) शीशा, (११) सुवर्ण, (१२) चाँदी, (१३) वज्र, (१४) हड़ताल, (१५) हिंगुल, (१६) मेनसिल, (१७) तूतिया, (१८) अंजन, (१९) प्रवाल, (२०) भुड़भुड़, (२१) अभ्रक, (२२) गोमेद, (२३) रुचक, (२४) अङ्क, (२५) स्फटिक, (२६) लोहित प्रभ, (२७) वैडूर्य, (२८) चन्द्रकान्त, (२९) जलकान्त, (३०) सूर्यकान्त, (३१) गैरिक, (३२) चन्दनमणि, (३३) पन्ना (३४) पुखराज, (३५) नीलम, (३६) मसारगल्लन।

प्रश्न ३— पृथ्वीकाय जीवके देहकी कितनी अवगाहना हैं ?

उत्तर—घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण पृथ्वीकाय जीवके देहकी अवगाहना हैं।

प्रश्न ४—जलकाय किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनका जल ही शरीर हो उन्हें जलकाय कहते हैं। जो जीव जलकायमें उत्पन्न होनेके लिये मोड़े वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी जलकाय कहते हैं। इसका शुद्ध नाम जलजीव है।

प्रश्न ५-- जलकायकी कितनी जातियां हैं ?

उत्तर—जलकायकी अनेक जातियाँ हैं, जैसे— ओस, तुषार, कुहर, बिन्दु, शीकर, शुद्धजल, चन्द्रकान्त जल, घनोदक, ओला आदि।

प्रश्न ६—जलकाय जीवके देहकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जलकाय जीवकी अवगाहना होती है।

प्रश्न ७—अग्निकाय किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- जिनका अग्नि ही शरीर हो उन्हें अग्निकाय कहते हैं। जो जीव अग्निकायमें उत्पन्न होनेके लिये मोड़े वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी अग्निकाय कहते हैं। इसका

शुद्ध नाम अग्निकाय है।

प्रश्न ८—अग्निकायकी कितनी जातियाँ हैं ?

उत्तर– अग्निकायकी अनेक जातियाँ हैं, जैसे—ज्वाला, अङ्गार, किरण, मुर्मुर, शुद्ध अग्नि (वज्र, बिजली आदि), बड़वानल, नन्दीश्वरधूमकुण्ड, मुकुटानल आदि।

प्रश्न ९-- अग्निकायिक जीवकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर– घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अग्निकायिक जीवोंकी अवगाहना है।

प्रश्न १०– वायुकाय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जिनका वायु ही शरीर है उन्हें वायुकाय जीव कहते हैं। जो जीव वायुकाय में उत्पन्न होनेके लिये मोड़े वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी वायुकाय जीव कहते हैं। इसका शुद्ध नाम वायुकाय जीव है।

प्रश्न ११-- वायुकाय जीव कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर– वायुकाय जीव अनेक प्रकारके होते हैं—जैसे वात, उद्‌गम, उत्कलि, मण्डलि, महान्, घन, गुञ्जा, वातवलय आदि।

प्रश्न १२—वायुकायिक जीवोंकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण वायुकायिक जीवोंकी अवगाहना है।

प्रश्न १३—वनस्पतिकाय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिनका वनस्पति ही शरीर है उन्हें वनस्पतिकाय जीव कहते हैं। जो जीव वनस्पतिकायमें उत्पन्न होनेके लिये मोड़े वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी वनस्पतिकाय कहते हैं। इस जीवका शुद्ध नाम वनस्पतिकाय जीव है।

प्रश्न १४– वनस्पतिकाय जीव कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—वनस्पतिकाय जीव दो प्रकारके होते हैं—(१) प्रत्येकवनस्पति, (२) साधारणवनस्पति।

प्रश्न १५—प्रत्येकवनस्पतिकाय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन वनस्पतिकाय जीवोंका शरीर प्रत्येक है अर्थात् एक शरीरका स्वामी एक ही जीव है उन्हें प्रत्येकवनस्पतिकाय जीव कहते हैं।

प्रश्न १६– साधारणवनस्पतिकायिक जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जिन वनस्पतिकाय जीवोंका शरीर साधारण है अर्थात् एक शरीरके स्वामी अनेक जीव हैं उन्हें साधारणवनस्पतिकाय कहते हैं।

प्रश्न १७—प्रत्येकवनस्पतिकाय जीवके कितने भेद हैं ?

उत्तर—प्रत्येक वनस्पतिकायके दो भेद हैं— (१) सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति,

(२) अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति ।

प्रश्न १८— सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- जो प्रत्येकवनस्पति साधारणवनस्पतिकाय जीवोंकरि प्रतिष्ठित हों याने सहित हों उन्हें सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति कहते हैं ।

प्रश्न १९--सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायोंकी पहिचान क्या है ?

उत्तर-- जिनकी शिरा, संधि, पर्व अप्रकट हों, जैसे—जरुवाककड़ी, जरुवातुरई, थोड़े दिनका गन्ना आदि ।

जिनका भङ्ग करने पर समान भङ्ग हो, जैसे—घनन्तरके पत्ते, पालकके पत्ते आदि ।

छेदन करने पर भी जो उग आवें, जैसे आलू आदि ।

जिस वनस्पतिका कन्द, मूल क्षुद्र शाखा या स्कन्धकी छाल मोटी हो, जैसे—ग्वारपाठा, मूली, गाजर आदि ।

प्रश्न २०— सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति भक्ष्य है अथवा अभक्ष्य ?

उत्तर— सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिमें अनन्त साधारणवनस्पति जीव रहते हैं, अतः सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिमें अभक्ष्य है ।

प्रश्न २१— साधारणवनस्पतिके कितने भेद हैं ?

उत्तर-- साधारण वनस्पतिके २ भेद हैं– (१) वादर साधारणवनस्पतिकाय (वादर निगोद), (२) सूक्ष्म साधारणवनस्पतिकाय (सूक्ष्म निगोद) । इन दोनोंके भी २–२ भेद हैं । (१) नित्यनिगोद, (२) इतरनिगोद ।

प्रश्न २२-- नित्यनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवोंने निगोदके अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय आज तक नहीं पाई उन्हें नित्यनिगोद कहते हैं । ये जीव २ तरहके हैं-- (१) अनादि अनन्त नित्यनिगोद, (२) अनादि सान्त नित्यनिगोद ।

प्रश्न २३— अनादि अनन्त नित्यनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- जिन्होंने निगोदके अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय न आज तक पाई और न कभी पावेंगे उन्हें अनादि अनन्त नित्यनिगोद कहते हैं ?

प्रश्न—२४ अनादिसान्त नित्यनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- अनादिसान्त नित्यनिगोद उन्हें कहते हैं, जिन्होंने निगोदके अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय आज तक नहीं पाई, किन्तु आगे अन्य पर्याय पा लेंगे याने निगोदसे निकल जावेंगे उन्हें अनादि सान्त नित्यनिगोद कहते हैं ।

प्रश्न २५— इतरनिगोद किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– जो जीव निगोदसे निकलकर अन्य स्थावरकायोंमें या त्रस जीवोंमें उत्पन्न हो गये थे, किन्तु पुनः निगोदमें आ गये हैं उन्हें इतरनिगोद कहते हैं ।

प्रश्न २६–वादर और सूक्ष्म भेद क्या अन्य स्थावरकायोंमें भी होता है ?

उत्तर—प्रत्येकवनस्पतिमें तो वादर सूक्ष्म भेद नहीं होता, क्योंकि वे वादर ही होते हैं । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय व वनस्पतिकाय– इन चारोंके वादर और सूक्ष्म भेद होते हैं ।

प्रश्न २७-- प्रत्येकवनस्पतिकाय जीवोंकी कितनी अवगाहना होती है ?

उत्तर—अंगुलके संख्यातवें भागसे १००० योजन तककी अवगाहना होती है । १००० योजनकी अवगाहना स्वयंभूरमणसमुद्रमें कमलकी है ।

प्रश्न २८—साधारणवनस्पतिकाय जीवोंकी कितनी अवगाहना होती है ?

उत्तर-- अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण साधारणवनस्पतिकाय अर्थात् निगोद जीवों की अवगाहना होती है ।

प्रश्न २६—स्थावर जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवोंके एक स्पर्शनइन्द्रिय ही होती है और अङ्गोपाङ्ग नहीं होते, उन्हें स्थावर जीव कहते हैं । उक्त सभी पाँचों कायके जीव स्थावर हैं ।

प्रश्न ३०—त्रस जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवोंके स्पर्शन रसना, ये दो, स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु ये चार अथवा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां हों उन्हें त्रस जीव कहते हैं । इसी कारण त्रस जीव चार प्रकारके हैं—(१) द्वीन्द्रिय, (२) त्रीन्द्रिय, (३) चतुरिन्द्रिय और (४) पञ्चेन्द्रिय ।

प्रश्न ३१—द्वीन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण व रसनेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे एवं वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे व अंगोपांग नामकर्मके उदयसे जिनका दो इन्द्रिय वाले कायोंमें जन्म होता है उन्हें द्वीन्द्रिय कहते हैं-- जैसे शंख, लट, केंचुवा, जोंक, सीप, कौड़ी आदि ।

प्रश्न ३२—द्वीन्द्रिय जीवोंकी देहकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—अंगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर १२ योजन तककी अवगाहना होती है । १२ योजनकी अवगाहना वाला शंख अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्रमें होता है ।

प्रश्न ३३– त्रीन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण, घ्राणेन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे एवं अंगोपांग नामकर्मके उदयसे तीन इन्द्रिय वाले कायमें जिनका

जन्म होता है वे त्रीन्द्रिय जीव कहलाते हैं। जैसे चींटी, खटमल, बिच्छू, जूं आदि।

प्रश्न ३४-- त्रीन्द्रिय जीवोंकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर-- त्रीन्द्रिय जीवोंकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागसे ३ कोश प्रमाण तक होती है। तीन कोशकी अवगाहना वाला बिच्छू अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीपमें पाया जाता है।

प्रश्न ३५-- चतुरिन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण और चक्षुरिन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे एवं अङ्गोपाङ्ग नामकर्मके उदयसे जिन जीवोंका चार इन्द्रिय वाले कायसे जन्म होता है उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते हैं। जैसे--ततईया, मक्खी, मच्छर, भौंरा टिड्डी, तितली आदि।

प्रश्न ३६-- चतुरिन्द्रिय जीवोंकी कितनी अवगाहना होती है।

उत्तर-- चतुरिन्द्रिय जीवोंकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर १ योजन तककी होती है। १ योजनकी अवगाहना वाला भ्रमर अन्तिम (स्वयंभूरमणनामक) द्वीपमें पाया जाता है।

प्रश्न ३७--पञ्चेन्द्रिय जीवके कितने भेद हैं ?

उत्तर-- पंचेन्द्रिय जीव २ प्रकारके हैं--(१) असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय, (२) संज्ञी। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तो केवल तिर्यग्गतिमें ही होते हैं, किन्तु संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव चारों गतियोंमें होते हैं। नरकगति, मनुष्यगति और देवगतिमें ये संज्ञी पचेन्द्रिय जीव ही होते हैं।

प्रश्न ३८--असंज्ञी किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- जिनके मन न हो उन्हें असंज्ञी कहते हैं। मन आलम्बनसे ही हित अहितका विचार और हेयोपादेयके त्याग और ग्रहणकी प्रवृत्ति होती है। (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव भी मात्र असंज्ञी होते हैं)।

प्रश्न ३९--संज्ञी जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर--जिनके मन हो जो शिक्षा, उपदेश ग्रहण कर सकें। (संज्ञी जीव ही सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है)।

प्रश्न ४०--पञ्चेन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण, घ्राणेन्द्रियावरण, चक्षुरिन्द्रियावरण और श्रोत्रेन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे एवं वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे तथा अङ्गोपाङ्गनामा नामकर्मके उदयसे पाँच इन्द्रिय वाले कायमें जिन जीवोंका जन्म होता है उन्हें पञ्चेन्द्रिय जीव कहते हैं। इनमें जिन जीवोंके नोइन्द्रियावरणका भी क्षयोपशम होता है उन्हें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय कहते हैं और जिनके नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशम नहीं होता है उन्हें असंज्ञीपंचे-

न्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न ४१– पंचेन्द्रिय जीवोंकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनांगुलके असंख्यातवें भागसे १००० योजन तक। १००० योजन लम्बा और ५०० योजन चौड़ा व २५० योजन मोटा देहवाला महामत्स्य स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्रमें पाया जाता है।

प्रश्न ४२—क्या सभी जीव त्रस और स्थावरोंमें ही पाये जाते हैं ?

उत्तर--मुक्त जीव न त्रस हैं और न स्थावर। वे त्रस और स्थावरकी समस्त योनियों से मुक्त हो गये हैं।

प्रश्न ४३– त्रस स्थावर जीवोंमें जन्म क्यों होता है ?

उत्तर—इन्द्रिय सुखमें आसक्त होनेसे और इसी कारण त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा होनेसे इन जीवोंमें जन्म होता है।

प्रश्न ४४-- इन्द्रिय सुखकी आसक्ति क्यों होती है ?

उत्तर-- शुद्धचैतन्यमात्र निजपरमात्मत्वकी भावनासे उत्पन्न होने वाले परम अतीन्द्रिय सुखका जिन्हें स्वाद नहीं है उनके इन्द्रिय सुखोंमें आसक्ति होती है। अतः जिनके संसारजन्म से निवृत्त होनेकी वाञ्छा हो उन्हें अनादि अनन्त अहेतुक निज चैतन्यस्वरूप कारणपरमात्मा की भावना करनी चाहिये।

अब त्रस, स्थावर जीवोंका ही १४ जीवसमासोंके द्वारा और विवरण करते हैं।

समणा अमणा णेया पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
वादर सुहमे इन्दी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

अन्वय—पंचेदिव समणा अमणा णेया, परे सव्वे णिम्मणा, एइन्दी वादर सुहमे, सव्वे पज्जत्त य इदरा।

अर्थ-- पंचेन्द्रिय जीव समनस्क (संज्ञो) और अमनस्क (असंज्ञी) के भेदसे दो प्रकारके हैं। बाकी और जीव याने द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव असंज्ञी हैं। एकेन्द्रिय जीव भी असंज्ञी हैं और वादरसूक्ष्मके भेदसे दो प्रकारके हैं। ये सब सातों प्रकारके जीव याने वादरएकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और संज्ञी-पंचेन्द्रिय ये सब पर्याप्त हैं और अपर्याप्त हैं। इस प्रकार ये १४ जीवसमास हैं।

प्रश्न १– पर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिनके पर्याप्तिनामकर्मका उदय है उन्हें पर्याप्त कहते हैं।

प्रश्न २– पर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीव अपने-अपने योग्य ६, ५ या ४ पर्याप्तियोंको

पूर्ण करे उसे पर्याप्तिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ३-- अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिनके अपर्याप्तिनामकर्मका उदय है उन्हें अपर्याप्त कहते हैं।

प्रश्न ४-- अपर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीव अपने-अपने योग्य पर्याप्तियोंको पूर्ण न कर सके और मरण हो जाय उसे अपर्याप्तिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५-- पर्याप्त, अपर्याप्तकी इस व्याख्यासे तो जिनके पर्याप्तिनामकर्मका उदय है वे पूर्वभवके मरणके बाद विग्रहगतिमें और जन्मके पहिले अन्तर्मुहूर्तमें भी अपर्याप्त न न कहलावेंगे ?

उत्तर-- जिनके पर्याप्तिनामकर्मका उदय है वे जीव विग्रहगतिमें व जन्मके पहिले अन्तर्मुहूर्तमें निर्वृत्यपर्याप्त कहलाते हैं।

प्रश्न ६-- निर्वृत्यपर्याप्ति किन्हें कहते हैं ?

उत्तर-- जिन जीवोंके अपने-अपने योग्य पर्याप्तियां पूर्ण तो अवश्य होती हैं और पूर्ण होनेसे पहिले उनका मरण भी नहीं होता, किन्तु जब तक उनकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक वे निर्वृत्यपर्याप्त कहलाते हैं।

प्रश्न ७-- अपर्याप्त शब्दसे यहां किन अपर्याप्तोंका ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर-- यहाँ जिनके अपर्याप्तिनामकर्मका उदय है वे अपर्याप्त, जिनका दूसरा नाम लब्धपर्याप्त है और निर्वृत्यपर्याप्त दोनों अपर्याप्तोंका ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न ८-- पर्याप्ति कितनी होती हैं ?

उत्तर--पर्याप्ति ६ होती हैं-- (१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीरपर्याप्ति, (३) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, (५) भाषापर्याप्ति, (६) मन:पर्याप्ति।

प्रश्न ९-- आहारपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर-- एक शरीरको छोड़कर नवीन शरीरके साधनभूत जिन नोकर्मवर्गणावोंको जीव ग्रहण करता है उनको खल व रस भागरूप परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण हो जानेको आहारपर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न १०-- शरीरपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर-- गृहीत नोकर्मवर्गणावोंके स्कन्धमें से खल भागको हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा रसभागको खून आदि द्रव अवयवरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको शरीर-पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न ११--इन्द्रियपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर– गृहीतनोकर्मवर्गणाओंके स्कन्धमेंसे कुछ वर्गणाओंको योग्य स्थान पर द्रव्येन्द्रियोंके आकार परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं ?

प्रश्न १२– श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर– उन नोकर्मवर्गणावोंके कुछ स्कन्धोंको श्वासोच्छ्वासरूप परिणमावनेकी शक्ति की पूर्णताको श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १३—भाषापर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—वचनरूप होने योग्य भाषावर्गणाओंको वचनरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १४–मन:पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यमनरूप होने योग्य मनोवर्गणावोंको द्रव्यमनके आकार रूप परिणमावने की शक्तिकी पूर्णताको मनःपर्याप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १५—संज्ञी जीवोंके कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर– संज्ञी जीवोंके छहों पर्याप्तियाँ होती हैं ।

प्रश्न १६– असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?

उत्तर—असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके मनःपर्याप्तिको छोड़कर शेषकी पाँच पर्याप्तियां होती हैं ।

प्रश्न १७–चतुरिन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—चतुरिन्द्रिय जीवके आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास व भाषा पर्याप्ति ये ५ पर्याप्तियां होती हैं ।

प्रश्न १८—त्रीन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—त्रीन्द्रिय जीवके भी मन:पर्याप्तिको छोड़कर बाकी पाँचों पर्याप्तियाँ होती हैं ।

प्रश्न १९—द्वीन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर– द्वीन्द्रिय जीवके भी मनःपर्याप्तिके बिना शेष पाँचों पर्याप्तियाँ होती हैं ।

प्रश्न २०—एकेन्द्रिय जीवोंके कितनी पर्याप्तियां होती हैं ?

उत्तर—वादर और सूक्ष्म दोनों प्रकारके एकेन्द्रियजीवोंके आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ये ४ पर्याप्तियां होती हैं ।

प्रश्न २१—चौदह जीवसमासोंके पूरे-पूरे नाम क्या हैं ?

उत्तर– चौदह जीव समासोंके नाम इस प्रकार हैं– (१) वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, (२) वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (३) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, (४) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (५) द्वीन्द्रिय पर्याप्त, (६) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, (७) त्रीन्द्रिय पर्याप्त, (८) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त,

(९) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, (१०) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, (११) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, (१२) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, (१३) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, (१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

प्रश्न २२—इन १४ प्रकारके जीवसमासोंमें से कौनसा भेद उपादेय है ?

उत्तर— इनमेंसे एक भी प्रकार उपादेय नहीं है, क्योंकि ये सब विकृत पर्यायें हैं और इनका आकुलतावोंसे जन्म है, आकुलतावोंकी जनक हैं ।

प्रश्न २३— तब कौनसी अवस्था उपादेय है ?

उत्तर— अतीत जीवसमासकी अवस्था उपादेय है, क्योंकि वहां आत्मा सम्पूर्ण गुण स्वाभाविक पर्यायपरिणत हो जाते हैं, अतः वह अवस्था सहज अनन्तआनन्दमय है ।

प्रश्न २४—अतीत जीवसमास होनेका उपाय क्या है ?

उत्तर— जीवसमाससे पृथक् अनादि अनंत निज चैतन्यस्वभावकी उपासना अतीत जीवसमास होनेका बीज है ।

इस प्रकार संसारी जीवोंका जीवसमास द्वारा विवरण करके अब इस गाथामें मार्गणा व गुणस्थानोंका वर्णन करके नयविभागसे शुद्धता व अशुद्धताका विभाग बताते हैं—

मग्गण गुणठाणेहि चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

अन्वय— तह संसारी असुद्धणया मग्गगुणठाणेहि चउदसहि हवंति । हु सुद्धणया सव्वे सुद्धा विण्णेया ।

अर्थ— तथा संसारी जीव अशुद्धनयसे १४ मार्गणा व १४ गुणस्थानोंके द्वारा १४-१४ प्रकारके होते हैं, किन्तु शुद्धनयसे सभी जीव शुद्ध जानना चाहिये ।

प्रश्न १— गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर--मोह और योगके निमित्तसे सम्यक्त्व और चारित्र गुणोंकी जो अवस्थायें होती हैं उन्हें गुणस्थान कहते हैं ।

प्रश्न २—गुणस्थान कितने होते हैं ?

उत्तर—गुणस्थान तो असंख्याते होते हैं, क्योंकि आत्मगुणोंके परिणमन असंख्याते प्रकारके हैं, किन्तु उन्हें प्रयोजनानुसार संक्षिप्त करके १४ प्रकारका कहा है । वे ये हैं— (१) मिथ्यात्व, (२) सासादन सम्यक्त्व, (३) सम्यग्मिथ्यात्व, (४) अविरतसम्यक्त्व, (५) देशविरत, (६) प्रमत्तविरत, (७) अप्रमत्तविरत, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्तिकरण (१०) सूक्ष्मसाम्पराय, (११) उपशान्तकषाय, (१२) क्षीणकषाय, (१३) सयोगकेवली, (१४) अयोगकेवली ।

प्रश्न ३—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत ७ तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धान नहीं होने को मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ४– सासादनसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभमें से किसी एक कषायका उदय होने से प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे तो गिर जाना और मिथ्यात्वका उदय न आ पानेसे मिथ्यात्व न होना इस अन्तरालवर्ती अयथार्थ भावको सासादनसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ५—सम्यग्मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ मिले हुए दही गुड़के स्वादकी तरह मिश्र परिणाम हों जिन्हें न तो केवल सम्यक्त्वरूप कह सकते हैं और न मिथ्यात्वरूप ही कह सकते हैं, किन्तु जो सम्यग्मिथ्यात्व रूप हों उन परिणामोंको सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ६—अविरतसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जहां सम्यक्त्व तो प्रकट हो गया, किन्तु एकदेश अथवा सर्वदेश किसी भी प्रकारका संयम प्रकट न हुआ हो उसे अविरतसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ७—देशविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर–जहां सम्यग्दर्शन भी प्रकट है और एकदेशसंयम याने संयमासंयम भी हो गया है उस परिणामको देशविरत गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न ८—प्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ सर्वदेशसंयम भी प्रकट हो गया, किन्तु संज्वलनकषायका उदय मंद न होनेसे प्रमाद हो उसे भावप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न ९—प्रमादका तात्पर्य क्या आलस्य है या अन्य ?

उत्तर– उपदेश, विहार, आहार, दीक्षा, शिक्षा आदि शुभोपयोगका राग उठना आदि प्रमादका तात्पर्य है।

प्रश्न १०—अप्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ संज्वलनकषायका उदय मंद हो जानेसे प्रमाद नहीं रहा उस परिणाम को अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न ११– अप्रमत्तविरतके कितने भेद हैं ?

उत्तर– अप्रमत्तविरतके २ भेद हैं—(१) स्वस्थान अप्रमत्तविरत, (२) सातिशय अप्रमत्तविरत।

प्रश्न १२-- स्वस्थान अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस अप्रमत्तविरत परिणामके बाद ऊँचे स्थानका परिणाम नहीं होता, किन्तु छठे गुणस्थानका भाव होता है उसे स्वस्थान अप्रमत्तविरत कहते हैं। इसका नाम स्वस्थान इसलिये है कि अपने स्थान तक रहता है, आगे नहीं बढ़ता। छठे व सातवें गुण-स्थानका काल छोटा अन्तर्मुहूर्तमात्र है। मुनियोंके परिणाम जब तक श्रेणी नहीं चढ़ते याने आगे नहीं बढ़ते छठेसे सातवेंमें सातवेंसे छठेमें, इस प्रकार असंख्यात बार आते-जाते रहते हैं।

प्रश्न १३– सातिशय अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस अप्रमत्तविरत परिणामके बाद आठवें गुणस्थानमें पहुंचते हैं उस अप्र-मत्तविरतको सातिशय अप्रमत्तविरत कहते हैं।

प्रश्न १४– सातिशय अप्रमत्तविरत ऊपरके गुणस्थानमें क्यों पहुंच जाता है ?

उत्तर—सातिशय अप्रमत्तविरतमें इस जातिका अधःकरण परिणाम होता है, जिस निर्मल परिणामके कारण वह ऊपरके परिणाममें पहुंचा देता है।

प्रश्न १५—अधःकरण परिणाम किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां ऐसा परिणाम हो कि अधःकरणके कालमें विवक्षित कालवर्ती मुनियों के परिणामके सदृश अधस्तनकालवर्ती मुनियोंके परिणाम भी मिल जायें उसे अधःकरण परि-णाम कहते हैं।

अनन्तानुबंधीका विसंयोजन, दर्शनमोहनीयका उपशम, दर्शनमोहनीयका क्षय, चारित्र-मोहनीयका उपशम, चारित्र मोहनीयका क्षय आदि उच्च स्थानोंकी प्राप्तिके लिये एक प्रकारके निर्मल परिणाम ३ तरहके पाये जाते हैं—(१) अधःकरण, (२) अपूर्वकरण और (३) अनि-वृत्तिकरण।

यहां चारित्रमोहनीयको उपशम या क्षयके लिये उद्यम प्रारम्भ होता है, उसके लिये होने वाले निर्मल परिणामोंमें से यह पहला भाग है।

प्रश्न १६– सातिशय अप्रमत्तविरतके अनन्तर किस गुणस्थानमें पहुंचना होता है ?

उत्तर– यदि चारित्रमोहनीयके उपशमके लिये अधःकरण परिणाम हुआ है तो उप-शमक अपूर्वकरणमें पहुंचता है और यदि चारित्रमोहनीयके क्षयके लिये अधःकरण परिणाम हुआ है तो क्षपक अपूर्वकरणमें पहुंचता है।

प्रश्न १७—अपूर्वकरण गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां चारित्रमोहनीयके उपशम या क्षयके लिये उत्तरोत्तर अपूर्व परिणाम हों उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं। इसका अपूर्वकरण इसलिये नाम है कि इसके कालमें समानसमयवर्ती मुनियोंके परिणाम सदृश भी हो जायें, किन्तु उस विवक्षित समयसे भिन्न (पूर्व या उत्तर) समयवर्ती मुनियोंके परिणाम विसदृश ही होंगे।

प्रश्न १८– यह गुणस्थान कितने प्रकारका है ?

उत्तर– अपूर्वकरण गुणस्थान दो प्रकारका है– (१) उपशमक अपूर्वकरण और (२) क्षपक अपूर्वकरण ।

इस गुणस्थानसे दो श्रेणियाँ हो जाती हैं—(१) उपशमश्रेणी और (२) क्षपकश्रेणी । जिस मुनिने चारित्रमोहनीयके उपशमके लिये अधःकरण परिणाम किया था वह उपशमश्रेणी ही चढ़ता है; सो वह उपशमक-अपूर्वकरण होता है और जिस मुनिने चारित्रमोहनीयके क्षयके लिये अधःकरण परिणाम किया था वह क्षपकश्रेणी ही चढता है, सो वह क्षपक-अपूर्वकरण होता है ।

प्रश्न १६– उपशमश्रेणीमें कौन-कौन गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर– उपशमश्रेणीमें ८वां, ९वां, १०वां, ११वां ये चार गुणस्थान होते हैं इसके बाद तो चारित्रमोहनीयके उपशमका काल समाप्त होनेके कारण नियमसे नीचे गुणस्थानमें आना पड़ता है ।

प्रश्न २०—क्षपकश्रेणीमें कौन-कौन गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर– क्षपकश्रेणीमें ८ वां, ९वां, १०वां, १२वां, १३वां, १४वां ये ६ गुणस्थान होते हैं । इसके अनन्तर नियमसे मोक्ष प्राप्त होता है । क्षपकश्रेणी वाला नीचे कभी नहीं गिरता ।

प्रश्न २१—इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें क्या विशेष कार्य होने लगते हैं ?

उत्तर– इस गुणस्थानमें— (१) प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि होने लगती है, (२) कर्मोंकी स्थितिका घात होने लगता है, (३) नवीन स्थितिबन्ध कम हो जाते हैं, (४) कर्मों का बहुतसा अनुभाग नष्ट हो जाता है, (५) कर्मवर्गणावोंकी असंख्यातगुणी निर्जरा होने लगती है, (६) अनेक अशुभप्रकृतियां शुभमें बदल जाती हैं ।

प्रश्न २२—अनिवृत्तिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां विवक्षित एक समयवर्ती मुनियोंके समान ही परिणाम हों और पूर्वोत्तरसमयवर्ती मुनियोंके परिणाम विसदृश ही हों उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं । इस अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें चारित्रमोहनीयकी २० प्रकृतियोंका ८ बारमें उपशम या क्षय हो जाता है । उपशमक अनिवृत्तिकरणके तो उपशम होता है और क्षपक अनिवृत्तिकरणके क्षय होता है ।

प्रश्न २३– चारित्रमोहनीयके उपशम या क्षयका क्रम क्या है ?

उत्तर—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ९ भाग हैं, जिसमें–

(१) पहिले भागमें तो चारित्रमोहनीयकी किसी प्रकृतिका उपशम या क्षय नहीं होता, वहां नामकर्मादिकी १६ प्रकृतियोंका उपशम या क्षय होता है ।

(२) दूसरे भागमें अप्रत्याख्यानावरण ४ व प्रत्याख्यानावरण ४, इन ८ प्रकृतियोंका उपशम या क्षय होता है।

(३) तीसरे भागमें नपुंसकवेदका उपशम या क्षय होता है।

(४) चौथे भागमें स्त्रीवेदका उपशम या क्षय होता है।

(५) पाँचवें भागमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा----इन ६ नोकषायोंका उपशम या क्षय होता है।

(६) छठे भागमें पुरुषवेदका उपशम या क्षय हो जाता है।

(७) सातवें भागमें संज्वलन क्रोधका उपशम या क्षय हो जाता है।

(८) आठवें भागमें संज्वलन मानका उपशम या क्षय हो जाता है।

(९) नवें भागमें संज्वलन मायाका उपशम या क्षय हो जाता है।

इस प्रकार आठ बारमें २० चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंका उपशमक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें उपशम होता है और क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्षय हो जाता है।

प्रश्न २४—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जहां केवल संज्वलन सूक्ष्म लोभके उदयके कारण सूक्ष्म लोभ रह जाता है, उसके भी दूर करनेके लिये सूक्ष्मसाम्पराय संयम होता है, उसे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थानके अन्तमें संज्वलन सूक्ष्मलोभका उपशमक सूक्ष्मसाम्परायके उपशम हो जाता है किन्तु क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके क्षय हो जाता है।

प्रश्न २५—उपशान्तकषाय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर— जहां चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंके उपशान्त हो जानेसे यथाख्यातचारित्र हो जाता है उस अकषाय निर्मलपरिणमनको उपशान्तकषाय गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न २६— उपशान्तकषाय गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयको ३ व चारित्रमोहनीयकी ४ अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन ४ प्रकृतियोंकी क्या परिस्थिति होती है ?

उत्तर—द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही उपशमश्रेणीमें चढ़ता है सो द्वितीयोपशमसम्यक्त्व सातवें गुणस्थानमें हो जाता है। यहां इन सात प्रकृतियोंका उपशम कर दिया था, वही उपशम यहां पर है। क्षायिक सम्यग्दृष्टिने चौथेसे ७ वें तक किसी गुणस्थान में इन सात प्रकृतियोंका क्षय कर दिया था, सो सात प्रकृतियोंका यहां सर्वथा अभाव है।

प्रश्न २७—उपशान्तकषाय गुणस्थानसे किस प्रकार नीचेके गुणस्थानोंमें आता है ?

उत्तर—द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय तो क्रमशः १० वें, ९ वें, ८ वें, ७ वें व ६ वें में तो आता ही है, यदि और गिरे तो पहिले गुणस्थान तक भी जा सकता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशांतकषाय क्रमशः १०वें, ९वें, ८वें, ७वें, ६वें में तो आता ही है, यदि

गिरे तो चौथे गुणस्थान तक ही गिर सकता है, क्योंकि इसके क्षायिक सम्यक्त्व है। क्षायिक सम्यक्त्व कभी नष्ट नहीं होता।

उपशान्त कषाय गुणस्थान वालेका यदि मरण हो तो मरण समयमें ही एकदम चौथा गुणस्थान हो जाता है।

प्रश्न २८—उपशमश्रेणीके अन्य गुणस्थानोंमें मरण होता है अथवा नहीं ?

उत्तर—उपशमश्रेणीके अन्य गुणस्थानोंमें भी अर्थात् १०वें, ९वें, ८वें गुणस्थानमें भी मरण हो सकता है। यदि मरण हो तो उस गुणस्थानके अनन्तर ही मरण समयमें ही चौथा गुणस्थान हो जाता है।

प्रश्न २९—उपशान्तकषाय गुणस्थान कितने प्रकारका है ?

उत्तर—उपशान्तकषाय गुणस्थान एक ही प्रकारका है। इसमें उपशमक ही होते हैं।

प्रश्न ३०—क्षीणकषाय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—चारित्रमोहनीयकी सर्व प्रकृतियोंके क्षय हो जानेसे जहां यथाख्यात चारित्र हो जाता है, उस अकषाय निर्मल परिणामको क्षीणकषाय गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न ३१-- क्षीणकषाय गुणस्थानमें दर्शनमोहकी तीन व अनन्तानुबंधीकी चार—इन सात प्रकृतियोंकी क्या परिस्थिति है ?

उत्तर—क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है और क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थानसे सातवें गुणस्थान तक किसी भी गुणस्थानमें उत्पन्न हो जाता है वहीं इन सात प्रकृतियोंका क्षय हो गया था। सो यहाँ भी ७ प्रकृतियोंका अत्यन्त अभाव है।

प्रश्न ३२—क्षीणकषाय गुणस्थान कितने प्रकारका है ?

उत्तर—क्षीणकषाय गुणस्थान एक प्रकारका है। इसमें क्षपक ही होते हैं और सयोगकेवली, अयोगकेवली भी केवल क्षपक ही होते हैं। इस गुणस्थानके अन्त समयमें ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ६ (४ दर्शनावरणकी, निद्रा व प्रचला), अंतरायकी ५—इस प्रकार १६ प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है।

प्रश्न ३३—इस गुणस्थानमें स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला—इन तीन दर्शनावरणोंकी क्या परिस्थिति रहती है ?

उत्तर– इन तीन प्रकृतियोंका तो क्षपकने अनिवृत्तिकरणके पहिले भागमें ही क्षय कर दिया था, सो वहींसे इनका अत्यन्त अभाव है।

प्रश्न ३४– सयोगकेवली किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– चारों घातियाकर्मोंके क्षय हो जानेसे जहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य प्रकट हो जाते हैं उन्हें केवली कहते हैं और इनके जब तक शरीर और योग

रहता है इन्हें सयोगकेवली कहते हैं। इनका दूसरा नाम अरहंतपरमेष्ठी भी है।

प्रश्न ३५—अयोगकेवली किसे कहते हैं?

उत्तर— अरहंतपरमेष्ठीके जब योग नष्ट हो जाता है तबसे जब तक ये शरीरसे मुक्त नहीं होते इन्हें अयोगकेवली कहते हैं। अयोगकेवलीका काल "अ इ उ ऋ लृ" इन पाँच ह्रस्व अक्षरोंके बोलनेमें जितना लगता है उतना ही है। इनके उपान्त्य समयमें ७२ और अन्तमें १३ व यदि तीर्थङ्कर नहीं हैं तो १२ प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है।

प्रश्न ३६-- चौदहवें गुणस्थानके बाद क्या स्थिति होती है?

उत्तर— अयोगकेवलीके अनन्तर ही शरीरसे भी मुक्त होकर दूसरे समयमें लोकके अग्रभागमें जा विराजमान होते हैं। इन्हें सिद्धभगवान कहते हैं।

प्रश्न ३७-- यथाख्यात चारित्र और केवलज्ञान होनेके बाद तुरन्त मोक्ष क्यों नहीं होता?

उत्तर—यद्यपि १३वें गुणस्थानके पहिले समयमें रत्नत्रयकी पूर्णता हो गई तथापि योगव्यापार १३वें गुणस्थानमें चारित्रमें कुछ मल उत्पन्न करता है अर्थात् परमयथाख्यात चारित्र नहीं होने देता है। जैसे— किसी पुरुषने चोरीका परित्याग कर दिया है तथापि यदि चोरका संसर्ग हो तो वहां दोष उत्पन्न करता है।

प्रश्न ३८— सयोगकेवलीके अन्तमें तो योगका भी अभाव हो जाता है, फिर १३वें गुणस्थानके बाद ही निर्वाण क्यों नहीं हो जाता है?

उत्तर—तेरहवें गुणस्थानके बाद योगका अभाव होनेपर भी अन्तर्मुहूर्त काल तक अघातियाकर्मोंका उदय चारित्रमल उत्पन्न करता है, अतः अघातिया कर्मोंका उदयसत्त्व समाप्त होते ही शीघ्र मोक्ष होता है।

प्रश्न ३९— गुणस्थानोंमें उत्तरोत्तर बढ़नेका व गुणस्थानातीत होनेका क्या उपाय है?

उत्तर—सभी आत्मोन्नतियोंका व पूर्ण उन्नतिका उपाय एक ही है, उस उपायके आलम्बनकी हीनाधिकता हो, यह अन्य बात है। वह उपाय है अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वभावका आलंबन। इस ही चैतन्यस्वभावका अपर नाम है कारणपरमात्मा या कारणब्रह्म। हमारी भी उन्नति इस निज चैतन्य कारणपरमात्माकी भावना और अवलम्बनसे होगी।

प्रश्न ४०—क्या यह स्वभाव सिद्ध अवस्थामें भी है?

उत्तर-- यह चैतन्यस्वभाव या कारणपरमात्मा अथवा कारणब्रह्म सिद्ध अवस्था अर्थात् कार्यब्रह्म ब्रह्मकी स्थितिमें भी है, किन्तु वहां कार्यब्रह्म होनेसे कारणब्रह्मकी अप्रधानता है। स्वभाव तो अनादि अनन्त होता है। इस ही स्वभावको कारण रूपसे उपादान करके केवलज्ञानोपयोगरूप परिणमते रहना होता रहता है।

प्रश्न ४१– मार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन सदृश धर्मों द्वारा जीवोंको खोजा जा सकता हो उन धर्मोंके द्वारा जीवों के खोजनेको मार्गणा कहते हैं ।

प्रश्न ४२– मार्गणाके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—मार्गणाके १४ प्रकार हैं—(१) गतिमार्गणा, (२) इन्द्रियजातिमार्गणा, (३) कायमार्गणा, (४) योगमार्गणा, (५) वेदमार्गणा, (६) कषायमार्गणा, (७) ज्ञानमार्गणा, (८) संयममार्गणा, (९) दर्शनमार्गणा, (१०) लेश्यामार्गणा, (११) भव्यत्वमार्गणा, (१२) सम्यक्त्वमार्गणा, (१३) संज्ञित्वमार्गणा और (१४) आहारकमार्गणा ।

प्रश्न ४३—गतिमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर– गतिकी अपेक्षासे जीवोंका विज्ञान करना गतिमार्गणा है । इस मार्गणासे जीव ५ प्रकारसे उपलब्ध होते हैं—१– नारकी, २– तिर्यंच, ३– मनुष्य, ४– देव, ५– गतिरहित ।

प्रश्न ४४– इन्द्रिय जाति मार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय जातिकी अपेक्षासे जीवोंको खोजना इन्द्रिय जाति मार्गणा या इन्द्रिय-मार्गणा हैं । इस मार्गणासे जीव ६ प्रकारसे उपलब्ध होते हैं—(१) एकेन्द्रिय, (२) द्वीन्द्रिय, (३) त्रीन्द्रिय, (४) चतुरिन्द्रिय, (५) पञ्चेन्द्रिय और (६) इन्द्रियरहित ।

प्रश्न ४५—कायमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर– काय (शरीर) की प्रधानतासे जीवोंका परिचय पाना कायमार्गणा है । काय-मार्गणासे जीव ७ तरहसे ज्ञात होते हैं—(१) पृथ्वीकायिक, (२) जलकायिक, (३) अग्निका-यिक, (३) वायुकायिक, (५) वनस्पतिकायिक, (६) त्रसकायिक और (७) कायरहित ।

प्रश्न ४६– जो जीव विग्रह गतिमें गमन कर रहे हैं उनके केवल तैजस और कार्माण ही शरीर है, वे क्या कायरहितमें अन्तर्गत हैं ?

उत्तर—जो जीव जिस कायमें उत्पन्न होनेके लिये विग्रहगतिसे गमन कर रहा है उसके उस काय सम्बंधी नामकर्म प्रकृतियोंका उदय होनेसे तथा १, २ या ३ समयमें ही उस कायको अवश्य प्राप्त करनेसे उस ही कायवान्में गर्भित है वे कायरहितमें अन्तर्गत नहीं होते ।

प्रश्न ४७– योगमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर– काय वचन व मन प्रयत्नके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्द होनेको योग कहते हैं । योगकी अपेक्षा जीवोंका परिचय करना योगमार्गणा है । योगमार्गणाकी अपेक्षा जीव १६ प्रकारसे उपलब्ध होते हैं– (१) औदारिक काययोगी, (२) औदारिक मिश्रकाययोगी, (३) वैक्रियक काययोगी (४) वैक्रियक मिश्रकाययोगी, (५) आहारक काययोगी, (६) आहार-कमिश्रकाय योगी, (७) कार्माणकाययोगी, (८) सत्यवचनयोगी, (९) असत्यवचनयोगी,

(१०) उभयवचनयोगी, (११) अनुभयवचनयोगी, (१२) सत्यमनोयोगी, (१३) असत्यमनोयोगी, (१४) उभयमनोयोगी, (१५) अनुभयमनोयोगी और (१६) योगरहित ।

प्रश्न ४८— वेदमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—मैथुनके संस्कार व अभिलाषाको वेद कहते हैं । वेदकी अपेक्षा जीवोंको खोजना वेदमार्गणा है । वेदमार्गणासे जीव चार प्रकारके पाये जाते हैं– (१) पुंवेदी, (२) स्त्रीवेदी, (३) नपुंसकवेदी, (४) अपगतवेदी ।

प्रश्न ४९—कषायमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर– कषायकी अपेक्षा जीवोंकी खोज करना कषायमार्गणा है । कषायमार्गणासे जीव २६ प्रकारसे उपलब्ध होते हैं— (१) अनन्तानुबन्धी क्रोधी, (२) अन० मानी, (३) अन० मायावी, (४) अन० लोभी, (५) अप्रत्याख्यानावरण क्रोधी, (६) अप्र० मानी, (७) अप्र० मायावी, (८) अप्र० लोभी, (९) प्रत्याख्यानावरण क्रोधी, (१०) प्रत्याख्यानावरण मानी, (११) प्रत्याख्यानावरण मायावी, (१२) प्रत्याख्यानावरण लोभी, (१३) संज्वलन क्रोधी, (१४) सं० मानी, (१५) सं० मायावी, (१६) सं० लोभी, (१७) हास्यवान्, (१८) रतिमान्, (१९) अरतिमान्, (२०) शोकवान्, (२१) भयवान्, (२२) जुगुप्सावान्, (२३) पुंवेदी, (२४) स्त्रीवेदी, (२५) नपुंसकवेदी, (२६) कषायरहित ।

प्रश्न ५०— ज्ञानमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञानकी अपेक्षा जीवोंका परिचय पाना ज्ञानमार्गणा है । ज्ञानमार्गणासे जीव ८ प्रकारसे उपलब्ध होते हैं– (१) कुमतिज्ञानी, (२) कुश्रुतज्ञानी, (३) कुअवधिज्ञानी, (४) मतिज्ञानी, (५) श्रुतज्ञानी, (६) अवधिज्ञानी, (७) मनःपर्ययज्ञानी, (८) केवलज्ञानी ।

प्रश्न ५१—संयममार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर– संयमकी अपेक्षासे जीवोंका ज्ञान करना संयममार्गणा है । इस मार्गणासे जीव ८ प्रकारसे ज्ञात होते हैं—(१) असंयम, (२) संयमासंयम, (३) सामायिकसंयम, (४) छेदोपस्थनासंयम, (५) परिहारविशुद्धिसंयम, (६) सूक्ष्मसाम्परायसंयम, (७) यथाख्यातसंयम, (८) असंयम-संयमा-संयम—संयम इन तीनोंसे रहित ।

प्रश्न ५२– दर्शनमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—दर्शनकी अपेक्षासे जीवोंका परिचय पाना दर्शनमार्गणा है । दर्शनमार्गणासे जीव ४ प्रकारके उपलब्ध होते हैं– (१) चक्षुर्दर्शनी, (२) अचक्षुर्दर्शनी, (३) अवधिदर्शनी, (४) केवलदर्शनी ।

प्रश्न ५३– लेश्यामार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—कषायोंसे अनुरञ्जित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं । लेश्याकी अपेक्षासे

जीवोंको खोजना लेश्यामार्गणा है। लेश्यामार्गणाकी अपेक्षासे जीव ७ प्रकारके उपलब्ध होते हैं- (१) कृष्णलेश्यावान्, (२) नीललेश्यावान्, (३) कापोतलेश्यावान्, (४) पीतलेश्यावान्, (५) पद्मलेश्यावान्, (६) शुक्ललेश्यावान् और (७) लेश्यारहित।

प्रश्न ५४—भव्यत्वमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जो रत्नत्रयके पानेके योग्य होवें वे भव्य हैं और भव्यत्वकी दृष्टिसे जीवोंको खोजना भव्यत्वमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव ३ प्रकारके पाये जाते हैं—(१) भव्य, (२) अभव्य और (३) अनुभय (सिद्ध)।

प्रश्न ५५—सम्यक्त्वमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक्त्वकी दृष्टिसे जीवोंका परिचय पाना सम्यक्त्वमार्गणा है। इस मार्गणा से जीव ६ तरहके उपलब्ध होते हैं—(१) मिथ्यादृष्टि, (२) सासादनसम्यक्त्ववान्, (३) सम्यग्मिथ्यादृष्टि, (४) उपशमसम्यग्दृष्टि, (५) वेदकसम्यग्दृष्टि और (६) क्षायिकसम्यग्दृष्टि।

प्रश्न ५६—संज्ञित्वमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—संज्ञापनेकी अपेक्षासे जीवोंको खोजना संज्ञित्वमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव ३ तरहके पाये जाते हैं- (१) संज्ञी, (२) असंज्ञी और (३) अनुभय (न संज्ञी, न असंज्ञी)।

प्रश्न ५७—आहारकमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव नोकर्मवर्गणावोंको ग्रहण करता है वह आहारक है व आहारकपनेकी दृष्टिसे जीवोंका परिचय पाना आहारकमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव दो तरहके पाये जाते हैं- (१) आहारक और (२) अनाहारक।

प्रश्न ५८—इन सब भेदोंका संक्षिप्त विवरण क्या है ?

उत्तर- विस्तारभयसे यहाँ विवरण नहीं करते। एतदर्थं गुणस्थानदर्पण व जीवस्थान चर्चा देखिये।

गुणस्थानदर्पणमें सर्वगुणस्थान व अतीतगुणस्थानका अनेक प्रकारसे विवरण है।

जीवस्थान चर्चामें—मार्गणावोंका विशेष विवरण है तथा किस गुणस्थानमें व किस मार्गणाके भेदमें गुणस्थान मार्गणायें बंध, उदय, सत्त्व, भाव, आस्रव आदि कितने-कितने होते हैं, यह विवरण सामान्यसे, पर्याप्तनानायें, पर्याप्त एक जीवमें, पर्याप्त एक जीवके एक समयमें, अपर्याप्तनानायें, अपर्याप्त एक जीवमें, अपर्याप्त एक जीवके एक समयमें इतने-इतने प्रकारसे किया गया है।

प्रश्न ५९- इन मार्गणा स्थानोंमें कौनसा स्थान निर्मल एवं उपादेय है ?

उत्तर- इन मार्गणावोंमें अन्तिम भेद वाला स्थान कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेके कारण निर्मल और उपादेय है।

प्रश्न ६०—अनाहारक तो छहों कायके जीवोंमें हो जाता है, वह कैसे उपादेय है ?

उत्तर– इस उपादेय अनाहारकत्वमें संसारी अनाहारकोंका ग्रहण नहीं करना, किन्तु सिद्ध भगवानका ग्रहण करना। सिद्धप्रभुके नोकर्मवर्गणावोंका कभी भी ग्रहण नहीं होता।

प्रश्न ६१– अन्य सर्व मार्गणास्थान क्यों हेय हैं ?

उत्तर– संसारी जीवोंके उक्त सब प्रकार कर्मोंका उदय, उपशम, क्षयोपशम उदीरणादिका निमित्त पाकर होते हैं, वे स्वाभाविक भाव नहीं हैं।

प्रश्न ६२—क्षायिक भाव भी तो कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है, वह कैसे स्वाभाविक भाव है ?

उत्तर—कर्मोंके क्षयको निमित्त पाकर होने वाला भाव यद्यपि इस निमित्तदृष्टिसे क्षयकालमें नैमित्तिक भाव है तथापि आगे सब समयोंमें अनैमित्तिक भाव है, अतः स्वाभाविक भाव है तथा क्षयकालमें भी कर्मोंका अभाव होनारूप ही तो निमित्त कहा है, सो कर्मोंके अभाव से होनेके कारण स्वाभाविक भाव है।

प्रश्न ६३– मार्गणास्थानोंमें अन्तिम भेद द्वारा बताया गया निर्मल परिणमन कैसे प्रकट होता है ?

उत्तर– उन-उन समस्त मार्गणास्थानोंसे विलक्षण शुद्ध चैतन्यस्वभावके अवलम्बनसे वह वह निर्मलपरिणमन उत्पन्न होता है। जैसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, गतिरहित (सिद्ध), पाँचों पर्यायोंसे विलक्षण चैतन्यस्वभावके अवलम्बनसे गतिरहित परिणमन प्रकट होता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और इन्द्रियरहित—इन छहों पर्यायोंसे विलक्षण सनातन चैतन्यस्वभावके अवलम्बनसे इन्द्रियरहित परिणमन प्रकट होता है। इत्यादि प्रकारसे सब मार्गणावोंमें लगा लेना चाहिये।

प्रश्न ६४-- क्या उन निर्मल पर्यायोंके भिन्न-भिन्न साधन हैं ?

उत्तर— नहीं, एक सनातन चैतन्यस्वभावके अवलम्बनमें ही गतिमार्गणा भेदरहित, इन्द्रियमार्गणा भेदरहित, कायमार्गणा भेदरहित आदि द्वारा विशेषित वह सर्वचैतन्यस्वभाव अन्तर्निहित है। वह एक ही है और है अनादि, अनन्त, अहेतुक, परमपारिणामिक भावमय, कारणपरमात्मा, समयसार, शुद्धात्मतत्त्व आदि संकेतों द्वारा गम्य।

प्रश्न ६५– शुद्धनयसे ये सभी जीव शुद्ध किस प्रकारसे हैं ?

उत्तर– शुद्धनय वस्तुके अखंड स्वभावको देखता है। कालगत, क्षेत्रगत, शक्तिगत भेदों को यह नय विषय नहीं करता। इस शुद्धनयका अपर नाम परमशुद्धनिश्चयनय है। शुद्धनय की दृष्टिमें मात्र चैतन्यस्वभाव है। इस दृष्टिसे सभी जीव स्वभावसे शुद्ध हैं।

प्रश्न ६६—यह शुद्ध पारिणामिक भाव तो शाश्वत है ही, उसका करना ही क्या रह

जाता है ?

उत्तर—इस शाश्वत शुद्ध पारिणामिक भावका ध्यान करना कर्तव्य हो जाता है। यह शुद्ध स्वभाव तो शाश्वत है, ध्येयरूप है।

इस प्रकार संसारस्थ अधिकारका विवरण करके सिद्ध और विस्रसोर्द्ध्वगति– इन दो अधिकारोंका एक गाथामें विवरण करते हैं—

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेह दोसिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥१४॥

अन्वय—सिद्धा णिक्कम्मा, अट्ठगुणा चरमदेहो किंचूणा, लोयगठिदा, णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता।

अर्थ—सिद्धभगवान अष्टकर्मोंसे रहित हैं, अष्टगुणोंसे सहित है, अन्तिम शरीरसे कुछ कम हैं तथा ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकके अग्रभागमें स्थित हैं, नित्य हैं और उत्पादव्ययकरि संयुक्त हैं।

प्रश्न १—सिद्ध शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर– सिद्ध्यति इति सिद्धः। जो पूर्णविकासको प्राप्त हो गया उसे सिद्ध कहते हैं।

प्रश्न २—जीवका विकास क्यों रुका हुआ है ?

उत्तर—अपने विभाव परिणामोंके कारण जीवका विकास रुका हुआ है।

प्रश्न ३– जीवके विभावपरिणाम क्यों हो जाते हैं ?

उत्तर– कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जीवके मलिन संस्कारके कारण जीवके विभावपरिणाम हो जाते हैं। ये विभावपरिणाम, दुःखरूप हैं।

प्रश्न ४—कर्म कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर– कर्म तो असंख्यातों प्रकारके हैं, किन्तु उनके फल देनेकी प्रकृतिकी जाति बना कर भेद करनेसे कर्म ८ प्रकारके हैं— (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

प्रश्न ५—ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिनमें ज्ञानको प्रकट न होने देनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन कर्मवर्गणाओंको ज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न ६– दर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिन कार्माणवर्गणावोंमें अन्तर्मुख चैतन्य प्रकाशको प्रकट न होने देनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हें दर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७—वेदनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणावोंमें जीवके सुख दुःख होनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हें वेदनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८-- मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणावोंमें जीवके सम्यक्त्व और चारित्र गुणके विकृत होनेमें निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हें मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९-- आयुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिन कर्मवर्गणाओंमें जीवको नये भवमें ले जानेमें व शरीरमें रुके रहनेमें निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हें आयुकर्म कहते हैं।

प्रश्न १०-- नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिन कर्मवर्गणावोंमें शरीरकी रचना होनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हें नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११—गोत्रकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे जीव उच्च नीच कुलमें उत्पन्न हो व रहे उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२— अन्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिसके उदयसे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यमें विघ्न आवे उसे अंतरायकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३-- कर्म किस उपायसे नष्ट होते हैं ?

उत्तर-- निज शुद्धात्माके अनुभवके बलसे कर्म स्वयं अकर्म हो जाते हैं। कर्मका अकर्मस्वरूप होना ही कर्मका नाश है।

प्रश्न १४—कर्मोंके नाशका क्या क्रम है ?

उत्तर—पहिले मोहनीयकर्मका क्षय होता है, पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय— इन तीनका एक साथ क्षय होता है। पश्चात् शेषके ४ कर्मोंका एक साथ क्षय होता है। आठों कर्मोंका क्षय हो जानेपर आत्मा सिद्ध परमात्मा कहलाता है। सिद्धभगवान आठों कर्मोंसे रहित हैं।

प्रश्न १५—सिद्धभगवानके गुण कितने हैं ?

उत्तर— विशेष भेदनयसे सिद्धभगवानमें गतिरहितता, इन्द्रियरहितता, गुणस्थानातीतता, अनन्त ज्ञान, अनन्तआनन्द आदि अनन्त गुण हैं।

प्रश्न १६— अभेदनयसे सिद्धभगवानमें कितने गुण हैं ?

उत्तर— साक्षात् अभेदनयसे "शुद्धचैतन्य" एक गुण है। विवक्षित अभेदनयसे सिद्धप्रभु

में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन ये दो गुण हैं अथवा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य ये चार गुण हैं।

प्रश्न १७– मध्यमपद्धतिसे सिद्धभगवानमें कितने गुण हैं ?

उत्तर—सिद्धभगवानमें ८ गुण हैं—[१] परमसम्यक्त्व, [२] केवलज्ञान, [३] केवलदर्शन, [४] अनन्तवीर्य, [५] अनन्तसुख, [६] अवगाहनत्व, [७] सूक्ष्मत्व और [८] अगुरुलघुत्व।

प्रश्न १८– परमसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– समस्त द्रव्य, गुण, पर्यायोंके विषयमें विपरीत अभिप्रायरहित सम्यक्त्वरूप परिणमनको परमसम्यक्त्व कहा है। इस सम्यक्त्वमें चारित्रमोहजनित दोषका भी सम्बंध न होनेसे तथा उपशम, क्षय, क्षयोपशमादि निमित्त न रहनेसे एवं केवलज्ञानका साथ होनेसे परमसम्यक्त्व नाम कहा है। इसे परमावगाढ़ सम्यक्त्व भी कहते हैं।

प्रश्न १९-- परमसम्यक्त्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर-- शुद्धात्म रुचिस्वरूप निश्चयसम्यक्त्वकी पहिले भावना व परिणति हुई, जिसके फलमें यह परमसम्यक्त्व प्रकट हुआ।

प्रश्न २०-- केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—लोकालोकवर्ती समस्त पदार्थोंको समस्त पर्यायों सहित एक साथ जानने वाले ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्न २१—केवलज्ञान कैसे प्रकट हुआ है ?

उत्तर—अविकार अखण्ड स्वके संवेदनकी स्थिरताके फलस्वरूप यह केवलज्ञान प्रकट हुआ।

प्रश्न २२—केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—लोकालोकवर्ती समस्त पदार्थोंमें व्यापक सामान्य आत्माके प्रतिभास करने वाले चैतन्य प्रकाशको केवलदर्शन कहते हैं।

प्रश्न २३—केवलदर्शन कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—निर्विकल्प निज शुद्धात्मतत्त्वके अवलोकनके फलस्वरूप यह केवलदर्शन प्रकट हुआ।

प्रश्न २४—अनन्तवीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनन्त पदार्थोंके ज्ञान आदि समस्त गुणविकासका अनन्त सामर्थ्य प्रकट होनेको अनन्तवीर्य कहते हैं।

प्रश्न २५—अनन्तवीर्य कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—अखण्डशक्तिमय निज कारणसमयसारके ध्यानमें निज सामर्थ्यका उपयोग किया और स्वरूपसे विचलित करनेका कोई अन्तरङ्ग या बहिरङ्ग कारण उपस्थित हुआ तो उस समय परमधैर्यका अवलम्बन लिया व स्वरूपसे चलित नहीं हुए। इसके फलस्वरूप यह अनन्तवीर्य प्रकट हुआ।

प्रश्न २६—अनन्तसुख किसे कहते हैं ?

उत्तर—आकुलताके अत्यन्त अभाव होनेको अनन्तसुख कहते हैं। इसका अपर नाम अव्याबाध भी है।

प्रश्न २७—अनन्तसुख कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—निज सहजशुद्ध आत्मतत्त्वके संवेदनसे प्रकट हुये आनन्दानुभवके फलस्वरूप यह अनन्तसुख प्रकट हुआ।

प्रश्न २८—अवगाहनत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक सिद्धके क्षेत्रमें अनन्तसिद्धोंका भी अवगाहन हो जावे, इस सामर्थ्यको अवगाहनत्व कहते हैं।

प्रश्न २९—यह अवगाहनत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—अमूर्त निराबाध निज चैतन्यस्वभावकी पहिले भावना, उपासना की जिसके फल स्वरूप यह अवगाहनत्व प्रकट हुआ।

प्रश्न ३०—सूक्ष्मत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—केवलज्ञान द्वारा ही गम्य अमूर्त प्रदेशात्मक होनेको सूक्ष्मत्व कहते हैं।

प्रश्न ३१—यह सूक्ष्मत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मोंसे रहित निज शुद्धात्मतत्त्वके श्रद्धान, ज्ञान, आचरणसे यह सूक्ष्मत्व प्रकट हुआ।

प्रश्न ३२—अगुरुलघुत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे अन्य न कोई गुरु हो और इस सिद्धावस्थामें रहने वाले अनन्त जीवोंसे कोई न लघु हो ऐसी साम्य अवस्थाके प्राप्त होनेको अगुरुलघुत्व कहते हैं अथवा न ऐसे भारी हो जायें कि लोहपिण्डवत् नीचे पतन हो जाय और न ऐसे लघु हो जायें कि आकके तूलकी तरह भ्रमण ही होता रहे, ऐसे विकासको अगुरुलघुत्व कहते हैं।

प्रश्न ३३—यह अगुरुलघुत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—सर्व जीवोंमें एकस्वरूप निज चैतन्य सामान्यस्वरूपकी अभेद उपासना की, उसके फलस्वरूप यह अगुरुलघुत्व प्रकट हुआ।

प्रश्न ३४—ये आठों गुण त्रैकालिक तो नहीं हैं, ये किसी समयसे ही प्रकट हुये,

फिर इन्हें गुण क्यों बताया ?

उत्तर-- ये आठों किसी समयसे ही प्रकट हुये अतः पर्यायें हैं। यहाँ गुण शब्दका अर्थ है विशेषता। सिद्धोंकी विशेषता इन ८ विकासों द्वारा बताई है।

प्रश्न ३५-- सिद्धभगवान चरमशरीरसे कुछ ऊन क्यों होते हैं ?

उत्तर—इसके दो कारण हैं—(१) शरीरके अग्रनख, केश और ऊपरी सूक्ष्म त्वचामें आत्मप्रदेश नहीं होते हैं, सो शरीरसे मुक्त होनेपर पूर्व शरीरसे, जिसमें नख, केश, त्वचा भी थे, कुछ कम अवगाहना है। (२) सयोगकेवलीके अन्तिम समयमें शरीर व अङ्गोपाङ्ग नामकर्मके उदयकी व्युच्छित्ति हो जाती है। इस कारण अयोगकेवलीके प्रथम समयमें ही नासिकाछिद्र आदि समाप्त हो जाते हैं। इसलिये किञ्चित् ऊनपना हो जाता है। यही ऊनपना सिद्धभगवानके प्रदेशावगाहनामें है।

प्रश्न ३६— शरीरका आवरण समाप्त होनेपर आत्मप्रदेश फैलकर लोकप्रमाण क्यों नहीं हो जाते ?

उत्तर-- आत्मप्रदेशोंका विस्तार आत्माका स्वभाव नहीं है, विस्तार शरीर नामकर्मके आधीन है। शरीर नामकर्मके अभावसे विस्तारका भी अभाव है।

प्रश्न ३७— जैसे दीपकके आवरणका अभाव होनेसे दीपकका प्रकाश एकदम फैल जाता है, क्या इसी तरह आत्मप्रदेश भी फैल सकते हैं ?

उत्तर-- दीपक तो पहिले भी निरावरण हो सकता है, पीछे आवरण आ सकता है, अतः दीपका आवरण न होनेपर दीप प्रकाश फैल सकता है, किन्तु आत्मा पहिले शरीररहित हो पश्चात् शरीरबद्ध हो, ऐसा नहीं है, अतः शरीरका आवरण हटनेपर भी आत्मा शरीरप्रमाण रहता है।

प्रश्न ३८— जो दीपक पहिलेसे आवरणके भीतर जला हो उसे फिर बाहर निकाल दिया जाय तो जैसे वह फैल जाता इस तरह आत्मा क्यों नहीं फैलता ?

उत्तर— दीपक तो निरावरण भी रह सकता यह आत्मा तो अनादिसे शरीरमें ही रहा, अतः दृष्टान्त विषम है। और दूसरी बात यह है कि लोकमें रूढ़ि ऐसी है जो कहते हैं कि दीपकका प्रकाश फैल गया। वास्तवमें दीप-प्रकाश दीप-शिखाके बाहर नहीं है।

प्रश्न ३९— तो वह प्रकाश किसका है जो सारे कमरेमें फैला है ?

उत्तर— जिस पदार्थपर प्रकाश है वह उस ही पदार्थका प्रकाशपरिणमन है। हाँ वह प्रकाशपरिणमन दीपकको निमित्त पाकर हुआ है।

प्रश्न ४०— तब दीपकके सामनेके बहुत दूरके पदार्थ क्यों नहीं प्रकाशपरिणमनको प्राप्त करते ?

उत्तर– यह परिणमने वाले पदार्थकी योग्यता है कि यह कितने दूरवर्ती और कितने तेजोमय पदार्थको निमित्त पाकर प्रकाशरूप परिणमे। पदार्थ अपनी योग्यताके अनुसार प्रकाशपरिणत होते हैं। तभी तो कांच विशेष प्रकाशरूप परिणमता हैं, दीवार आदि साधारण प्रकाशपरिणत होते हैं।

प्रश्न ४१—शरीरसे मुक्त होनेपर आत्माका अवस्थान कहाँ रहता है ?

उत्तर—शरीरसे मुक्त होनेपर इस परमात्माका अवस्थान लोकके शिखरपर हो जाता है।

प्रश्न ४२– जहाँ शरीरसे मुक्त हुए वहीं अवस्थान क्यों नहीं रहता ?

उत्तर—आत्माका ऊर्ध्वगमनस्वभाव होनेसे आत्मा देहमुक्त होते ही एक समयमें सबसे ऊपर चला जाता है।

प्रश्न ४३– सिद्धप्रभु और ऊपर चलते ही क्यों नहीं जाते ?

उत्तर-- गमनक्रियाके निमित्तभूत धर्मास्तिकायका लोकके अन्त तक ही सद्भाव है अतः वहाँ तक ही गमन है।

प्रश्न ४४—तब आत्माकी क्रिया क्या पराधीन नहीं हुई ?

उत्तर– नहीं, आत्मा अपनी क्रियासे ही क्रियावान् होता है, किन्तु ऐसा ही सहज निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि धर्मास्तिकायको निमित्त पाकर आत्मा अपनी स्वतन्त्र क्रिया से क्रियावान् हुआ।

प्रश्न ४५—सिद्धप्रभु सिद्धावस्थामें कब तक रहते हैं ?

उत्तर—सिद्धपर्याय नित्य है अर्थात् सदैव अनन्तानन्त काल तक रहेगी। अतः सिद्ध नित्य हैं।

प्रश्न ४६—सिद्धपर्याय नित्य क्यों है पर्याय तो अनित्य होती ?

उत्तर—सिद्धपर्याय स्वाभाविक और अनैमित्तिक है इसलिये सदा रहती है। सूक्ष्मदृष्टि अथवा वस्तुस्वभावसे प्रतिसमय नया नया परिणमन होता ही है, किन्तु वह अनैमित्तिक और स्वाभाविक होनेसे पूर्ण समान ही होता है। अतः सिद्धपर्यायको नित्य कहा।

प्रश्न ४७—नया-नया परिणमन सिद्धोंमें क्या होता है ?

उत्तर– जैसे आधा घण्टा तक बिजली जली तो वहाँ प्रतिक्षण नयी-नयी बिजली हुई। लगातार होनेसे व समान प्रकाश होनेसे उसमें अन्तर मालूम नहीं होता। वैसे सिद्धोंके प्रतिसमयके परिणमनमें अन्तर नहीं होता। प्रतिसमय शक्तिका उपयोग तो हो ही रहा है।

प्रश्न ४८– प्रतिसमय उत्पाद व्यय होनेका कारण क्या है ?

उत्तर– अगुरुलघु गुणके ६ वृद्धिस्थानोंमें व ६ हानिस्थानोंमें परिणमन होनेसे उत्पाद

व्यय होता रहता है ।

प्रश्न ४६—क्या सिद्धभगवानमें स्थूलरूपसे भी कोई उत्पाद व्यय होता है ?

उत्तर—व्यञ्जनपर्यायकी अपेक्षासे स्थूल उत्पादव्यय भी है अर्थात् संसारपर्यायका तो विनाश हुआ और सिद्धपर्यायका उत्पाद हुआ । यहाँ जीवद्रव्य ध्रौव्यरूपसे रहा ।

प्रश्न ५०-- सिद्धप्रभुके स्वरूप जाननेसे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर– अनन्त आनन्द आत्यन्तिक शुद्ध सिद्धपर्यायकी जिस स्वभावके साथ एकता हुई है वह स्वभाव मुझमें भी अनादिसिद्ध है । इस स्वभावकी भावना, उपासना और इसी स्वभावके अवलम्बनसे शुद्ध निर्मल सिद्धपर्याय प्रकट होती है । एतदर्थं निज सहजसिद्ध चैतन्यस्वभावमें अपनी वर्तमान ज्ञान पर्याय जोड़नी चाहिये ।

॥ इस प्रकार जीवतत्त्वके प्ररूपणमें प्रथम अधिकार समाप्त हुआ ॥

द्वितीय अधिकार

अज्जीवो पुरणेो पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु ॥१५॥

अन्वय—पुणापुग्गल धम्मो अधम्म आयासं कालो अज्जीवोणेवो पुग्गल रूवादिगुणो मुत्तो दुसेसा अमुत्ति ।

अर्थ— और फिर पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य—इन पाँचोंको अजीव जानना चाहिये । उनमें से पुद्गलद्रव्य तो रूपादि गुण वाला है, इसलिये मूर्तिक है और शेषके धर्म, अधर्म, आकाश और काल— ये चार द्रव्य अमूर्तिक हैं ।

प्रश्न १— परम उपादेय शुद्ध जीवद्रव्यके वर्णनके बाद अजीवोंके वर्णनका क्या प्रयो- जन है ?

उत्तर-- जीवतत्त्व उपादेय है और अजीवतत्त्व हेय है । हेय तत्त्वको जाने बिना उसे कैसे छोड़ा जाय और अजीवतत्त्व छोड़े बिना जीवतत्त्व कैसे उपादेय बनेगा ? इस कारण अजीवतत्त्वका वर्णन किया ।

प्रश्न २-- तब तो अजीवतत्त्वका पहिले वर्णन करना था ?

उत्तर—जीवतत्त्व प्रधान है, इसलिये जीवतत्त्वका पहिले वर्णन किया अथवा अजीव उसे कहते हैं, जो जीव नहीं । सो अजीवका स्वरूप जाननेके लिए जीवके स्वरूपका वर्णन पहिले आवश्यक ही है ।

प्रश्न ३— अजीव किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिसमें जीवत्व अर्थात् चेतना न हो उसे अजीव कहते हैं । इन अजीवद्रव्यों में किसी भी प्रकारकी चेतना नहीं है ।

प्रश्न ४— चेतना कितने प्रकारकी होती है ?

उत्तर— चेतना शक्तिकी अपेक्षा तो एक ही प्रकारकी है, विकासकी अपेक्षा तीन प्रकार की है—(१) कर्मफलचेतना, (२) कर्मचेतना और (३) ज्ञानचेतना ।

प्रश्न ५— कर्मफलचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर— ज्ञानके अतिरिक्त अन्य भावोंमें व पदार्थोंमें मैं इसे भोगता हूं, ऐसा संवेदन करना कर्मफलचेतना है । इसमें अव्यक्त सुख दुःखका अनुभव भी अन्तर्निहित है ।

प्रश्न ६— कर्मफलचेतना किन जीवोंके होती है ?

उत्तर— कर्मफलचेतना एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमें

होती है और संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें तीसरे गुणस्थान तकके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें होती है। इसके आगे १२वें गुणस्थान तक गौणरूपसे माना है।

प्रश्न ७—कर्मचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञानके अतिरिक्त अन्य भावोंमें व पदार्थोंमें मैं इसे करता हूं, ऐसा संवेदन करना कर्मचेतना है।

प्रश्न ८– कर्मचेतना किन जीवोंके होती है ?

उत्तर– कर्मचेतना द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमें व तीसरे गुणस्थान तक संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें कर्मचेतना होती है। एकेन्द्रिय जीवोंमें क्रियाकी मुख्यता न होनेसे कर्मचेतना गौणरूपसे कही है चौथे गुणस्थानसे १२वें गुणस्थान तकके जीवोंमें अंशमात्र भी विपरीत श्रद्धान न होनेसे मात्र रागद्वेष परिणतिके कारण कर्मचेतना गौणरूपसे मानी है।

प्रश्न ९—ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर– अपनेको शुद्ध ज्ञानमात्र संचेतन करना ज्ञानचेतना है।

प्रश्न १०– ज्ञानचेतना किनके होती है ?

उत्तर—ज्ञानचेतना चौथे गुणस्थानसे लेकर १४वें गुणस्थान तकके सब जीवोंमें और सिद्धोंमें होती है। १३वें, १४वें गुणस्थानवर्ती जीवोंके व सिद्धोंके ज्ञानोपयोगका पूर्ण शुद्ध परिणमन होनेसे मुख्यरूपसे ज्ञानचेतना है।

प्रश्न ११– पुद्गल किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें पूरन और गलनका स्वभाव हो उसे पुद्गल कहते हैं। अनेक परमाणुवोंका मिलकर स्कन्ध हो जाना और बिखरकर खण्ड-खण्ड हो जाना वह बात पुद्गलमें ही पाई जाती है।

प्रश्न १२– एक पुद्गल पदार्थ बिखर क्यों जाता है ?

उत्तर—जो स्कंध है वह एक पुद्गल पदार्थ नहीं है। उसमें जो एक-एक करके अनेक परमाणु हैं जिनका कि दूसरा खण्ड कभी नहीं हो सकता, ऐसे अखण्ड और सूक्ष्म हैं वे एक-एक पुद्गल द्रव्य हैं।

प्रश्न १३– स्कन्ध क्या द्रव्य नहीं है ?

उत्तर—स्कन्ध समानजातीय द्रव्यपर्याय है अर्थात् पुद्गल द्रव्यजातिके ही अनेक परमाणुवोंका व्यञ्जनपर्याय है। निश्चयसे वहाँ भी जितने परमाणु हैं उतने ही उनके अपने-अपनेमें परिणमन हैं।

प्रश्न १४– पुद्गल कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर– संक्षेपसे तो पुद्गल २ प्रकारके होते हैं– (१) अणु याने परमाणु और

(२) स्कन्ध ।

प्रश्न १५– विस्तारसे पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं ?

उत्तर-- न संक्षेप न अतिविस्तारसे पुद्गल २३ प्रकारके कहे गये हैं– (१) अणु, (२) संख्याताणुवर्गणा, (३) असंख्याताणुवर्गणा, (४) अनन्ताणुवर्गणा, (५) ग्राह्याहारवर्गणा, (६) ग्राह्यभाषावर्गणा, (७) ग्राह्यमनोवर्गणा, (८) ग्राह्यतैजसवर्गणा, (९) कार्माणवर्गणा, (१०) अग्राह्याहारवर्गणा, (११) अग्राह्यभाषावर्गणा, (१२) अग्राह्यमनोवर्गणा, (१३) अग्राह्यतैजसवर्गणा, (१४) ध्रुववर्गणा, (१५) सान्तरनिरन्तरवर्गणा, (१६) सान्तरनिरन्तरशून्यवर्गणा (१७) प्रत्येकशरीरवर्गणा, (१८) ध्रुवशून्यवर्गणा, (१९) वादर निगोदवर्गणा, (२०) वादरनिगोदशून्यवर्गणा, (२१) सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, (२२) नभोवर्गणा, (२३) महास्कन्धवर्गणा ।

प्रश्न १६– इन २३ प्रकारके पुद्गलोंका संक्षिप्त विभाग क्या है ?

उत्तर– इनमें अणु तो शुद्ध पुद्गल द्रव्य है शेषके २२ स्कन्ध हैं । उन बाईस स्कन्धों में संख्याताणुवर्गणा असंख्याताणुवर्गणा व अनन्ताणुवर्गणायें ३ सामान्य हैं, संख्याकी अपेक्षासे हैं । ग्राह्याहारवर्गणा, ग्राह्यभाषावर्गणा, ग्राह्यमनोवर्गणा, ग्राह्यतैजसवर्गणा और कार्माणवर्गणा ये ५ जीव द्वारा ग्राह्य हैं ? शेषके १४ को उनके नामपरसे उनका प्रयोजन जान लेना चाहिये ।

प्रश्न १७– धर्मद्रव्यका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—धर्मद्रव्य आदि शेष ४ अजीवद्रव्योंका स्वरूप अलगसे गाथावोंमें आगे कहा जावेगा इस कारण वहाँ ही इस सबका विवरण होगा ।

प्रश्न १८– इन सब द्रव्योंका आकार क्या है ?

उत्तर—इन द्रव्योंका आकार अपने अपने प्रदेशोंरूप है । मूर्त आकार केवल पुद्गलद्रव्यका ही है ।

प्रश्न १९– पुद्गलद्रव्य मूर्त क्यों है ?

उत्तर—पुद्गलमें रूप रस, गन्ध और स्पर्श ये चार गुण और इनके परिणमन पाये जाते हैं, इसलिये पुद्गलद्रव्य मूर्त है । रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चारोंके एकत्वको मूर्ति कहते हैं ।

प्रश्न २०-- धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त क्यों हैं ?

उत्तर – धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चारों द्रव्य रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे रहित हैं अतः ये अमूर्त हैं ।

प्रश्न २१– परमाणुका स्कन्धसे बन्ध क्यों हो जाता है ?

उत्तर– एक परमाणुका स्कन्धसे बन्ध नहीं होता किन्तु स्कन्धका स्कन्धके साथ

विशिष्ट सम्बन्ध हो जाता है।

प्रश्न २२– परमाणुका परमाणुसे बन्ध क्यों हो जाता है ?

उत्तर– परमाणुका परमाणुके साथ स्निग्ध रूक्ष गुणके परिणमनके कारण बन्ध हो जाता है। दो अधिक अविभागप्रतिच्छेद (डिग्री) वाले स्निग्ध या रूक्ष परमाणुके साथ उससे २ कम अविभागप्रतिच्छेद वाले स्निग्ध या रूक्ष किसी भी परमाणुका बन्ध हो जाता है। किन्तु एक अविभागप्रतिच्छेद वाले स्निग्ध या रूक्ष किसी भी परमाणुका बन्ध नहीं होता। जैसे कि जघन्य राग वाले मुनिके रागका बन्ध नहीं होता।

प्रश्न २३—परमाणु शुद्ध होते या अशुद्ध ?

उत्तर– परमाणु केवल एक द्रव्य रह गया इस अपेक्षासे तो परमाणु शुद्ध है। जिस परमाणुका बन्ध न हो ऐसी शुद्धताकी अपेक्षा जघन्य अर्थात् एक अविभागप्रतिच्छेद मात्र स्निग्ध, रूक्ष परमाणु शुद्ध है अनेक अविभागप्रतिच्छेद वाला स्निग्ध, रूक्ष परमाणु अशुद्ध है।

प्रश्न २४– जघन्यगुण वाले परमाणुका फिर कभी बन्ध होता है या नहीं ?

उत्तर—जघन्यगुण वाले परमाणुमें जब स्वयं अविभागप्रतिच्छेदकी वृद्धि हो जाती है तब बन्धयोग्य होता है।

प्रश्न २५—दो परमाणुवोंका बन्ध होनेपर वे किस रूप परिणम जाते हैं ?

उत्तर– कम गुण वाला परमाणु अधिक गुण वाले परमाणुकी तरह परिणम जाता है। जैसे १५ डिग्रीके रूक्ष परमाणुका १७ डिग्रीके स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध हुआ तो रूक्ष परमाणु भी स्निग्धपरमाणुके बन्धका निमित्त पाकर रूक्ष परिणमनका व्यय करता हुआ स्निग्ध गुणरूप परिणम जाता है।

२६-- इस वर्णनसे हमें क्या ध्यान करना चाहिये ?

उत्तर– जैसे जघन्य गुण वाला स्निग्धत्व या रूक्षत्व परमाणुके बन्धके लिये समर्थ नहीं होता उसी प्रकार जघन्यगुण वाला राग जीवके बन्धके लिये समर्थ नहीं होता और उस रागके नष्ट होते ही अनन्त चतुष्टयकी शुद्धता हो जाती है। यह सब निज शुद्धात्मभावनाका फल है। अतः रागरहित निजशुद्ध चैतन्यस्वभावकी उपासना करना चाहिये।

अब पुद्गल द्रव्यकी द्रव्यपर्यायोंका वर्णन करते हैं—

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाण भेद तम छाया।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

अन्वय– सद्दो, बंधो, सुहमो, थूलो, संठाण, भेदतमछाया, उज्जोदादवसहिया पुग्गल-दव्वस्स पज्जाया।

अर्थ-- शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, उद्योत, आताप ये

अथवा इन सहित पुद्गलद्रव्यके पर्याय हैं।

प्रश्न १-- पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- गुणोंकी अवस्थाओंको पर्याय कहते हैं।

प्रश्न २--पर्याय कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर-- पर्याय दो प्रकारके होते हैं--(१) अर्थपर्याय, (२) व्यञ्जनपर्याय।

प्रश्न ३-- अर्थपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अगुरुलघु गुणके निमित्तसे द्रव्यमें होने वाली षड्गुण हानि वृद्धि रूप, (अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि, अनन्त भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि, अनन्त गुण हानि रूप) अन्तः परिणमनको अर्थपर्याय कहते हैं। यह अर्थपर्याय सूक्ष्म है व वचनके अगोचर है।

प्रश्न ४-- व्यञ्जनपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- गुणोंकी व्यक्त अवस्थाको व्यञ्जनपर्याय कहते हैं।

प्रश्न ५-- व्यञ्जनपर्यायके कितने भेद हैं ?

उत्तर-- व्यञ्जनपर्यायके २ भेद हैं—(१) गुणव्यंजन पर्याय, (२) द्रव्यव्यंजन पर्याय।

प्रश्न ६-- अर्थपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- वस्तुके प्रदेशवत्त्वगुणके अतिरिक्त अन्य समस्त गुणोंके परिणमनको अर्थपर्याय कहते हैं।

प्रश्न ७-- गुणव्यंजन पर्यायके कितने भेद हैं ?

उत्तर—गुणव्यंजन पर्यायके २ भेद हैं—(१) स्वभाव गुणव्यंजन पर्याय, (२) विभाव गुणव्यंजन पर्याय।

प्रश्न ८—स्वभाव गुणव्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- परनिमित्त या संयोगके बिना गुणोंके शुद्ध परिणमनको स्वभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। शुद्ध परिणमन सम व एक स्वरूप होता है।

प्रश्न ९—विभाव गुणव्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- पर संयोग व निमित्तको पाकर होने वाले गुणोंके विकृत परिणमनको विभाव गुणव्यंजनपर्याय कहते हैं। विभाव परिणमन विषम व नाना प्रकारका होता है।

प्रश्न १०—द्रव्यव्यञ्जन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- प्रदेशवत्त्व गुणके परिणमन व अनेक द्रव्योंके संयोगसे होने वाले प्रदेश परिणमनको द्रव्यव्यञ्जन पर्याय कहते हैं।

प्रश्न ११—द्रव्यव्यञ्जन पर्यायके कितने भेद हैं ?

उत्तर—द्रव्यव्यञ्जन पर्यायके २ भेद हैं– (१) स्वभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय, (२) विभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय।

प्रश्न १२– स्वभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर– परद्रव्यके सम्बन्धसे रहित केवल एक ही द्रव्यके प्रदेशपरिणमनको स्वभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय कहते हैं।

प्रश्न १३– विभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर द्रव्यके निमित्तसे व सम्बन्ध सहित प्रदेशोंके परिणमनको विभाव द्रव्य-व्यञ्जन पर्याय कहते हैं।

प्रश्न १४– पुद्गल द्रव्यमें गुणव्यंजनपर्याय क्या क्या होते हैं ?

उत्तर– पाँच प्रकारका रूप, पांच प्रकारका रस, दो प्रकारका गंध, ४ प्रकारका स्पर्श ये पुद्गल द्रव्यकी गुणव्यञ्जन पर्याय हैं।

प्रश्न १५– कौनसे चार प्रकारका स्पर्श गुणव्यञ्जनपर्याय नहीं है ?

उत्तर– गुरु, लघु, कोमल, कठोर, ये चार गुणव्यञ्जनपर्याय नहीं किन्तु द्रव्यपर्याय हैं।

प्रश्न १६– गुरु, लघु, कोमल, कठोर ये चार व्यञ्जनपर्याय क्यों नहीं ?

उत्तर– यदि ये गुणव्यञ्जन पर्याय होतीं तो परमाणु अवस्थामें ये रहना चाहिये थे, किन्तु परमाणुमें ये चार स्पर्श होते नहीं है अतः स्कंधके याने द्रव्यव्यञ्जनपर्यायके साथ इनका सम्बंध होनेसे ये द्रव्य पर्याय ही हैं।

प्रश्न १७– इस गाथामें कहे गये पर्याय कौनसे पर्याय हैं ?

उत्तर—ये सब विभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय हैं।

प्रश्न १८– शब्द किसे कहते है ?

उत्तर—भाषावर्गणाके स्कन्धोंके संयोग वियोगके कारण जो ध्वनिरूप परिणमन है उसे शब्द कहते हैं।

प्रश्न १९– शब्द कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—शब्द दो प्रकारके होते हैं– (१) भाषात्मक और (२) अभाषात्मक।

प्रश्न २०—भाषात्मक शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर– त्रस जीवोंके योगके कारण होने वाली ध्वनिको भाषात्मक शब्द कहते हैं।

प्रश्न २१– भाषात्मक शब्द कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर—भाषात्मक शब्द दो प्रकारके हैं– (१) अक्षरात्मक और (२) अनक्षरात्मक।

प्रश्न २२– अक्षरात्मक भाषा कितने प्रकारकी होती है ?

उत्तर— संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, पाली, हिन्दी, उर्दू, इंगलिश, जर्मनी, फ्रान्च, बंगाली, गुजराती, तेलगू, कनाडी, मद्रासी, पंजाबी, अरबी और मराठी आदि अनेक प्रकारकी अक्षरात्मक भाषा होती है। यह आर्य म्लेच्छ मनुष्य आदिके होती है। इस भाषासे व्यवहारकी प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न २३— अनक्षरात्मक भाषा किनके होती है ?

उत्तर— द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय व संज्ञी पञ्चेन्द्रियतिर्यंचोंके अनक्षरात्मक भाषा होती है। सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनि भी अनक्षरात्मक भाषा कहलाती है।

प्रश्न २४— ये भाषात्मक शब्द तो जीवोंके शब्द हैं इनको पुद्गल द्रव्यकी पर्याय क्यों कहा ?

उत्तर— यद्यपि भाषात्मक शब्दकी उत्पत्ति जीवके संयोगसे है, जीवने जो पहिले शब्दादि पञ्चेन्द्रिय विषयोंके रागवश सुस्वर या दुःस्वर प्रकृतिका बन्ध किया था उसके उदय के निमित्तसे है, तथापि निश्चयसे भाषावर्गणा नामक पुद्गल स्कन्धके ही परिणमन हैं, अतः भाषात्मक शब्द पुद्गल द्रव्यके पर्याय कहे गये हैं।

प्रश्न २५— इन शब्दोंके वर्तमान पर्यायके समय जीव किस प्रकार निमित्त होता है ?

उत्तर— जीवके इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं इस प्रकार बोलूं। इच्छाके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका योग होता है। उस योगके निमित्तसे एकक्षेत्रावगाहस्थित शरीरका वात (वायु) चलता है। शरीरवायु चलनेके निमित्तसे ओंठ, जिह्वा, कण्ठ, तालका तदनरूप हलन चलन होता है उसके निमित्तसे भाषावर्गणाका शब्दरूप परिणमन होता है।)

प्रश्न २६— दिव्यध्वनिके शब्दमें आत्मा किस प्रकार निमित्त होता है ?

उत्तर— पूर्वकालमें सम्यग्दृष्टि आत्माने जगतके जीवोंके प्रति परमकल्याणरूप भाव किये "इनका मोह किसी प्रकार छूटे सुमार्गपर लग जावे आदि" इस प्रकारकी भावनासे जो विशिष्ट पुण्यप्रकृति एवं सुस्वर प्रकृतिका बंध किया उसके उदयको निमित्त पाकर, भव्य जीवोंके पुण्योदय होनेपर, योगके निमित्तसे अर्हंत परमेष्ठीके सर्वाङ्गसे भाषावर्गणावोंका अनक्षरात्मक भाषारूप परिणमन होता है।

प्रश्न २७— अभाषात्मक शब्द कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर—अभाषात्मक शब्द २ प्रकारके हैं—(१) प्रायोगिक, (२) वैस्रसिक।

प्रश्न २८—प्रायोगिक शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर—यथा योग्य दो पौद्गलिक स्कंधोंके प्रयोग सम्बन्ध होनेपर जो शब्द उत्पन्न होते हैं उन्हें प्रायोगिक शब्द कहते हैं।

प्रश्न २९—प्रायोगिक शब्द कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—प्रायोगिक शब्द चार प्रकारके होते हैं—(१) तत, (२) वितत, (३) घन और (४) सुषिर।

प्रश्न ३०– तत शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर—वीणा, सितार आदिके तारोंसे उत्पन्न होने वाले शब्दको तत शब्द कहते हैं।

प्रश्न ३१-- वितत शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर—ढोल, नगारे आदिके चर्मसे उत्पन्न होने वाले शब्दको वितत शब्द कहते हैं।

प्रश्न ३२– घन शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर—कांसेके घण्टे आदिके प्रयोगसे उत्पन्न होने वाले शब्दको घन शब्द कहते हैं।

प्रश्न ३३– सुषिर शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर– बंशी, तुरी आदिको फूककर बनानेसे उत्पन्न हुए शब्दको सुषिर शब्द कहते हैं।

प्रश्न ३४—मनुष्यादिके व्यापारसे उत्पन्न होने वाले इन शब्दोंको केवल पुद्गलके पर्याय क्यों कहे जा रहे हैं ?

उत्तर—मनुष्यादिका व्यापार तो प्रकट जुदा है, निमित्तमात्र है। उक्त सभी शब्द केवल पुद्गलके ही पर्याय हैं।

प्रश्न ३५—वैस्रसिक शब्द किसे कहते हैं ?

उत्तर-- विस्रसा अर्थात् स्वभावसे याने किसी दूसरेके प्रयोग बिना जो शब्द उत्पन्न होते हैं उन्हें वैस्रसिक शब्द कहते हैं। जैसे मेघगर्जनाके शब्द आदि।

प्रश्न ३६— बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—दो या अनेक पदार्थोंके परस्पर बन्ध हो जानेको बन्ध कहते हैं। जो स्कन्ध दिखते हैं उनमें बन्ध पर्याय है वह पौद्गलिक बन्ध है। कर्म और शरीरका बन्ध भी पौद्गलिक है।

प्रश्न ३७—सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—अल्पपरिमाणको सूक्ष्म कहते हैं। यह सूक्ष्म दो प्रकारका होता है—(१) साक्षात् सूक्ष्म और (२) अपेक्षाकृत सूक्ष्म।

प्रश्न ३८—साक्षात् सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे सूक्ष्म अन्य कोई न हो अर्थात् जिसकी सूक्ष्मता किसीकी अपेक्षा रखकर न बनी हो। जैसे—परमाणु।

प्रश्न ३९—अपेक्षाकृत सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सूक्ष्मता किसीकी अपेक्षा रखकर प्रतीत हो। जैसे आमसे आंवला

सूक्ष्म है।

प्रश्न ४०– स्थूल किसे कहते हैं ?

उत्तर– बड़े परिमाण वालेको स्थूल कहते हैं। यह भी २ प्रकारका है– (१). उत्कृष्ट स्थूल और (२) अपेक्षाकृत स्थूल।

प्रश्न ४१– उत्कृष्ट स्थूल कौन है ?

उत्तर—समस्त लोकरूप महास्कन्ध सर्वोत्कृष्ट स्थूल है।

प्रश्न ४२—अपेक्षाकृत स्थूल किसे कहते हैं ?

उत्तर–जो स्थूलता किसीकी अपेक्षा रखकर प्रतीत हो। जैसे आँवलेसे आम स्थूल है।

प्रश्न ४३– सूक्ष्म और स्थूल पुद्गल द्रव्य विभाव व्यञ्जनपर्याय क्यों माने गये ?

उत्तर—सूक्ष्म और स्थूल पुद्गल द्रव्यके किसी गुणके परिणमन नहीं है, किन्तु अनेक प्रदेशों (परमाणुवों) के सम्बन्धसे व उनके वियोगसे सूक्ष्मता स्थूलता होती है, अतएव ये विभावव्यंजन पर्याय हैं।

प्रश्न ४४– संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—मूर्त पदार्थके आकारको संस्थान कहते हैं। समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुंडकसंस्थान– ये भी पुद्गलद्रव्यकी विभाव व्यंजनपर्याय हैं और शरीरके अतिरिक्त गोल त्रिकोण आदि अन्य स्कन्धोंके संस्थान भी पुद्गल द्रव्यके विभावव्यंजनपर्याय हैं तथा अन्य अव्यक्त संस्थान भी पुद्गलके विभावव्यंजनपर्यायें हैं।

प्रश्न ४५—समचतुरस्रादि संस्थान तो जीवके हैं उन्हें पुद्गलका कैसे कहते ?

उत्तर—ये संस्थान शरीरके आकार हैं शरीर पौद्गलिक है चैतन्यभावसे भिन्न हैं इसलिये वे भी वास्तवमें पुद्गलके विभावव्यञ्जन पर्याय हैं।

प्रश्न ४६—भेद किसे कहते हैं ?

उत्तर—संयुक्त पदार्थके खण्ड होनेको भेद कहते हैं।

प्रश्न ४७– भेद कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर– घनखण्ड, द्रवखण्ड आदि अनेक प्रकारका भेद होता है। जैसे गेहूंका चूर्ण, घी का हिस्सा आदि।

प्रश्न ४८—तम किसे कहते हैं ?

उत्तर—देखनेमें बाधा डालने वाले अन्धकारको तम कहते हैं।

प्रश्न ४९—तम तो प्रकाशके अभावको कहते हैं, वह पुद्गलपर्याय कैसे हैं ?

उत्तर—प्रकाशको अन्धकारका अभाव बताकर प्रकाशका भी तो लोप किया जा सकता। दृष्टिका साधक और रोधक होनेसे एकको सद्भावरूप और एकको अभावरूप कहना

ठीक नहीं। दोनों ही सद्भावरूप हैं। जैसे प्रकाश स्कन्धके प्रदेशोंकी अवस्था है वैसे अन्धकार भी स्कन्धके प्रदेशोंकी अवस्था है।

प्रश्न ५०—छाया किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी पदार्थके निमित्तसे प्रकाशयुक्त अथवा स्कन्ध पदार्थपर प्रतिबिम्ब होने को छाया कहते हैं। जैसे वृक्षकी पृथ्वीपर छाया, दर्पणमें मनुष्यका प्रतिबिम्ब जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब आदि।

प्रश्न ५१—ये प्रतिबिम्ब वृक्ष, मनुष्य और चन्द्रके हैं, अतः उन्हींके पर्याय होना चाहिये ?

उत्तर—वृक्ष, मनुष्य, चन्द्र तो निमित्त मात्र हैं, ये प्रतिबिम्ब तो पृथ्वी दर्पण जलके पर्याय हैं, क्योंकि जो जिसके प्रदेशमें परिणमता है वह उसकी ही पर्याय होती है।

प्रश्न ५२— उद्योत किसे कहते हैं ?

उत्तर—अधिक उजाला उत्पन्न नहीं करने वाले विशिष्ट प्रकाशको उद्योत कहते हैं।

प्रश्न ५३—यह उद्योत किन पदार्थोंमें होता है ?

उत्तर—चन्द्रविमानमें, विशिष्ट रत्नोंमें जुगुनू आदि तिर्यंच जीवोंके शरीरमें उद्योत होता है। यह उद्योत भी रूप, रस, गन्ध और स्पर्शगुणका परिणमन नहीं है किन्तु पुद्गल द्रव्यकी द्रव्यपर्याय हैं।

प्रश्न ५४— आतप किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मूलमें तो शीतल हो, किन्तु अन्य पदार्थोंके उष्णता उत्पन्न होनेमें निमित्त हो उसे आतप कहते हैं।

प्रश्न ५५-- आतप किन पदार्थोंमें होता है ?

उत्तर-- सूर्यविमानमें, सूर्यकान्त आदि मणियोंमें यह आतप होता है। आतप जीवके कायोंमें से केवल पृथ्वीकायमें ही होता है। आतप भी रूप, रस, गन्ध और स्पर्शका परिणमन ही नहीं है किन्तु पुद्गलकी द्रव्यपर्याय है।

प्रश्न ५६—गाथोक्त १० पर्यायोंके अतिरिक्त पुद्गलकी अन्य भी द्रव्यपर्यायें होती हैं या नहीं ?

उत्तर-- ये १० पर्यायें तो मुख्यतासे बताई हैं इनके अतिरिक्त और भी द्रव्यपर्यायें हैं। इनकी पहिचान मुख्य यह है कि जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुणका परिणमन तो न हो और स्कन्ध प्रदेशोंमें परिणमन पाया जावे उन्हें पुद्गलकी द्रव्यपर्यायें जानना चाहिये। जैसे--रबड़का प्रसार, दूधसे दही होना, गाड़ीकी गति, मुट्ठीका बंधना आदि।

प्रश्न ५७— गुरु, लघु, कोमल, कठोर ये गुणपर्याय हैं या द्रव्य पर्याय हैं ?

उत्तर— वास्तवमें तो ये द्रव्यपर्यायें हैं किन्तु स्पर्शन इन्द्रियके विषय होनेसे इन्हें स्पर्शगुणके पर्यायरूप उपचारसे माना है।

प्रश्न ५८—प्रकाश भी चक्षुरिन्द्रियका विषय होनेसे रूप गुणका पर्याय माना जाना चाहिये ?

उत्तर— प्रकाशरूप गुण ही काला, पीला, नीला, सफेद इन पाँच पर्यायोंसे भिन्न है। प्रकाश निमित्तके सद्भावको पाकर बनता और नष्ट होता है किन्तु रूपकी पर्यायें इस तरह न बनतीं न नष्ट होती हैं। अतः प्रकाश द्रव्यपर्याय ही है।

प्रश्न ५६— स्कन्ध होनेपर क्या परमाणुकी स्वभावव्यंजन पर्यायका बिल्कुल अभाव हो जाता है ?

उत्तर— शुद्धनयसे याने स्वभावदृष्टिसे स्कन्धावस्थामें भी परमाणुके अन्तःस्वभाव-व्यंजनपर्याय है, किन्तु स्निग्धत्व रूक्षत्व विभावके कारण स्वास्थ्यभाव (अपनेमें ही रहे ऐसे भाव) से भ्रष्ट होकर परमाणु विभावव्यंजनपर्याय रूप हो जाते हैं। जैसे शुद्ध (स्वभाव) दृष्टिसे संसारावस्थामें भी अन्तजीवके स्वभावव्यंजनपर्याय (सिद्धस्वरूप) है, किन्तु रागद्वेष विभावके कारण स्वास्थ्यभावसे भ्रष्ट होकर मनुष्य, तिर्यञ्च आदि विभावव्यञ्जन पर्यायरूप हो रहा है।

प्रश्न ६०— इस गाथासे हमें किस शिक्षापर ध्यान ले जाना चाहिये ?

उत्तर— विभावव्यञ्जन पर्याय होनेपर भी उस पर्यायको गौण कर मात्र परमाणुपर लक्ष्य देकर वहाँ केवल शुद्धप्रदेशरूप परमाणुका ध्यान करना चाहिये और इसी प्रकार मनुष्यादि विभावव्यञ्जन पर्याय होनेपर भी उस पर्यायको गौण कर मात्र शुद्ध जीवास्तिकायपर लक्ष्य देकर वहां शुद्धजीवास्तिकायका ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार पुद्गल द्रव्यका वर्णन करके अब धर्मद्रव्यका वर्णन किया जाता है—

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

अन्वय— गइपरिणयाण पुग्गलजीवाण गमण सहयारी धम्मो। जह मच्छाणं तोयं। सो अच्छंता णेव णेई।

अर्थ—गमनमें परिणत पुद्गल और जीवोके जो गमनमें सहकारी निमित्त है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे जल मछलीके गमनमें सहकारी है। धर्मद्रव्य ठहरने वाले जीव या पुद्गलोंको कभी नहीं ले जाता है।

प्रश्न १—गमनसे यहां क्या तात्पर्य है ?

उत्तर— एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें चले जाना, यही गमनका तात्पर्य है। थोड़ा हिलना, गोल चलना, यथा कथंचित् मुड़ना आदि सब क्रियायें गमनमें अन्तर्गत हैं।

प्रश्न २— गमन क्रिया कितने द्रव्योंमें होती है ?

उत्तर—गतिक्रिया केवल जीव और पुद्गल इन दो जातिके द्रव्योंमें होती।

प्रश्न ३– धर्म, अधर्म, आकाश व कालमें गतिक्रिया क्यों नहीं होती है ?

उत्तर—जीव पुद्गलमें ही क्रियावती शक्ति है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य—इन चार द्रव्योंमें क्रियावती शक्ति नहीं है, अतः इनमें गति क्रिया नहीं हो सकती।

प्रश्न ४– धर्मद्रव्य स्वयं निष्क्रिय है वह दूसरोंकी गतिमें कैसे कारण होगा ?

उत्तर-- जैसे जल स्वयं न चलता हुआ भी मछलीके गमनमें सहकारी कारण है, वैसे धर्मद्रव्य भी स्वयं निष्क्रिय होकर जीव पुद्गलके गमनमें सहकारी कारण है।

प्रश्न ५—धर्मद्रव्य अमूर्त है उसका तो किसीसे संयोग भी नहीं हो सकता, फिर यह दूसरोंकी गतिमें कैसे कारण हो सकता है ?

उत्तर– जैसे सिद्धभगवान अमूर्त हैं तो भी वे "मैं सिद्ध समान अनन्त गुण स्वरूप हूं" इत्यादि भावनारूप सिद्धभक्ति करने वाले भव्य जीवोंके सिद्धगतिमें सहकारी कारण हैं, वैसे धर्मद्रव्य अमूर्त है तथापि अपने उपादान कारणसे चलने वाले जीव व पुद्गलोंके गमनमें सहकारी कारण है।

प्रश्न ६—धर्मद्रव्य गतिमें सहकारी कारण है इसका मर्म क्या है ?

उत्तर—कोई भी द्रव्य किसी भी अन्य द्रव्यकी परिणतिका कर्ता या प्रेरक नहीं होता। जो द्रव्य जिस योग्यता वाला है वह विशिष्ट निमित्तको पाकर स्वयं अपने परिणमनसे परिणमता है। इसी न्यायसे गमन क्रियामें परिणत जीव, पुद्गल धर्मद्रव्यको निमित्तमात्र पाकर स्वयं अपने उपादान कारणसे गतिक्रियारूप परिणम जाते हैं। धर्मद्रव्य किसीको प्रेरणा करके चलाता नहीं है। यही सहकारी कारणका भाव है।

प्रश्न ७—धर्मद्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—धर्मद्रव्य एक ही है और उसका परिमाण समस्त लोकप्रमाण है।

प्रश्न ८—धर्मद्रव्यमें कितने गुण हैं ?

उत्तर– धर्मद्रव्यमें अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनेक सामान्य गुण हैं और अमूर्तत्व निष्क्रियत्व आदि अनेक साधारण गुण हैं। धर्मद्रव्यमें असाधारण गुण गतिहेतुत्व है।

प्रश्न ९– सामान्य गुण न माननेपर क्या हानि है ?

उत्तर– सामान्य गुण न माननेपर वस्तुकी सत्त्व मात्र ही सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न १०—असाधारणगुण न माननेपर क्या हानि है ?

उत्तर– असाधारणगुण न माननेपर वस्तुकी अर्थक्रिया ही नहीं हो सकती अर्थात्

असाधारण गुण बिना वस्तु ही क्या रहेगी ?

प्रश्न ११– क्या सब द्रव्योंमें असाधारण गुण होते हैं ?

उत्तर– सभी द्रव्योंमें एक असाधारण स्वभाव (गुण) होता है ।

प्रश्न १२—जीवद्रव्यका असाधारण गुण कौन है ?

उत्तर—जीवद्रव्यका असाधारण गुण चैतन्य है । यह चैतन्य ज्ञान, दर्शन और आनन्द स्वरूप है ।

प्रश्न १३– पुद्गल द्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर– पुद्गलद्रव्यका असाधारण गुण मूर्तत्व है । यह मूर्तत्व, रूप, रस, गंध, स्पर्शमय है ।

प्रश्न १४—धर्मद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर—धर्मद्रव्यका असाधारण गुण गतिहेतुत्व है ।

प्रश्न १५-- अधर्मद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर—अधर्मद्रव्यका असाधारण गुण स्थितिहेतुत्व है ।

प्रश्न १६-- कालद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर– कालद्रव्यका असाधारण गुण परिणमनहेतुत्व है ।

प्रश्न १७– आकाशद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर–आकाशद्रव्यका असाधारण गुण अवगाहनहेतुत्व है ।

प्रश्न १८—धर्मद्रव्य परिणमनशील है या नहीं ?

उत्तर—धर्मद्रव्य परिणमनशील है, क्योंकि यह एक सत् है । प्रत्येक सत् परिणमनशील होते हैं, किन्तु धर्मद्रव्यका परिणमन केवल ज्ञानगम्य है । जैसे शुद्ध जीव (परमात्मा) का परिणमन केवल ज्ञानमय है । परिणमनशील होकर भी प्रत्येक द्रव्य नित्य ध्रुव होते हैं । यह धर्मद्रव्य भी नित्य ध्रुव है ।

प्रश्न १९—धर्मद्रव्य एक होकर सबके गमनमें सहकारी कारण कैसे हो सकता है ?

उत्तर—आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुंचनेका नाम गति है । यह गति एक स्वरूप है, अतः एकस्वरूप गति कार्यमें एक धर्मद्रव्य कारण होता है ।

प्रश्न २०—जिस स्थानका जीव पुद्गल चलता है क्या उस स्थानपर रहने वाले धर्मद्रव्यके प्रदेश गतिहेतु हैं या पूर्ण धर्मद्रव्य ?

उत्तर—पूर्ण धर्मद्रव्य गतिहेतु है । किसी भी द्रव्यकी यह परिस्थिति नहीं होती कि किसो द्रव्यकी क्रियामें किसी अन्य द्रव्यका कुछ भाग निमित्त कारण हो और कुछ न हो ।

प्रश्न २१– धर्मद्रव्य एकप्रदेशी हो और वह कहीं भी स्थित हो वह एक ही सब

जीव पुद्गलोंके गमनमें कारण क्यों न हो जाय ?

उत्तर—सभी साक्षात् निमित्तकारण एक क्षेत्रस्थित होते हैं। अतः धर्मद्रव्य लोक-लोकव्यापी ही जीव पुद्गलोंके गमनमें कारण है।

प्रश्न २२—कुम्भकार तो भिन्न क्षेत्रमें रहकर भी घड़ेका निमित्त कारण है ?

उत्तर—कुम्भकार मिट्टीके परिणमनका साक्षात् निमित्तकारण नहीं है किन्तु आश्रय-भूत निमित्तकारण है।

प्रश्न २३—साक्षात् निमित्तकारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—अन्तररहित अन्वयव्यतिरेकी कारणको साक्षात् निमित्तकारण कहते हैं। जैसे– सब द्रव्योंके परिणमन सामान्यका साक्षात् निमित्तकारण कालद्रव्य है, **तथा अवगाह** का निमित्तकारण नभद्रव्य है, जीव पुद्गलकी गतिका निमित्तकारण धर्मद्रव्य है, जीव पुद्गल की गतिनिवृत्तिका निमित्तकारण अधर्मद्रव्य है आदि।

प्रश्न २४– धर्मद्रव्य और धर्ममें क्या अन्तर है ?

उत्तर– धर्मद्रव्य तो एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो गतिमें उदासीन निमित्त कारण है और धर्म आत्माके स्वभावको व आत्मस्वभावके अवलम्बनसे प्रकट होने वाली परिणतिको कहते हैं।

प्रश्न २५–कारण तो प्रेरक ही होते हैं, फिर धर्मद्रव्यको उदासीन निमित्त कारण क्यों कहा ?

उत्तर– कोई भी कार्य किसी अन्यकी प्रेरणासे नहीं होता, किन्तु परिणमने वाला उपादान कारण अपनी योग्यताके कारण अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर स्वयं परिण-मता है।

प्रश्न २५—इस विषयका कोई दृष्टान्त है क्या ?

उत्तर– जैसे भव्य जीव निजशुद्धात्माकी अनुभूतिरूप निश्चय धर्मके कारण उत्तम संहनन, विशिष्ट तथा पुण्यरूप धर्मका सन्निधान रूप निमित्त कारण पाकर सिद्धगतिरूप परि-णमते हैं। जैसे मत्स्यके चलनेमें जल उदासीन निमित्त कारण है। वैसे जीव पुद्गलोंके चलने में धर्मद्रव्य उदासीन निमित्त कारण है।

इस प्रकार धर्मद्रव्यका वर्णन करके अब इस गाथामें अधर्मद्रव्यका वर्णन करते हैं—

ठाण जुदाण अधम्मो पुग्गल जीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

अन्वय– ठाणजुदाण पुग्गल जीवाण ठाणसहयारी अधम्मो। जह पहियाणं छाया। सो गच्छंता णेव धरई।

अर्थ– ठहरते हुये पुद्गल और जीवोंके ठहरनेमें सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। जैसे

मुसाफिरोंके ठहरनेमें छाया सहकारी कारण है। वह अधर्मद्रव्य गमन करते हुये जीव पुद्गलों को नहीं ठहराता है।

प्रश्न १-- ठहरनेसे यहाँ क्या तात्पर्य है ?

उत्तर-- गमन करके ठहराना यहाँ ठहरनेका तात्पर्य है।

प्रश्न २-- इस प्रकारका ठहरना कितने द्रव्योंमें होता ?

उत्तर--यह स्थिति केवल जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें होती क्योंकि गमनक्रिया भी इन ही दो द्रव्योंमें पाई जाती है।

प्रश्न ३-- अधर्मद्रव्य अमूर्त है वह स्थितिमें कैसे कारण बनता ?

उत्तर--जैसे सिद्धभगवान अमूर्त होकर भी "सिद्ध हूं, शुद्ध हूं, अनन्तज्ञानादिसम्पन्न हूं" इत्यादि सिद्धभक्तिमें ठहरते हुए भव्य जीवोंके स्वस्थितिमें बहिरङ्ग सहकारी कारण होते हैं वैसे अमूर्त होकर भी अधर्मद्रव्य ठहरते हुए जीव, पुद्गलोंके ठहरनेमें सहकारी कारण होता है।

प्रश्न ४-- अधर्मद्रव्य अप्रेरक है, वह कैसे जाते हुये जीव पुद्गलोंको ठहरा सकता ?

उत्तर--जैसे जाते हुये मुसाफिर वटछायाको निमित्त पाकर अपने ही भावसे और कारणसे ठहर जाते हैं वैसे जाते हुये जीव और पुद्गल अधर्मद्रव्यको निमित्त पाकर अपने ही उपादानकारणसे ठहर जाते हैं। छाया मुसाफिरोंको जबरदस्ती ठहराता नहीं है। अधर्मद्रव्य भी किसीको जबरदस्ती ठहराता नहीं है।

प्रश्न ५--अधर्मद्रव्यकी अन्य विशेषतायें क्या हैं ?

उत्तर-- अधर्मद्रव्यका असाधारण लक्षण स्थितिहेतुत्व है। शेष सभी विशेषतायें धर्मद्रव्यकी तरह हैं अर्थात् अधर्मद्रव्य एक है, लोकव्यापी है, अनन्तगुणात्मक है, निष्क्रिय है, परिणमनशील है, नित्य है आदि।

प्रश्न ६--अधर्मद्रव्यमें और अधर्ममें क्या अन्तर है ?

उत्तर--अधर्मद्रव्य एक स्वतन्त्र द्रव्य है। जो जीव व पुद्गलके ठहरनेमें सहकारी उदासीन कारण है और अधर्म आत्मस्वभावसे अन्य भावोंको आत्मा समझने व अनात्मामें उपयोग लगानेको कहते हैं।

प्रश्न ७--क्या अधर्मास्तिकाय बिना जीव, पुद्गल स्थित हो सकते हैं ?

उत्तर--नहीं, जैसे धर्मास्तिकाय बिना जीव, पुद्गल गति नहीं कर सकते वैसे अधर्मास्तिकाय बिना जीव, पुद्गल स्थित नहीं हो सकते।

प्रश्न ८--यदि ऐसा है तो धर्म, अधर्मद्रव्य प्रेरक व मुख्य कारण माने जाने चाहियें ?

उत्तर--धर्म, अधर्मद्रव्य गति, स्थितिके प्रेरक नहीं है और न ये मुख्य कारण हैं,

क्योंकि ये यदि प्रेरक या मुख्य कारण हो जायें तो इन दोनोंका कार्य मात्सर्यपूर्वक होना चाहिये तथा जो द्रव्य गति करे वह गति करे, जो ठहरे वह ठहरे ही आदि अनेक दोष आते हैं।

प्रश्न ९– उदासीन कारण माननेपर यह अव्यवस्था क्यों नहीं होती ?

उत्तर—जीव, पुद्गल निश्चयसे अपने परिणमनसे गति, स्थिति करते हैं, हाँ यह बात अवश्य है कि वे धर्म अधर्म द्रव्यको निमित्त पाकर गति स्थिति करते हैं, अतः दोष नहीं है।

प्रश्न १०– धर्म, अधर्मद्रव्य क्या उपादेय तत्त्व हैं या हेय तत्त्व ?

उत्तर—शुद्धात्मतत्त्वसे भिन्न होनेसे ये भी हेय तत्त्व हैं।

इस प्रकार अधर्मद्रव्यका वर्णन करके आकाशद्रव्यका वर्णन करते हैं—

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासंमिदि दुविहं ॥१९॥

अन्वय—जीवादीणं अवगासदाणजोग्गं आयासं वियाण, लोगागासं अलोगागासं दुविहं इदि जेण्हं।

अर्थ-- जीवादि सर्वद्रव्योंको अवकाश देनेमें जो समर्थ है उसे आकाश जानो। वह आकाश लोकाकाश और अलोकाकाश इस तरह २ प्रकारका है। वह सब जिनेन्द्रदेवका सिद्धान्त है।

प्रश्न १-- आकाश द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर– आकाश एक अखण्ड द्रव्य है।

प्रश्न २-- अखण्ड आकाशके लोकाकाश व अलोकाकाश ये भेद कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर– ये भेद उपचारसे हैं—जितने आकाशदेशमें सर्वद्रव्य रहते हैं उतनेको लोकाकाश कहते हैं और उससे बाहरके आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। आकाशमें स्वयं भेद नहीं है।

प्रश्न ३—आकाशमें कितने गुण हैं ?

उत्तर-- आकाशमें असाधारण गुण तो अवगाहनाहेतुत्व है, इसके अतिरिक्त अस्तित्वादि अनन्तगुण भी हैं। यह द्रव्य भी निष्क्रिय और सर्वव्यापी है। इसका कहीं भी अन्त नहीं है।

प्रश्न ४– यदि सब द्रव्य आकाशमें रहते हैं तो सब आकाशमात्र रह जायगा ?

उत्तर-- निश्चयसे तो प्रत्येक द्रव्य अपने खुदके प्रदेशोंमें रहता है। बाह्यसम्बन्ध दृष्टिसे ये आकाशक्षेत्रमें ही पाये जाते हैं अतः व्यवहारसे सब द्रव्य आकाशमें रहते हैं ऐसा कहा

जाता है।

प्रश्न ५– इस व्यवहारका प्रयोजन क्या है ?

उत्तर--इस व्यवहारका प्रयोजन हेय, उपादेय वस्तुओंके परिचयका व्यवहार चलाना है।

प्रश्न ६-- आकाशके वर्णनसे यह प्रयोजन कैसे सिद्ध होता है ?

उत्तर-- यदि आकाशमें वस्तुओंके रहनेका वर्णन न चले तो मोक्ष कहाँ, स्वर्ग कहाँ, नरक कहाँ आदि सुगमतया कैसे समझाये जा सकते ? जैसे निश्चयनयसे सहजशुद्ध चैतन्यरससे परिपूर्ण निजप्रदेशोंमें ही सिद्धप्रभु विराजते हैं, फिर भी व्यवहारनयसे सिद्धभगवान मोक्षशिलामें स्थित हैं, ऐसा समझाना कैसे बनेगा ?

प्रश्न ७-- मोक्षस्थान कहाँ है ?

उत्तर– निश्चयनयसे तो जिन प्रदेशोंमें आत्मा कर्मरहित हुआ वही मोक्षस्थान है, व्यवहारनयसे कर्मरहित आत्माओंके ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण लोकाग्रमें पहुंच जानेसे लोकाग्रभाग मोक्षस्थान बताया गया।

प्रश्न ८-- मनुष्य कहाँ रहता है ?

उत्तर—मनुष्यपर्याय विजातीयपर्याय होनेसे अनन्त पुद्गलोंके प्रदेशोंका व आत्मप्रदेशों का बद्धस्पृष्ट समुदाय है। सो वहाँ निश्चयसे प्रत्येक परमाणु अपने-अपने प्रदेशमें है और आत्मा अपने प्रदेशमें है। व्यवहारनयसे मनुष्य ढाई द्वीपके भीतर जो जहाँ है वहाँ रहता है।

प्रश्न ९—यह कौनसा व्यवहार है ?

उत्तर—यह उपचरित असद्भूतव्यवहार है। पर्यायरूपसे वर्णन है, अतः व्यवहार है, सहजस्वभावमें ऐसा सद्भूत नहीं है, अतः असद्भूत है। दूसरेके नामसे उपचार किया है, अतः उपचरित है।

प्रश्न १०—आकाश जीव, पुद्गलोंकी गति, स्थितिका भी कारण है, फिर केवल अवगाहनहेतुत्व ही आकाशमें क्यों कहा ?

उत्तर– आकाश गति स्थितिका कारण नहीं है, क्योंकि यदि आकाश गति स्थितिका कारण हो जाता तो लोक अलोकका विभाजन नहीं रहता। जो गति करता वह असीम क्षेत्र तक गति ही करता रहता व लोकाकाशके बाहर कहीं स्थित भी हो जाता। इस प्रकार आकाशद्रव्यका सामान्य वर्णन करके उसका विशेष वर्णन करते हैं—

धम्मा धम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

अन्वय—जावदिये आयासे धम्मा धम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति सो लोगो त्तोत परदो अलोगुत्तो।

अर्थ— जितने आकाशमें धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य हैं वह तो लोकाकाश है और उससे परे अलोकाकाश कहा है।

प्रश्न १—लोकाकाशका क्या आकार है ?

उत्तर—सात पुरुष एकके पोछे एक इस प्रकार खड़े हों और कमरपर हाथ रखे व पैर पसारे खड़े हों। जो आकार उस समय वहाँ है वैसा आकार लोकाकाशका है।

प्रश्न २—लोकाकाशका परिमाण कितना है ?

उत्तर—सर्वलोकाकाशका परिमाण ३४३ घनराजूप्रमाण है। जैसे कि उदाहरणमें उस सप्तपुरुषाकारका परिमाण करीब ३४३ घन विलस्त है।

प्रश्न ३—लोकाकाशके कितने भाग हैं ?

उत्तर—लोकाकाशके ३ भाग हैं– (१) अधोलोक, (२) मध्यलोक, (३) ऊर्ध्वलोक।

प्रश्न ४—अधोलोकका परिमाण क्या है ?

उत्तर— अधोलोकका परिमाण १९६ घनराजू है। जैसे दृष्टान्तमें कमरसे नीचे तक सब १९६ घन विलस्त है।

प्रश्न ५— मध्यलोकका परिमाण कितना है ?

उत्तर— मध्यलोकका परिमाण १ वर्गराजू मात्र है।

प्रश्न ६— ऊर्ध्वलोकका परिमाण क्या है ?

उत्तर— ऊर्ध्वलोकका परिमाण १४७ घनराजू है। जैसे दृष्टान्तमें कमरके ऊपर गर्दन तक १४७ घन विलस्त है।

प्रश्न ७— लोकाकाशमें समस्त प्रदेश कितने हैं ?

उत्तर— लोकाकाशमें समस्त प्रदेश असंख्यात हैं।

प्रश्न ८—लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें अनन्तानन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, असंख्यात कालद्रव्य इस प्रकार अनन्तानन्त द्रव्य कैसे समा जाते हैं ?

उत्तर— जैसे एक दीपके प्रकाशमें अनेक दीप प्रकाश समा जाते हैं वैसे आकाशमें व अन्य द्रव्योंमें भी अनेक द्रव्य समा जानेकी योग्यता है, अतः अनेक द्रव्योंका लोकाकाशमें अवगाह हो जाता है।

प्रश्न ९— यदि आकाशमें ऐसी अवगाहनशक्ति न मानी जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर— यदि आकाशमें अवगाहनशक्ति न हो तो लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक परमाणु ही ठहरेंगे अन्य परमाणु होंगे ही नहीं, ऐसी स्थितिमें जीवके विभाव परिणाम नहीं हो सकते, क्योंकि एक या संख्यात परमाणु विभावमें निमित्त नहीं होते।

प्रश्न १०– अलोकाकाशमें तो कालद्रव्य है नहीं, फिर अलोकाकाशका परिणमन कैसे हो जाता है ?

उत्तर– लोकाकाशमें स्थित कालद्रव्यके निमित्तसे समस्त आकाशका परिणमन हो जाता है।

प्रश्न ११– लोकाकाशमें रहने वाले कालद्रव्यका निमित्त पाकर लोकाकाशका ही परिणमन होना चाहिये ?

उत्तर– आकाश एक अखण्ड द्रव्य है, इसलिये आकाशमें जो एक परिणमन होता वह पूरे आकाशमें होता है। जैसे एक कीलीपर चाक घूमता है तो निमित्तभूत कीली तो चाक के बीचके भागके क्षेत्रमें ही है सो कीलीपर जितना चाकभाग है केवल उतना ही भाग नहीं घूमता, किन्तु पूरा चाक घूमता है।

प्रश्न १२– इस आकाशद्रव्यके परिज्ञानसे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर– यद्यपि व्यवहारदृष्टिसे देखनेपर यह सत्य है कि मेरा (आत्माका) वास आकाशप्रदेशोंमें है तथापि निश्चयदृष्टिसे मेरा वास आत्मप्रदेशोंमें ही है। इसके २ हेतु हैं– (१) अनादिसे ही तो आत्मा है और अनादिसे हो आकाश है। ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि आत्मा कहीं अन्यत्र था और फिर आकाशमें रखा गया। (२) आत्मा स्वयं सत् है, अपने गुण पर्यायरूप है, आकाश भी स्वयं सत् है वह अपने गुणपर्यायरूप है, इस कारण कोई भी द्रव्य किसी भी द्रव्यका आधार नही है। अतः मैं आकाशद्रव्यसे दृष्टि हटाकर केवल निज आत्मतत्त्वको देखूं यह शिक्षा हमें ग्रहण करनी चाहिये।

इस प्रकार आकाशद्रव्यका वर्णन करके अब कालद्रव्यका प्ररूपण करते हैं—

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

अन्वय– जो परिणामादीलक्खो दव्व परिवट्टरूवो सो ववहारो कालो हवेइ य वट्टणलक्खो परमट्ठो।

अर्थ—जो परिणाम, आदि द्वारा जाना गया व द्रव्योंके परिवर्तनसे जिसकी मुद्रा है वह तो व्यवहार काल है और जिसका वर्तना ही लक्षण है वह निश्चयकाल है।

प्रश्न १– व्यवहारकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर—व्यवहारमें घंटा, दिन आदिका जो व्यवहार किया जाता है उसे व्यवहारकाल कहते है।

प्रश्न २—व्यवहारकालके कितने भेद हैं ?

उत्तर– समय, आवली, सेकिंड, मिनट, घंटा, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष आदि

अनेक भेद हैं।

प्रश्न ३– परिणाम आदि शब्दसे क्या क्या ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर– परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्वका ग्रहण करना चाहिये। व्यवहारकाल इन लक्षणोंसे जाना जाता है।

प्रश्न ४– परिणाम किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्योंके परिणमनोंको परिणाम कहते हैं। द्रव्य एक अवस्थासे दूसरी अवस्था धारण करता है। इन परिणमनोंसे व्यवहारकालका निश्चय होता है।

प्रश्न ५–क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर– एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रपर पहुंचने तथा दूधका खलबलाना आदि हलन चलनको क्रिया कहते हैं। इन दो स्वरूपोंके कारण क्रिया दो प्रकारकी हो जाती है– (१) देशान्तर-चलनरूप, (२) परिस्पंदरूप।

प्रश्न ६—परत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—जेठेपन या प्राचीनताको परत्व कहते हैं। जैसे अमुक बालक २ वर्ष जेठा है आदि।

प्रश्न ७—अपरत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– लहुरेपन या अर्वाचीनता याने नवीनताको अपरत्व कहते। जैसे अमुक बालक २ वर्ष लहुरा है याने छोटा है आदि।

प्रश्न ८—वर्तना किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदार्थके परिणमनमें सहकारी कारण होनेको वर्तना कहते हैं।

प्रश्न ९-- निश्चयकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर—समय, मिनट आदि जिसकी पर्यायें होती हैं उस द्रव्यको निश्चयकाल कहते हैं। यह काल द्रव्य समस्त पदार्थोंके परिणमनका सहकारी निमित्तकारण है, यही वर्तना काल द्रव्यका लक्षण है।

प्रश्न १०—क्या वर्तना व्यवहारकालका लक्षण नहीं है ?

उत्तर—वर्तना व्यवहारकालका भी लक्षण है, उस वर्तनाका अर्थ है एक समय मात्र का परिणमना। इससे समय नामका अनुपचरित व्यवहारकाल जाना जाता है।

प्रश्न ११—समयका कितना परिमाण है ?

उत्तर– एक परमाणु मंद गतिसे एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुंचे उसमें जो काल व्यतीत होता है वह समय है। अथवा नेत्रकी पलक गिरनेमें जितना काल लगता है वह असंख्यात आवली प्रमाण है और एक आवलीमें असंख्यात समय होते हैं सो आवलीके असं-

ख्यातवें भागमें से १ भागको समय कहते हैं।

प्रश्न १२—पदार्थोंका परिणमन यदि कालद्रव्यके आधीन है तो परिणमन पदार्थोंका स्वभाव न ठहरेगा ?

उत्तर– पदार्थका परिणमना तो पदार्थका स्वभाव ही है इसीको द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं। कालद्रव्य तो परिणमते हुए पदार्थोंके परिणमनमें मात्र निमित्त कारण है।

प्रश्न १३—यदि परमाणुको एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुंचनेमें एक समय हो जाता है तब परमाणुको १४ राजूप्रमाण असंख्यात प्रदेशोंके उल्लंघनमें असंख्यात समय लगते होंगे ?

उत्तर– तीव्र गतिसे गमन करने वाला परमाणु एक समयमें १४ राजू गमन करता है। मन्द गतिसे गमनमें एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुंचना भी एक समयमें होता है। जैसे कोई पुरुष मन्दी चालसे २०० मील २० दिनमें जाता है वही विद्या सिद्ध होनेपर तीव्र गति से २०० मील १ दिनमें भी जा सकता है तो यह टाइम कहीं २० दिनका थोड़े ही कहलावेगा इसी प्रकार परमाणु मन्द गति एक प्रदेश तक १ समयमें जाता है और तीव्र गतिसे असंख्यात प्रदेश सीधा (१४ राजू) एक समयमें जाता है।

प्रश्न १४– समय तो सत्य है किन्तु निश्चयकालद्रव्य कुछ प्रतीत नहीं होता ?

उत्तर—यदि समय ही समय मानते तो समय तो ध्रुव है नहीं, वह उत्पन्न होता और दूसरे क्षण नष्ट होता अतः समय पर्याय सिद्ध हुई। अब यह समय नामक पर्याय किस द्रव्यकी है। जिस द्रव्यकी है उसीका नाम कालद्रव्य कहा गया है।

प्रश्न १५– कालद्रव्य तो अन्य सब पदार्थोंकी परिणतिका निमित्त कारण है— कालद्रव्यकी परिणतिका कौन निमित्त कारण है ?

उत्तर– कालद्रव्यकी परिणतिका निमित्त कारण वही कालद्रव्य है जेसे कि सब पदार्थोंके अवगाहका कारण आकाश है और आकाशके अवगाहका कारण आकाश स्वयं है।

प्रश्न १६—समयका उपादानकारण परमाणुका गमन है काल नहीं ?

उत्तर—समयका उपादानकारण यदि परमाणु है तो परमाणुके रूप, रसादि समयमें होना चाहिये सो तो है नहीं। इस कारण समयका उपादानकारण परमाणु नहीं है।

प्रश्न १७– मिनटका उपादानकारण तो घड़ीके मिनट वाले कांटेका एक चक्कर लगाना तो प्रत्यक्ष दीखता ?

उत्तर– घड़ीका कांटा मिनटका कारण नहीं है, कांटेकी वह क्रिया तो उतने समयका संकेत करने वाली है। यदि कांटेकी पर्याय मिनट होता तो मिनटमें भी कांटेका रूप, रस आदि पाया जाना चाहिये, क्योंकि कार्य उपादानकारणके सदृश देखा जाता है।

प्रश्न १८—समयादि व्यवहारकालके निमित्तकारण क्या क्या हो सकते हैं ?

उत्तर—परमाणुका मन्द गतिसे एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर जाना, नेत्रकी पलक उघाड़ना छिद्र वाले बर्तनसे जल या रेतका गिरना, सूर्यका उदय, अस्त होना आदि अनेक पुद्गलोंके परिणमन व्यवहारकालके निमित्त कारण हैं।

प्रश्न १९—उक्त पुद्गल परिणमन क्या कारक कारण है या ज्ञापक कारण है ?

उत्तर— उक्त पुद्गल परिणमन समयादिके ज्ञापक कारण हैं, क्योंकि वास्तवमें तो कालपरिणमनमें कालद्रव्य ही उपादानकारण है और कालद्रव्य ही निमित्त कारण है।

प्रश्न २०— इस तरह तो जीवादिके परिणमनमें कालद्रव्य भी ज्ञापक कारण होना चाहिये ?

उत्तर—काल परिणमन सदृश है तथा कालद्रव्यके ज्ञापकताकी कोई व्याप्ति भी नहीं बनती, अतः वह जीवादिपरिणमनका ज्ञापक कारण नहीं बन सकता।

प्रश्न २१—इस गाथासे हमें क्या ध्येय स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तर—यद्यपि काललब्धिको निमित्त पाकर भी निजशुद्धात्माके सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान आचरणरूप मोक्षमार्ग पाता है, किन्तु वहाँ आत्मा ही उपादानकारण और उपादेय मानना चाहिये, काल बाह्यतत्त्व होनेसे हेय ही है।

इस प्रकार कालद्रव्यका स्वरूप बताकर अब उनकी संख्या व स्थान बताते हैं—

लोयायास पदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥

अन्वय—इक्किक्के लोयायास पदेसे रयणाणं रासी इव इक्का हु ठिया कालाणु ते असंखदव्वाणि।

अर्थ—एक-एक लोकाकाशके प्रदेशपर रत्नोंकी राशिके समान भिन्न-भिन्न एक-एक स्थित कालद्रव्य हैं और वे असंख्यात हैं।

प्रश्न १— कालद्रव्यको कालाणु क्यों कहते हैं ?

उत्तर—कालद्रव्य एकप्रदेशी है अथवा परमाणु मात्रके प्रमाणका है, इसलिये इसे कालाणु कहते हैं।

प्रश्न २— अणु कितने तरहसे होते हैं ?

उत्तर— अणु चार प्रकारसे देखे जाते हैं— (१) द्रव्याणु, (२) क्षेत्राणु, (३) कालाणु और भावाणु।

प्रश्न ३— द्रव्याणु किसे कहते हैं ?

उत्तर— जो द्रव्य याने पिण्डरूपसे अणु हो वह द्रव्याणु है। द्रव्याणु परमाणुको कहते

हैं। यह स्वतन्त्र द्रव्य है।

प्रश्न ४— क्षेत्राणु किसे कहते हैं ?

उत्तर— जो क्षेत्रमें अणु हो वह क्षेत्राणु है। क्षेत्राणु आकाशके एक प्रदेशको कहते हैं। यह स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है, किन्तु आकाशद्रव्यका कल्पित देशांश है।

प्रश्न ५— कालाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर— अणुप्रमाण कालद्रव्यको कालाणु कहते हैं। यह निश्चिय कालद्रव्य है। समयमें जो सबसे अणु हो उसे भी कालाणु कहते हैं यह समय नामकी पर्याय है।

प्रश्न ६— भावाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो भावरूपसे अणु हो, सूक्ष्म हो वह भावाणु है भावाणुसे तात्पर्य यहाँ चैतन्यसे है, अभेदविवक्षासे भावाणुसे जीवका भी ग्रहण होता है।

प्रश्न ७— कालद्रव्य एक ही माना जावे और उसके प्रदेश असंख्यात मान लिये जावें तो धर्मद्रव्यकी तरह इसकी व्यवस्था हो जावे।

उत्तर— पदार्थोंके परिणमन नाना प्रकारके होते हैं, उनके निमित्तभूत कालद्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर स्थित हैं। कालद्रव्य असंख्यात ही हैं।

प्रश्न ८— क्या कालद्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है ?

उत्तर—कालद्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है। नवीन समयके पर्याय रूपसे तो उत्पाद होता है और पूर्व समय पर्यायके व्यय रूपसे व्यय होता है और उत्पाद व्ययके आधारभूत कालद्रव्यके रूपसे ध्रौव्य है।

प्रश्न ९— कालद्रव्य न मानकर केवल घड़ी घंटा समयादि व्यवहारकाल ही माना जावे तो इसमें क्या आपत्ति है ?

उत्तर— व्यवहारकाल पर्याय है क्योंकि वह व्यतिरेकी है और क्षणिक है। उस व्यवहार कालका आधारभूत कोई द्रव्य है ही। इस आधारभूत द्रव्यका नाम कालद्रव्य रखा है।

प्रश्न १०—वास्तवमें तो कालद्रव्यका पर्याय समय ही है, समय समूहोंमें कल्पना करके मिनट घण्टा आदि मान लिये, वे कैसे पर्याय हो सकते ?

उत्तर— वास्तवमें तो पर्याय समय ही है, अतः व्यवहारकाल भी वस्तुतः समय ही है तथापि वास्तविक समयोंके समूह वाले मिनट घण्टा आदिका व्यवहार उपयोगी होनेसे उसे सबको भी व्यवहारकाल कहा है। इस प्रकार कालद्रव्यका वर्णन करके षड्द्रव्योंमें से जो जो अस्तिकाय हैं उनका वर्णन किया जाता है—

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

अन्वय– एवं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं छब्भेयं उत्तं, दु कालविजुत्तं पंच अत्थिकाया णायव्वा ।

अर्थ– इस प्रकार एक जीव और ५ अजीवोंके भेदसे यह सब द्रव्य ६ प्रकार वाला कहा गया है, परन्तु कालद्रव्यको छोड़कर शेष ५ द्रव्य अस्तिकाय जानना चाहिये ।

प्रश्न १– द्रव्य वास्तवमें क्या ६ ही होते हैं ?

उत्तर—द्रव्य तो वास्तवमें अनन्तानन्त हैं क्योंकि स्वरूपसत्त्व सबका भिन्न-भिन्न ही है । इसका प्रमाण स्पष्ट है कि प्रत्येक पदार्थका चतुष्टय अपने आपमें है । एक द्रव्यका चतुष्टय अन्य द्रव्यमें नहीं पहुंचता । फिर भी जो जो द्रव्य असाधारणगुणसे भी पूर्ण समान हैं उनकी एक-एक जाति मानकर द्रव्यको ६ प्रकारकी कहा है ।

प्रश्न २—चतुष्टयसे तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारको यहाँ चतुष्टय शब्दसे कहा गया है ।

प्रश्न ३—द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वयं परिपूर्ण सत् है, एक पिण्ड है उसे द्रव्य कहते हैं । अथवा क्षेत्र-काल भावको एक समुदायमें द्रव्य कहते हैं ।

प्रश्न ४—क्षेत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तुके प्रदेशोंको क्षेत्र कहते हैं । प्रत्येक वस्तुका कोई आकार होता है वह क्षेत्रसे ही होता है । इसका अपरनाम देशांश भी है ।

प्रश्न ५—काल किसे कहते हैं ?

उत्तर—परिणमन याने पर्यायको काल कहते हैं । प्रत्येक वस्तु किसी न किसी पर्याय (हालत) में होती है । पर्यायका अपरनाम गुणांश भी है ।

प्रश्न ६—भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदार्थके स्वभावको भाव कहते हैं । शक्ति, गुण, शील, धर्म, ये इसके पर्यायवाची नाम हैं ।

प्रश्न ७—कोई पदार्थ किसी अन्यके चतुष्टयरूप नहीं है इसका स्पष्ट भाव क्या ?

उत्तर– एक पदार्थ दूसरे पदार्थके द्रव्यरूप नहीं है अर्थात् प्रत्येक पदार्थका स्वरूप-सत्त्व जुदा जुदा है । प्रदेश भी जुदे जुदे हैं यह क्षेत्रको भिन्नता है । कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थकी परिणतिसे नहीं परिणमता यह कालकी भिन्नता है । कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ के गुणरूप नहीं होता है यह भावकी भिन्नता है । इस तरह अनेकान्तात्मक वस्तुमें रहने वाले अनेक धर्म स्याद्वादसे सिद्ध हो जाते हैं ।

प्रश्न ८– अनेकान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें अनेक अन्त याने धर्म हों उसे अनेकान्त कहते हैं। इस सिद्धान्तका नाम भी अनेकान्त है। इसको प्रकट करनेकी पद्धति स्याद्वाद है।

प्रश्न ९— स्याद्वाद किसे कहते हैं ?

उत्तर— अनेकान्तात्मक वस्तुके धर्मोंको स्यात् अर्थात् अपेक्षासे वाद याने कहना स्याद्वाद है। स्याद्वादका दूसरा नाम अपेक्षावाद भी है।

प्रश्न १०— सप्रतिपक्ष एक धर्मको स्याद्वाद कितने प्रकारसे कह सकता है ?

उत्तर— सप्रतिपक्ष एक धर्मको स्याद्वाद सात प्रकारसे कह सकता है। उस धर्मके विषयमें अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्ति नास्ति, अस्ति नास्ति अवक्तव्य। इसे नयसप्तभङ्गी कहते हैं।

प्रश्न ११— इन सातों भङ्गोंका क्या भाव है ?

उत्तर—इन भङ्गोंको एक धर्मका आश्रय करके घटावें। जैसे नित्य धर्मका प्रकरण बनाकर देखा तो वस्तु स्यात् नित्य है, वस्तु स्यात् नित्य नहीं (अनित्य) है, वस्तु स्यात् अवक्तव्य है, वस्तु स्यात् नित्य अवक्तव्य है, वस्तु स्यात् अनित्य अवक्तव्य है, वस्तु स्यात् नित्य और अनित्य है, वस्तु स्यात् नित्य अनित्य अवक्तव्य है।

प्रश्न १२— इन भङ्गोंकी अपेक्षायें क्या-क्या हैं ?

उत्तर—वस्तु द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है, परमार्थसे युगपद्दृष्टिसे अवक्तव्य है, द्रव्य व युगपद्दृष्टिसे नित्य अवक्तव्य है, पर्याय व युगपद्दृष्टिसे अनित्य अवक्तव्य है, द्रव्य व पर्यायदृष्टिसे नित्य अनित्य है, द्रव्य व पर्यायदृष्टि एवं युगपद्दृष्टिसे नित्य अनित्य अवक्तव्य है।

प्रश्न १३— स्यात् शब्दका अर्थ क्या "शायद" नहीं होता ?

उत्तर—स्यात् शब्दका अर्थ "शायद होता ही नहीं, स्यात् शब्द अपेक्षा अर्थमें निपातित है।

प्रश्न १४— अस्तिकाय ५ ही क्यों होते हैं ?

उत्तर—अस्तिकाय सम्बन्धी सब विवरण आगे २४वीं गाथामें किया जा रहा है, उससे जानना चाहिये।

इस प्रकार द्रव्यजाति और अस्तिकाय जातिकी संख्या बताकर अब अस्तिकायका निरुक्त्यर्थ सहित विवरण करते हैं—

संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

अन्वय—जदो एदे संति तेण अत्थित्ति जिणवरा भणंति, जम्हा काया इव बहुदेसा

तम्हा काया, य अत्थिकाया।

अर्थ– जिस कारण ये पूर्वोक्त पांच द्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश हैं याने विद्यमान हैं उस कारण इन्हें "अस्ति" ऐसा जिनेन्द्रदेव प्रकट करते हैं और जिस कारण से ये कायके समान बहुत प्रदेश वाले हैं, इस कारण इन्हें काय कहते हैं। ये पाँचों पदार्थ अस्ति और काय हैं, इसलिये इन्हें अस्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न १– सत्का क्या लक्षण है ?

उत्तर– उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य करि युक्त हो उसे सत् कहते हैं। उक्त पाँचों पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त हैं, इसी कारण 'अस्ति' संज्ञा उनकी युक्त है।

प्रश्न २—उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—नवीन पर्याय (वर्तमान पर्याय) के होनेको उत्पाद कहते हैं।

प्रश्न ३– व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर– पूर्वपर्यायके अभाव होनेको व्यय कहते हैं ?

प्रश्न ४– जो है उसका नाश तो नहीं होता, फिर पूर्व पर्यायका अभाव कैसे हो गया ?

उत्तर—पर्याय सत् नहीं है, किन्तु सत् द्रव्यकी एक हालत है। पूर्वपर्यायके व्ययका तात्पर्य यह है कि द्रव्य पूर्व क्षणमें एक हालत (परिणमन) में था अब वह वर्तमानमें अन्य परिणमनरूप परिणम गया। द्रव्यका परिणमन स्वभाव है। वर्तमान परिणमन पूर्व परिणमन नहीं है, अतः पूर्वपर्यायका व्यय हुआ।

प्रश्न ५– ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनादिसे अनन्तकाल तक पर्यायोंसे परिणमते रहने याने बने रहनेको ध्रौव्य कहते हैं।

प्रश्न ६– काल भी तो सत् है उसे "अस्ति" में क्यों ग्रहण नहीं किया ?

उत्तर– यहां अस्तिकायका प्रकरण है, केवल 'अस्ति' का नहीं है। कालद्रव्य 'अस्ति' तो है, किन्तु काय नहीं है, अतः पांचों द्रव्योंसे अस्तिकाय बनानेमें "अस्ति" घटाया है।

प्रश्न ७– उत्पादव्ययध्रौव्य भिन्न समयमें होते हैं या एक ही साथ ?

उत्तर– ये तीनों एक ही साथ याने एक ही समयमें होते हैं, क्योंकि वर्तमान परिणमन है उसे ही नवीन पर्यायकी दृष्टिसे उत्पाद कहते हैं और उसे ही पूर्वपर्यायका व्यय कहते हैं और ध्रौव्य तो सदा रहनेका नाम है ही। अनन्त पर्यायोंमें जो एक सामान्य चला ही जाता है उस एक सामान्य स्वभावका ध्रौव्य निरन्तर है।

प्रश्न ८– काय शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—'चीयते इति कायः' जो संगृहीत हो उसे काय कहते हैं।

प्रश्न ९– क्या द्रव्योंके प्रदेश संगृहीत हुए हैं ?

उत्तर—द्रव्योंके प्रदेश संगृहीत नहीं हुए हैं, अनादिसे द्रव्य सहज स्वप्रदेशमय है। किन्तु संगृहीत आहारवर्गणाओंके पुञ्जरूप काय याने शरीरकी तरह द्रव्योंमें भी बहुप्रदेश हैं, अतः इन पाँचों द्रव्योंको भी काय कहते हैं।

प्रश्न १०-- क्या शुद्ध द्रव्यमें भी बहुप्रदेशीपना रहता है ?

उत्तर– धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य व आकाशद्रव्य—ये तीन अस्तिकाय तो सदा शुद्ध ही रहते हैं और बहुप्रदेशी हैं। पुद्गलस्कन्धमें से किसी पुद्गलद्रव्यके शुद्ध होनेपर भी याने केवल परमाणु रह जानेपर भी शक्तिकी अपेक्षा बहुप्रदेशीपना है। जीव द्रव्यके शुद्ध होनेपर याने द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म इन सबसे मुक्त होनेपर भी वह बहुप्रदेशी रहता है।

प्रश्न ११-- अशुद्ध द्रव्यके शुद्ध हो जानेपर सत्ता कैसे रहती ?

उत्तर– पुद्गल स्कन्धमें से पुद्गल परमाणुके शुद्ध होनेपर भी और संसारी जीवके संसारसे मुक्त होनेपर भी सत्ता रहती है, क्योंकि उनमें उत्पादव्ययध्रौव्य निरंतर रहता ही है।

प्रश्न १२– परमाणुमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर—स्कन्ध रूपकी विभावव्यञ्जन पर्यायका व्यय शुद्ध परमाणुरूप स्वभावव्यञ्जन पर्यायका उत्पाद शुद्ध परमाणुमें है और द्रव्यत्व अथवा प्रदेश वही है सो ध्रौव्य है, इस तरह शुद्धपरमाणुमें उत्पादव्ययध्रौव्य है। यह व्यञ्जनपर्यायकी अपेक्षा उत्पादव्ययध्रौव्य हुआ।

प्रश्न १३—शुद्ध परमाणुमें अर्थ पर्यायकी अपेक्षा उत्पादव्ययध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर—शुद्ध परमाणुमें वर्तमान रूप, रसादि गुणोंकी पर्यायका उत्पाद व पूर्वकी रूप, रसादि पर्यायका व्यय और परमाणु वही है सो ध्रौव्य इस प्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य है।

प्रश्न १४—शुद्ध जीवमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर—मनुष्यगतिरूप विभावव्यञ्जन पर्यायका व्यय व सिद्धपर्यायरूप स्वभाव व्यञ्जनपर्यायका उत्पाद और जीव प्रदेश वही है अथवा द्रव्यत्व वही है सो ध्रौव्य इस प्रकार शुद्ध जीवमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। यह व्यञ्जनपर्यायकी अपेक्षा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है।

प्रश्न १५– अर्थपर्यायकी अपेक्षा शुद्ध जीवमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर– परमसमाधिरूप कारणसमयसारका व्यय और अनन्तज्ञान, दर्शन, आनन्द विकास रूप कार्यसमयसारका उत्पाद व जीवद्रव्य वही है सो यही है ध्रौव्य, इस प्रकार शुद्ध जीवमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य है।

प्रश्न १६-- यह तो मुक्त होनेके समयका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है, क्या मुक्त होनेपर भविष्यत्कालोंमें भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सिद्ध जीवोंमें होता है ?

उत्तर-- वर्तमान केवलज्ञान आदि शुद्ध विकासका उत्पाद व पूर्वक्षणीय केवलज्ञान आदि शुद्ध विकासका व्यय व द्रव्य वही, इस प्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य रहता है। सिद्ध जीवों में शुद्ध विकासरूप शुद्ध परिणमन ही प्रतिसमय नव नव होता रहता है।

प्रश्न १७-- किस द्रव्यमें कितने प्रदेश हैं ?

उत्तर-- प्रदेशोंकी संख्याका वर्णन आगेकी गाथामें किया जा रहा है, सो उस गाथा से जानना चाहिये।

अब किस द्रव्यके कितने प्रदेश हैं, यह वर्णन करते हैं—

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

अन्वय—जीवे धम्माधम्मे असंखा, आयासे अणंत, मुत्ते तिविह पदेसा होंति। कालस्सेगो तेण सो काओ णत्थि।

अर्थ-- जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्यमें असंख्यात प्रदेश हैं, आकाशमें अनन्त प्रदेश हैं और मूर्त (पुद्गल) द्रव्यमें संख्यात, असंख्यात व अनन्त ऐसे तीनों प्रकारके प्रदेश होते हैं। काल द्रव्यके एक ही प्रदेश है इस कारण यह अस्तिकाय नहीं है।

प्रश्न १-- जीव, धर्म, अधर्मद्रव्यमें बराबरके असंख्यात प्रदेश हैं या कम अधिक ?

उत्तर-- इन तीनों द्रव्योंमें बराबरके प्रमाणके प्रदेश हैं, कम या अधिक नहीं। यहाँ जीवसे एक जीव ग्रहण करना चाहिये। प्रत्येक जीवमें असंख्यात प्रदेश होते हैं।

प्रश्न २-- ये असंख्यात प्रदेश ऊनी संख्याके हैं या पूरी संख्याके ?

उत्तर—ये असंख्यात पूरी संख्यापर पूरे होते हैं २--४--६ आदि संख्याको जिनमें २ का भाग जाकर नीचे कुछ शेष न बचे ऐसी परिमाणको पूरी संख्या वाला परिमाण कहते हैं।

प्रश्न ३-- जीवद्रव्यमें असंख्यात प्रदेश कैसे विदित हो सकते हैं ?

उत्तर-- जीवद्रव्य लोकपूरक समुद्घातमें पूरा फैल पाता है। इस समुद्घातमें जीव लोक के सब प्रदेशोंमें ही रहता वहाँ लोकके एक-एक प्रदेशपर जीवका एक-एक प्रदेश हैं और लोक के प्रदेश असंख्यात हैं, यों जीव द्रव्य भी असंख्यात प्रदेशी है। निश्चयनयसे जीव अखण्ड प्रदेशी है। उसमें प्रदेश संख्याका विभाग व्यवहारनयसे किया है।

प्रश्न ४-- धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यमें असंख्यात प्रदेश क्यों होते हैं ?

उत्तर-- धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य केवल लोकाकाशमें सबमें व्याप्त हैं, अतः ये दोनों द्रव्य

भी असंख्यात प्रदेश वाले हैं।

प्रश्न ५—आकाशमें अनन्त प्रदेश क्यों हैं ?

उत्तर—आकाश निःसीम है इसका कहीं भी अन्त नहीं, अतः आकाशके अनन्त प्रदेश निर्बाध सिद्ध हैं।

प्रश्न ६ पुद्गलमें तीन प्रकारके परिमाणके प्रदेश क्यों हैं ?

उत्तर-- पुद्गल स्कन्ध कोई संख्यात परमाणुवोंका है कोई असंख्यात परमाणुवोंका है, कोई अनन्त परमाणुवोंका है, अतः पुद्गलको तीन प्रकारके परिमाण वाले प्रदेशयुक्त कहा है। इसके प्रदेश परिमाण, पूर्वोक्त तीन द्रव्योंकी तरह आकाश क्षेत्र घेरनेकी अपेक्षासे नहीं लगाना चाहिये।

प्रश्न ७— पुद्गलके प्रदेश आकाशक्षेत्रकी अपेक्षासे क्यों नही ?

उत्तर—यदि आकाश क्षेत्र घेरनेकी अपेक्षासे पुद्गल प्रदेश माने जावें तो केवल असंख्यात प्रदेशी ही पुद्गल स्कन्ध समा सकते हैं अन्य कोई स्कन्ध भी नहीं होंगे। सो ऐसा प्रत्यक्षविरुद्ध हैं और ऐसा माननेपर जीव द्रव्य अशुद्ध भी सिद्ध नहीं हो सकता।

प्रश्न ८— पुद्गल स्कन्ध तो पर्याय है वास्तविक पुद्गल द्रव्यमें कितने प्रदेश हैं ?

उत्तर—वास्तवमें पुद्गलद्रव्य परमाणुका नाम है उसमें प्रदेश एक ही होता है, किन्तु उसमें स्कंधरूपसे परिणति हो जानेका सामर्थ्य है अतः वह प्रदेशी माना है। यह तीन प्रकारसे प्रदेशपरिमाण पुद्गल स्कन्धोंका कहा है।

प्रश्न ९—जीवद्रव्य जब लोकभरमें फैले तभी क्या असंख्यात प्रदेशमें रहता है, अन्य समय क्या कम क्षेत्रमें रहता है ?

उत्तर—जीवद्रव्य सदा असंख्यात प्रदेशोंमें रहता है। छोटी अवगाहनाके देहमें भी हो तो वह देह भी आकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें विस्तृत होता है। सारा लोक भी असंख्यात प्रदेश वाला है और छोटी देहावगाहना जितने क्षेत्रको घेरता है वह भी असंख्यात प्रदेश प्रमाण है। असंख्यात असंख्यात प्रकारके होते हैं।

प्रश्न १०— कालद्रव्यके एक प्रदेशमात्रपनेकी सिद्धि कैसे है ?

उत्तर—यदि कालद्रव्य एक प्रदेशमात्र न हो तो समय पर्यायकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। एक द्रव्याणु याने परमाणु एक कालाणुसे दूसरे कालाणुपर मन्दगतिसे गमन करे वहां समय पर्यायकी प्रसिद्धि है। यदि कालद्रव्य बहुप्रदेशी होता तो एक समयकी निष्पत्ति नहीं होती।

अब एक प्रदेशी होनेपर भी पुद्गल परमाणुके अस्तिकायपना सिद्ध करते हैं—

एयपदेसोवि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

अन्वय– एयपदेसोवि अणू णाणाखंधप्पदेसदो बहुदेसो उवयारा होदि, तेण य सव्वण्हू उवयारा काओ भणंति।

अर्थ— एक प्रदेश वाला होनेपर भी अनेक स्कन्धोंके प्रदेशोंकी दृष्टिसे बहुप्रदेशी उपचारसे होता है और इस ही कारण सर्वज्ञ देव परमाणुको उपचारसे अस्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न १—परमाणुका आकार क्या है?

उत्तर—परमाणु एक प्रदेशमात्र है, अतः उसका व्यक्त आकार तो नहीं है, अव्यक्त आकार है। वह आकार षट्कोण है। इसी कारण सब ओरसे परमाणुवोंका बन्ध होनेपर स्कन्धमें छिद्र या अन्तर नहीं होता।

प्रश्न २—परमाणु कितने प्रकारका है?

उत्तर—परमाणु व्यञ्जन पर्यायसे तो एक ही प्रकारका है किन्तु गुणपर्यायकी अपेक्षा २०० प्रकारके होते हैं।

प्रश्न ३—परमाणु २०० प्रकारके किस तरह होते हैं?

उत्तर—परमाणुमें रूपकी पाँच पर्यायोंमें से कोई एक, रसकी पांच पर्यायोंमें से कोई एक, गन्धकी दो पर्यायोंमें से कोई एक, स्पर्शकी ४ पर्यायोंमें से २ याने स्निग्ध रूक्षमें एक व शीत उष्णमें एक। इस प्रकार ५ × ५ × २ × ४ = २०० प्रकार हो जाते।

प्रश्न ४—परमाणु शुद्ध होकर फिर अशुद्ध (स्कन्ध रूपमें) क्यों हो जाता है?

उत्तर– परमाणुके अशुद्ध होनेका कारण स्निग्ध रूक्ष परिणमन है। शुद्ध होने पर अर्थात् केवल एक परमाणु रह जानेपर भी स्निग्ध या रूक्ष परिणमन रहता ही है, अतः स्निग्ध या रूक्ष परिणमन रूप कारणके होनेसे स्कन्ध रूप कार्यका होना याने अशुद्ध होना युक्त हो जाता है।

प्रश्न ५– शुद्ध जीव फिर अशुद्ध क्यों नहीं होता है?

उत्तर—जीवके अशुद्ध होनेका कारण रागद्वेष है। यह रागद्वेष चारित्र गुणका विकार है। जीवके शुद्ध होनेपर रागद्वेषका अत्यन्त अभाव (क्षय) हो जाता है और चारित्र गुणका स्वभावरूप स्वच्छ परिणमन हो जाता है। इस तरह अशुद्ध होनेके कारणभूत राग द्वेषके न पाये जानेसे शुद्ध जीव फिर अशुद्ध नहीं हो सकता।

प्रश्न ६—किस व्यवहारनयसे परमाणुको अस्तिकाय कहा गया है?

उत्तर—अनुपचरित अशुद्ध सद्भूत शक्तिरूप व्यवहारनयसे परमाणुको अस्तिकाय कहा जाता है, क्योंकि परमाणु अशुद्ध स्कन्धरूप होनेकी अनुपचरित शक्ति रखता है।

प्रश्न ७– द्वयणुक, त्र्यणुक आदि स्कन्ध आकाशके कितने प्रदेशोंमें रहते हैं ?

उत्तर-- एक, दो आदि स्कन्ध प्रदेशों आदिमें कितने भी कममें रह सकते हैं। इसका कारण परमाणुवोंका परमाणुमें अप्रतिघात शक्तिका होना है।

प्रश्न ८– परमाणु कैसे उत्पन्न होता है ?

उत्तर-- परमाणु मनुष्य आदि किसीके चेष्टासे उत्पन्न नहीं होता है। वह तो स्वयं स्कन्धसे अलग होकर परमाणु रह जाता है। परमाणुकी उत्पत्ति भेदसे ही होती है अर्थात् स्कन्धसे अलग होनेसे ही होती है।

प्रश्न ९– स्कन्ध कैसे बनता है ?

उत्तर—स्कन्ध भेदसे भी बनता है और संघात अर्थात् मेलसे भी बनता है। कुछ स्कंधांशोंका भेद होनेसे और कुछ स्कंधांशोंका संघात होनेसे अर्थात् भेदसंघातसे भी बनता है।

प्रश्न १०—स्कन्ध भी भेदसे बनता है तो क्या परमाणु और इस स्कन्धके बननेका एक ही उपाय है ?

उत्तर– परमाणु बननेका भेद तो अन्तिम भेद है, परन्तु स्कन्ध बननेका भेद अन्तिम नहीं अर्थात् वहाँ अनेक परमाणुवोंके स्कन्धका भेद होनेपर भी अनेक परमाणुवोंका स्कन्ध रहता है। जैसे ५०० परमाणुवोंके स्कन्धका ऐसा भाग हो जाय कि एक स्कन्धांश ३०० परमाणुओंका रह जाय व दूसरा स्कन्ध २०० परमाणुवोंका रह जाय इत्यादि।

प्रश्न ११– इस परमाणुको जानकर हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—जैसे एक परमाणु निरुपद्रव है उसके साथ अन्य परमाणुओंका संयोग बंध होनेसे उसे नाना स्थितियोंमें गुजरना पड़ता है। इसी तरह मैं भी एक रहूं तो निरुपद्रव हूं। परद्रव्यके संयोग, बन्ध उपयोगसे ही अनेक योनियोंमें गुजरना पड़ता है। अतः उपद्रवसे निवृत्त होनेके लिये अपने एकत्वका ध्यान करना चाहिये।

अब प्रदेशका लक्षण बताते हैं—

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

अन्वय—जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं खु तं सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं पदेसं जाणे।

अर्थ—जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणुके द्वारा अवष्टब्ध याने रोका जाता है, घेरा जाता है निश्चयसे उसे सब परमाणुवोंको स्थान देनेमें समर्थ प्रदेश जानो।

प्रश्न १– अखण्ड आकाशमें प्रदेशविभाग करना कैसे बन सकता है ?

उत्तर—अखण्ड आकाशका भाव यह है कि यह एक द्रव्य है, है निःसीम विस्तृत।

परन्तु यह बताओ कि एक पुरुषके दोनों हाथके अवस्थानका क्षेत्र भिन्न है या वही एक है। एक तो है नहीं, प्रत्यक्ष ही मालूम होता। भिन्न है, तो यही तात्पर्य हुआ कि अविभागी आकाश द्रव्यमें विभागकल्पना बन गई।

प्रश्न २—आकाशके छोटेसे क्षेत्रपर कितने द्रव्य रह सकते हैं ?

उत्तर– अंगुलके असंख्यातवें भाग क्षेत्रपर अनन्त तो जीव और उससे अनन्तानन्त गुणे पुद्गल व असंख्यात कालद्रव्य रह जाते हैं। धर्म, अधर्म तो लोकव्यापी है ही।

प्रश्न ३—आकाशके एक प्रदेशपर कितने द्रव्य रह सकते हैं ?

उत्तर—आकाशके एक प्रदेशपर अनन्त परमाणुके पुञ्जरूप सूक्ष्मस्कन्ध व अनन्त परमाणु ठहर सकते हैं।

प्रश्न ४– फिर पुद्गलके एक परमाणुसे ही प्रदेशका भाव क्यों बताया ?

उत्तर—सूक्ष्मस्कन्ध परमाणुमात्र प्रदेशमें अवगाह करे प्रदेशमें आ जाय, इस कारण कितना भी सूक्ष्मस्कन्ध हो उससे प्रदेशका भाव निर्दोष नहीं होता। एक परमाणु एक प्रदेशसे अधिक स्थान कभी घेर ही नहीं सकता। अतः अविभागी पुद्गलाणुसे ही प्रदेशका भाव बताया गया।

प्रश्न ५—पुद्गलाणुके साथ अविभागी विशेषण क्यों दिया ?

उत्तर– यद्यपि पुद्गलाणु अविभागी ही याने अविभाज्य ही होता है तथापि सूक्ष्म-स्कन्धोंको भी अणु शब्दसे कहनेका व्यवहार लोकमें पाया जाता है। अतः अविभागी विशेषण पुद्गलाणुके साथ यहाँ लगाया है।

प्रश्न ६– आकाशमें अनन्त प्रदेश तो हैं, किन्तु वे पूरी संख्यामें हैं या ऊनी संख्यामें ?

उत्तर– आकाशके प्रदेश पूरी संख्यामें हैं।

प्रश्न ७– अलोकाकाशमें तो पुद्गल है ही नहीं तब तो वहां प्रदेश न होना चाहिये ?

उत्तर—लोकाकाशमें भी पुद्गल परमाणु है इस कारण प्रदेश हो, ऐसी बात नहीं है। पुद्गल परमाणुसे तो प्रदेशका भाव बताया है। अलोकाकाशमें पुद्गल परमाणु नहीं हैं तब भी प्रदेश विभागकी कल्पना यहांकी तरह हो जाती है।

प्रश्न ८—अखण्डप्रदेशीको अनन्तप्रदेशी माननेमें तो विरोध आता है ?

उत्तर—आकाशक्षेत्रकी अभेददृष्टिसे जाननेपर वह अखण्डप्रदेशी है और भेददृष्टिसे जाननेपर वह अनन्तप्रदेशी है।

प्रश्न ९—आकाशके किस भागमें लोकाकाश है ?

उत्तर—आकाशके ठीक मध्यभागमें लोकाकाश है, सारे आकाशमें यह एक ही ब्रह्मांड है, इसलिये आकाशके मध्यमें ही ब्रह्माण्ड (लोकाकाश) सिद्ध होता है। इस लोकाकाशके सर्व

और अनन्त प्रदेशोंमें आकाश ही आकाश है ।

प्रश्न १०-- आकाशमें अनंत प्रदेश हैं, यह कैसे जाना जाय ?

उत्तर—आकाशके समस्त प्रदेशोंसे भी अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद वाले केवलज्ञान में यह जाना गया और दिव्यध्वनिसे प्रकट हुआ । अतः अनंत प्रदेश हैं, यह निःसंदेह प्रतीतिमें लाना चाहिये ।

प्रश्न ११—आकाशके अनन्त प्रदेशोंमें कोई युक्ति भी है ?

उत्तर—कल्पना करो कि किसी जगह आकाशका अन्त आ गया तो वहाँ कोई ठोस चीज आ गई कि पोल है । यदि ठोस चीज आ गई तो उसके बाद पोल ही होगी । यदि पोल है तो पोलसे तो आकाश संकेतित किया जाता है । आकाशका कहीं भी अंत नहीं आ सकता । इसलिये आकाशके अनन्त प्रदेश युक्तिसिद्ध भी हो जाते हैं ।

प्रश्न १२– प्रदेशका क्या आकार है ?

उत्तर—वस्तुतः तो प्रदेश ही क्या समस्त आकाश निराकार है, फिर जिस दृष्टिसे प्रदेश जाना गया उस दृष्टिसे विचारनेपर प्रदेश परमाणुके आकार वाला सिद्ध होता है । परमाणु यद्यपि निरवयव है तथापि उसमें अन्य परमाणुवोंके संयोगसे स्कन्धत्व हो सकता है, अतः अवयव है । परमाणु षट्कोण है । ऊपर नीचे व चारों दिशावोंमें संयुक्त परमाणुवोंका छिद्ररहित श्लेष होता है । उस परमाणुके सदृश आकाश प्रदेश भी षट्कोण है ।

इति श्री पूज्य मुनिवर नेमिचन्द्र सैद्धान्तिदेव द्वारा विरचित द्रव्यसंग्रहकी २७ गाथावों में चार अधिकारों द्वारा षट्द्रव्य पञ्च अस्तिकायका वर्णन करने वाले प्रथम व द्वितीय अधिकार समाप्त हुए ।

इसकी प्रश्नोत्तरी टीका प्रोफेसर श्री लक्ष्मीचन्द्र जी एम. एस-सी. जबलपुर निवासी के (जिनसे मैंने इङ्गलिशका अध्ययन किया) धार्मिक मननके हेतु हुई ।

—मनोहर वर्णी "सहजानन्द"

तृतीय अधिकार

आस्रवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ।।२८।।

अन्वय—जीवाजीवविसेसा जे सपुण्णपावा आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो तेवि समासेण पभणामो ।

अर्थ—जीव और अजीवके विशेष (भेद) जो पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा मोक्ष हैं उनको भी संक्षेपसे कहते हैं—

प्रश्न १-- ये आस्रवादिक जीव अजीवके क्या द्रव्यार्थिक दृष्टिसे भेद हैं ?

उत्तर– ये आस्रवादिक जीव और अजीवके पर्याय हैं । इसी कारण ये सातों दो-दो प्रकारके हो जाते हैं—(१) जीवपुण्य, (२) अजीवपुण्य । (१) जीवपाप, (२) अजीवपाप । (१) जीवास्रव, (२) अजीवास्रव । (१) जीवबंध, (२) अजीवबंध । (१) जीवसंवर, (२) अजीवसंवर । (१) जीवनिर्जरा, (२) अजीवनिर्जरा । (१) जीवमोक्ष, (२) अजीवमोक्ष ।

प्रश्न २– इनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—इन सब विशेषोंका स्वरूप विशेषरूपसे आगे गाथावोंमें कहा जायगा । इनका सामान्यस्वरूप यहाँ जान लेना चाहिये ।

प्रश्न ३—पुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—शुभ आस्रवको पुण्य कहते हैं ।

प्रश्न ४– पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर—अशुभ आस्रवको पाप कहते हैं ।

प्रश्न ५– आस्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर—बाह्य तत्त्वके आनेको आस्रव कहते हैं ।

प्रश्न ६—बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर– बंधनेको बन्ध कहते हैं ।

प्रश्न ७—संवर किसे कहते हैं ?

उत्तर– बाह्य तत्त्वका आना रुक जाना संवर है ।

प्रश्न ८– निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—बाह्य तत्त्वके झड़ जानेको निर्जरा कहते हैं ।

प्रश्न ९—मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर– बाह्य तत्त्वके बिल्कुल छूट जानेको मोक्ष कहते हैं ।

प्रश्न १०– क्या जीवविशेष और अजीवविशेष बिल्कुल स्वतन्त्र हैं ?

उत्तर– ये जीवके विशेष अजीवके विशेषके निमित्तसे हैं और ये अजीवके विशेष जीवके विशेषके निमित्तसे हैं ।

अब उक्त विशेषोंमें से जीवास्रव और अजीवास्रवका स्वरूप कहते हैं----

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥२६॥

अन्वय-- अप्पणो जेण परिणामेण कम्मं आसवदि स जिणुत्तो भावासवो विण्णेयो, कम्मासवणं परो होदि ।

अर्थ-- आत्माके जिस परिणामसे कर्म आता है वह जिनेन्द्रदेवके द्वारा कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिये और जो कर्मोंका आना है उसे द्रव्यास्रव जानना चाहिये ।

प्रश्न १-- किन परिणामोंसे कर्म आते हैं ?

उत्तर-- शुद्ध आत्मतत्त्वके आश्रयके विपरीत जो भी परिणाम हैं वे पुद्गल कर्मोंके आस्रवके निमित्त कारण हैं ।

प्रश्न २—वे विपरीत परिणाम कौन हैं जिनके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव होता है ?

उत्तर– पांच इन्द्रियोंके विषय भोगनेके परिणाम क्रोध, मान, माया, मात्सर्य, लोभ, परवस्तुको अपना माननेका भाव, परपदार्थोंके जाननेका लक्ष्य आदि विपरीत परिणाम हैं ।

प्रश्न ३—जीवास्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर– भावास्रव जीवास्रवका ही अपर नाम है । जिन भावोंका नाम भावास्रव है वे जीवके ही परिणमन हैं, अतः वे जीवास्रव कहलाते हैं अर्थात् आत्माके जिन परिणामोंसे कर्म आते हैं उन्हें भावास्रव या जीवास्रव कहते हैं ।

प्रश्न ४– आत्मामें भावास्रव क्यों होते हैं ?

उत्तर– पूर्वबद्ध कर्मोंके उदयको निमित्त पाकर आत्मामें भावास्रव होते हैं ।

प्रश्न ५– भावास्रव और द्रव्यास्रवमें कारण कौन हैं और कार्य कौन हैं ?

उत्तर– वर्तमान भावास्रव नवीन द्रव्यास्रवका कारण है, नवीन द्रव्यास्रवका वर्तमान भावास्रवका कार्य है ।

प्रश्न ६—वर्तमान भावास्रवका कारण कौन है ?

उत्तर– वर्तमान भावास्रवका परम्पराकारण पूर्वका द्रव्यास्रव है ।

प्रश्न ७– एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ कार्यकारण भाव कैसे हो सकता है ?

उत्तर—जीवास्रव (भावास्रव) जीवका परिणमन है । अजीवास्रव (द्रव्यास्रव) अजीव

का परिणमन है, इस कारण इन दोनोंमें निश्चयसे कार्यकारण भाव नहीं है, किन्तु निमित्त-दृष्टिका कार्यकारण भाव है।

प्रश्न ८—द्रव्यास्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर—अकर्मत्वरूप कार्माणवर्गणावोंको कर्मस्वरूप होनेको द्रव्यास्रव कहते हैं ?

प्रश्न ९—अजीवास्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यास्रवका ही अपर नाम अजीवास्रव है। द्रव्यास्रव अजीव कार्माणवर्गणाओं का परिणमन है, अतः यह अजीवास्रव है।

प्रश्न १०— भावास्रवके स्वरूपमें कहे हुए "कम्मं आसवदि" से द्रव्यास्रवका स्वरूप जान लिया जाता है, फिर द्रव्यास्रवका स्वरूप पृथक् क्यों कहा है ?

उत्तर— यत् तत् शब्दसे जिसका ग्रहण हो उसीका वर्णन होता है। यहां "कम्मं आसवदि" शब्द भावास्रवकी सामर्थ्य बतानेको कहा।

प्रश्न ११— भावास्रव और द्रव्यास्रवके लक्षण जाननेसे लाभ क्या है ?

उत्तर— यदि भूतार्थनयसे भावास्रव व द्रव्यास्रवको समझा जाय तो सम्यग्दर्शनका लाभ होता है।

प्रश्न १२—भूतार्थनयसे ये आस्रव कैसे जाने जाते हैं ?

उत्तर— इस तत्त्वको अगली गाथाके प्रश्नोत्तरोंमें कहा जायगा, जिस अगली गाथामें भावास्रव व द्रव्यास्रवका स्वरूप बताया है।

अब भावास्रवका स्वरूप विशेषतासे कहते हैं—

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधावओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय चहु कमसो भेद हु पुव्वस्स ॥३०॥

अन्वय—अथ पुव्वस मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ विण्णेया। हु कमसो पण पण पणदस तिय चहु भेदा।

अर्थ—अब पूर्वके याने भावास्रवके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय, ये विशेष जानने चाहियें और उनके क्रमसे ५, ५, १५, ३ और ४ भेद भी जानने चाहियें।

प्रश्न १—मिथ्यात्वादिक भावास्रवके भेद है या पर्याय ?

उत्तर—भावास्रव स्वयं पर्याय है। मिथ्यात्वादिक भावास्रवके प्रकार (भेद) हैं। भावास्रव कितने तरहके होते हैं, इसका इसमें उत्तर है।

प्रश्न २—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मतत्त्वके प्रतिकूल अभिप्राय होने व अन्य शुद्ध द्रव्योंके प्रतिकूल अभिप्राय होनेको मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ३– मिथ्यात्वके ५ भेद कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—मिथ्यात्वके ५ भेद ये हैं—(१) एकान्तमिथ्यात्व, (२) विपरीतमिथ्यात्व, (३) संशयमिथ्यात्व, (४) विनयमिथ्यात्व और (५) अज्ञानमिथ्यात्व।

प्रश्न ४– एकान्तमिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनन्तधर्मात्मक वस्तुमें एक ही धर्म माननेके हठ या अभिप्रायको एकान्तमिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ५—विपरीतमिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– वस्तुस्वरूपके बिल्कुल विरुद्ध तत्त्वरूप वस्तुको मानना विपरीतमिथ्यात्व है।

प्रश्न ६—संशयमिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तुस्वरूपमें "यह इस भाँति है अथवा इस भाँति" इत्यादि रूपसे संशय करनेको संशयमिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न ७—विनयमिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– देव-कुदेव, शास्त्र-कुशास्त्र, गुरु-कुगुरु आदिका विचार किये बिना सबको समान भावसे मानना, विनय करना विनयमिथ्यात्व है।

प्रश्न ८– अज्ञानमिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तुस्वरूपका कुछ भी ज्ञान नहीं होना, हित-अहितका बिवेक न होना अज्ञानमिथ्यात्व है।

प्रश्न ९– अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– निज शुद्ध आत्मतत्त्वके आश्रयसे उत्पन्न होने वाले सहज आनन्दकी रति न होने व पापकार्योंमें प्रवृत्त होनेको या पापकार्योंसे विरत न होनेको अविरति कहते हैं।

प्रश्न १०– अविरतिके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अविरतिके सामान्यतया ५ भेद हैं और विशेषता १२ भेद हैं।

प्रश्न ११– अविरतिके ५ भेद कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर– हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहेच्छा– ये ५ अविरतिके भेद हैं।

प्रश्न १२– हिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर– कषायके द्वारा अपने व परके प्राणोंके घात करनेको हिंसा कहते हैं।

प्रश्न १३– परके घातमें अपनी हिंसा तो नहीं होती होगी ?

उत्तर—कषायवश दूसरोंके घात करनेमें अपनी हिंसा तो सुनिश्चित ही है। दूसरोंके घातका उद्यम भी किया जावे और उससे परजीवका चाहे घात न भी हो तो भी निजहिंसा तो ही हो जाती है।

प्रश्न १४– मरणसे अतिरिक्त भी कोई हिंसा है ?

उत्तर– निज हिंसा तो वास्तवमें कषायोंका होना है, इससे अपने चैतन्य प्राणका घात होता है। पर हिंसा चित्त दुखाना, संक्लेश कराना आदि भी है।

प्रश्न १५—हिंसाके कितने भेद हैं ?

उत्तर– हिंसाके ४ भेद हैं– (१) संकल्पी हिंसा, (२) उद्यमी हिंसा, (३) आरम्भी हिंसा, (४) विरोधी हिंसा।

प्रश्न १६—संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर– इरादतन किसी जीवके घात करनेको संकल्पी हिंसा कहते हैं।

प्रश्न १७– उद्यमी हिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर– सावधानी सहित व्यापार करते हुये भी जो हिंसा होती है वह उद्यमी हिंसा है।

प्रश्न १८– आरम्भी हिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर– रसोई आदि गृहके आरम्भोंको सावधानीसे यत्नाचारपूर्वक करते हुये भी जो हिंसा हो जाती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं।

प्रश्न १९-- विरोधी हिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर– किसी आक्रामक मनुष्य या तिर्यञ्चके द्वारा धन, जन, शील आदिके नाशका प्रसङ्ग आनेपर रक्षाके लिये उसके साथ प्रत्याक्रमण करनेपर जो हिंसा हो जाती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं।

प्रश्न २०– सुना है कि गृहस्थके केवल संकल्पी हिंसाकी हिंसा लगती है, शेष तीन हिंसायें नहीं लगतीं ?

उत्तर– हिंसा तो जो करेगा उसे सभी लगती हैं, किन्तु गृहस्थ अभी संकल्पी हिंसाका ही त्याग कर पाया है, शेष हिंसावोंका त्याग नहीं कर सका है।

प्रश्न २१– झूठ किसे कहते हैं ?

उत्तर—कषायवश असत्यसंभाषण करनेको झूठ कहते हैं।

प्रश्न २२– चोरी किसे कहते हैं ?

उत्तर– कषायवश दूसरोंकी चीज छुपकर अथवा ज्यादती करके हर लेनेको चोरी कहते हैं।

प्रश्न २३—कुशील किसे कहते हैं ?

उत्तर—ब्रह्मचर्यके घात करनेको कुशील कहते हैं।

*प्रश्न २४—निज स्त्रीके सिवाय शेष अन्य परस्त्री, वेश्यारमणके त्याग करनेको तो

शील कहते होंगे ?

उत्तर– वस्तुतः तो निजस्त्रीसेवन भी कुशील है, किन्तु परस्त्री, वेश्या आदि अन्य सब कुशीलोंके त्याग हो जानेसे स्वस्त्रीरमण होकर भी उस जीवके शील कहनेका व्यवहार है।

प्रश्न २५—परिग्रहेच्छा किसे कहते हैं ?

उत्तर—बाह्य अर्थोंकी इच्छा करनेको याने मूर्च्छाको परिग्रहेच्छा कहते हैं।

प्रश्न २६-- परिग्रह कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर—परिग्रह दो प्रकारके हैं—(१) आभ्यंतर और (२) बाह्य।

प्रश्न २७—आभ्यन्तरपरिग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो आत्माका ही परिणमन हो, किन्तु स्वभावरूप न हो, विकृत हो उसे आभ्यंतरपरिग्रह कहते हैं।

प्रश्न २८—आभ्यन्तरपरिग्रह कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर-- आभ्यन्तरपरिग्रह १४ प्रकारके हैं– (१) मोह, (२) क्रोध, (३) मान, (४) माया, (५) लोभ, (६) हास्य, (७) रति (८) अरति, (९) शोक, (१०) भय, (११) जुगुप्सा, (१२) पुरुषवेद, (१३) स्त्रीवेद, (१४) नपुंसकवेद।

प्रश्न २९-- बाह्यपरिग्रहकी कितनी जातियाँ हैं ?

उत्तर– बाह्यपरिग्रहकी दस जातियाँ हैं– (१) क्षेत्र याने खेत, (२) वस्तु याने मकान, (३) हिरण्य याने चाँदी, (४) सुवर्ण याने सोना, (५) धन– गाय, भैंस आदि पशु। (६) धान्य याने अन्न, (७) दासी याने नौकरानी, (८) दास याने नौकर, (९) कुप्य याने वस्त्रादि, (१०) भाण्ड याने बर्तन।

प्रश्न ३०-- आभ्यन्तरपरिग्रहकी इच्छा क्या होती है ?

उत्तर-- कषायमें रुचना, कषायमें बसना आदि आभ्यंतर परिग्रहेच्छा है।

प्रश्न ३१-- अविरतिके १२ भेद कौनसे हैं ?

उत्तर-- कायअविरति ६ और विषयअविरति ६, इस प्रकार अविरतिके १२ भेद हैं।

प्रश्न ३२– कायअविरतिके भेद कौनसे हैं ?

उत्तर– पृथ्वीकायअविरति, जलकायअविरति, अग्निकायअविरति, वायुकायअविरति, वनस्पतिकायअविरति और त्रसकायअविरति– ये ६ भेद कायअविरतिके हैं।

प्रश्न ३३– पृथ्वीकायअविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– पृथ्वीकायिक जीवोंकी विराधनाका त्याग न करना और खोदना, कूटना, फोड़ना, दाबना आदि प्रवृत्तियोंसे उनकी विराधना करनेको पृथ्वीकायअविरति कहते हैं।

प्रश्न ३४– जलकायअविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– जलकायिक जीवोंकी विराधनाका त्याग न करना और विलोरना, तपाना, गिराना, हिलाना आदि प्रवृत्तियोंसे उनकी विराधना करनेको जलकायअविरति कहते हैं।

प्रश्न ३५– अग्निकायअविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– अग्निकायिक जीवोंकी विराधनाका त्याग न करना और बुझाना, खुदेरना, बन्द करना आदि प्रवृत्तियोंसे उनकी विराधना करनेको अग्निकायअविरति कहते हैं।

प्रश्न ३६– वायुकायअविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—वायुकायिक जीवोंकी विराधनाका त्याग न करना और पंखा चलाना, रबड़ आदिमें बन्द करना आदि प्रवृत्तियोंसे उनकी विराधना करनेको वायुकायिकअविरति कहते हैं।

प्रश्न ३७—वनस्पतिकायिक अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– वनस्पतिकायिक जीवोंकी विराधनाका त्याग न करना और छेदना, काटना, पकाना, सुखाना आदि प्रवृत्तियोंसे उनकी विराधना करनेको वनस्पतिकायअविरति कहते हैं।

प्रश्न ३८—त्रसकायअविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी विराधनाका त्याग न करना और पीटना, दलना, मलना, मारना, चित्त दुखाना आदि प्रवृत्तियोंसे उनकी विराधना करना, सो त्रसकायअविरति है।

प्रश्न ३९– विषयअविरतिके भेद कौन-कौन हैं ?

उत्तर– स्पर्शनेन्द्रियविषय अविरति, रसनेन्द्रियविषय अविरति, घ्राणेन्द्रियविषय अविरति, चक्षुरिन्द्रियविषय अविरति, श्रोत्रेन्द्रियविषय अविरति और मनोविषय अविरति-- ये ६ भेद विषय अविरतिके हैं।

प्रश्न ४०-- स्पर्शनेन्द्रिय विषयविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– स्पर्शनेन्द्रियके विषयोंसे विरक्त नहीं होने और शीतस्पर्शन, उष्णस्पर्शन, कोमलस्पर्शन, मैथुन आदि क्रियाओंसे स्पर्शनेन्द्रियके बिषयमें प्रवृत्ति करनेको स्पर्शनेन्द्रियविषय अविरति कहते हैं।

प्रश्न ४१—रसनेन्द्रिय विषयाविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—रसनाइन्द्रियके विषयोंसे विरक्त न होने व मधुर नाना व्यञ्जन रसोंके भक्षण पानकी प्रवृत्ति करनेको रसनेन्द्रियविषय अविरति कहते हैं।

प्रश्न ४२– घ्राणेन्द्रियविषय अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर– घ्राणेन्द्रिय (नासिका) के विषयोंसे विरक्त न होने व सुहावने सुगन्धित पुष्प, इतर आदिके सूंघनेको घ्राणेन्द्रियविषय अविरति कहते हैं।

प्रश्न ४३-- चक्षुरिन्द्रियविषय अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—चक्षुरिन्द्रिय (नेत्र) के विषयोंसे विरक्त न होने व सुन्दर रूप, खेल, नाटक आदि देखनेकी प्रवृत्ति करनेको चक्षुरिन्द्रिय विषयाविरति कहते हैं।

प्रश्न ४४– श्रोत्रेन्द्रियविषयाविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—श्रोत्रेन्द्रियके विषयोंसे विरक्त न होने, सुहावने राग भरे शब्द, संगीत आदिके सुननेकी रतिको श्रोत्रेन्द्रिय विषयाविरति कहते हैं।

प्रश्न ४५– मनोविषय अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—मनके विषयोंसे विरक्त न होने व यश, कीर्ति, विषयचिन्तन आदि विषयोंमें होनेको मनोविषय अविरति कहते हैं।

प्रश्न ४६– इन्द्रिय व मनके अनिष्ट विषयोंमें अरति या द्वेष करनेको क्या अविरति नहीं कहते हैं ?

उत्तर—अनिष्ट विषयोंमें द्वेष करनेको भी अविरति कहते हैं। यह द्वेष भी इष्ट विषयोंमें रति होनेके कारण होता है, अतः इसका भी अंतर्भाव पूर्वोक्त लक्षणोंमें हो जाता है।

प्रश्न ४७—प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जाने व व्रतसाधनमें असावधानी करनेको प्रमाद कहते हैं।

प्रश्न ४८—प्रमादके कितने भेद हैं ?

उत्तर– प्रमादके मूल भेद १५ हैं— (१) स्त्रीकथा, (२) देशकथा, (३) भोजनकथा, (४) राजकथा ये चार विकथायें, (५) क्रोध, (६) मान, (७) माया, (८) लोभ ये चार कषायें, (९) स्पर्शनेन्द्रियवशता, (१०) रसनेन्द्रियवशता, (११) घ्राणेन्द्रियवशता, (१२) चक्षुरिन्द्रियवशता, (१३) श्रोत्रेन्द्रियवशता ये पांच इन्द्रियवशता तथा (१४) निद्रा व (१५) स्नेह।

प्रश्न ४९—स्त्रीकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर– स्त्रीके सुन्दर रूप, कला, चातुर्य आदिकी रागभरी कथा करनेको स्त्रीकथा कहते हैं।

प्रश्न ५०– देशकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर– देश विदेशोंके स्थान, महल, चाल-चलन, नीति आदिकी बातें करनेको देशकथा कहते हैं।

प्रश्न ५१– भोजनकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वादिष्ट भोजनका स्वाद, भोजन बनानेकी क्रिया, भोजनकी सामग्री आदि की चर्चा करनेको भोजनकथा कहते हैं।

प्रश्न ५२– राजकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर– राजावोंके व्यवहार, वैभव आदिकी चर्चा करनेको राजकथा कहते हैं।

प्रश्न ५३– क्रोधप्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर– क्रोधवश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योंमें शिथिलता करने को क्रोधप्रमाद कहते हैं।

प्रश्न ५४-- मानप्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मानवश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योंमें शिथिल होनेको व दोष लगानेको मानप्रमाद कहते हैं।

प्रश्न ५५– मायाप्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मायावश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योंमें दोष लगानेको मायाप्रमाद कहते हैं।

प्रश्न ५६-- लोभप्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर-- लोभकषायवश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योंमें दोष लगानेको लोभप्रमाद कहते हैं ?

प्रश्न ५७-- स्पर्शनेन्द्रियवशता किसे कहते हैं ?

उत्तर-- स्पर्शनेन्द्रियके विषयोंके चिन्तवन, प्रवर्तन आदिके आधीन होकर शुद्धात्मानुभवसे चलित होना स्पर्शनेन्द्रियवशता है।

प्रश्न ५८--रसनेन्द्रियवशता क्या है ?

उत्तर-- भोजनके स्वादमें रति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जाना, सो रसनेन्द्रियवशता है।

प्रश्न ५९-- घ्राणेन्द्रियवशता किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अच्छे गन्ध वाले पदार्थोंकी गन्धकी वाञ्छा व वृत्ति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जाना घ्राणेन्द्रियवशता है।

प्रश्न ६०-- चक्षुरिन्द्रियवशता किसे कहते हैं ?

उत्तर-- सुन्दर रूप, नाटक, कला आदिके देखनेमें रति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जानेको चक्षुरिन्द्रियवशता कहते हैं।

प्रश्न ६१—श्रोत्रेन्द्रियवशता किसे कहते हैं ?

उत्तर—रागोत्पादक शब्द, संगीत आदिके श्रवणमें रति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जानेको श्रोत्रेन्द्रियवशता कहते हैं।

प्रश्न ६२– निद्राप्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—निद्राके अंशके भी वशीभूत होकर शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जानेको निद्रा-

प्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ६३– स्नेहप्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर-- किसी पदार्थ या प्राणीविषयक स्नेह करके शुद्ध स्वरूपानुभवसे चलित हो जानेको स्नेहप्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ६४– प्रमादके संयोगी भेद कितने हैं ?

उत्तर-- प्रमादके संयोगी भेद ८० होते हैं-- ४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रियविषय— इनका परस्पर गुणा करनेसे ८० भेद हो जाते हैं । इन सब भेदोंके साथ निद्रा व स्नेह लगाते जाना चाहिये ।

प्रश्न ६५– कषायके कितने भेद हैं ?

उत्तर—कषायके मूल भेद ४ हैं—(१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ ।

प्रश्न ६६—कषायके उत्तरभेद कितने हैं ?

उत्तर– कषायके उत्तरभेद २५ हैं—(१–४) अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, (५--८) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (९--१२) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (१३--१६) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, (१७) हास्य, (१८) रति, (१९) अरति, (२०) शोक, (२१) भय, (२२) जुगुप्सा, (२३) पुरुषवेद, (२४) स्त्रीवेद और (२५) नपुंसकवेद ।

प्रश्न ६७– अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्वको बढ़ावे उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ६८– अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ देशसंयमका घात करे याने देशसंयमको प्रकट न होने दे उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ६९– प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो क्रोध, मान, माया, लोभ सकलसंयमका घात करे याने सकलसंयमको प्रकट न होने दे उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ७०—संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ यथाख्यात चारित्र (कषायके अभावमें होने वाला चारित्र) को घाते याने यथाख्यात चारित्रको प्रकट न होने दे उसे संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ७१– हास्य किसे कहते हैं ?

उत्तर— किसीकी किसी बातकी कमी देखकर हास्य मजाक करने व लौकिक सुख पाकर हंसनेको हास्य कहते हैं।

प्रश्न ७२—रति किसे कहते हैं ?

उत्तर—इष्ट विषय पाकर या सोचकर उसमें प्रीति करनेको रति कहते हैं।

प्रश्न ७३— अरति किसे कहते हैं ?

उत्तर— अनिष्ट विषयको पाकर या सोचकर उसमें अप्रीति करनेको अरति कहते हैं ?

प्रश्न ७४—शोक किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनिष्ट प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर या उसका चिन्तवन करनेपर रंज रूप परिणाम होनेको शोक कहते हैं।

प्रश्न ७५—भय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपनी कल्पनानुसार जिसे अहित माना है उससे शङ्का करने या डरनेको भय कहते हैं।

प्रश्न ७६— जुगुप्सा किसे कहते हैं ?

उत्तर—अरुचिकर विषयोंमें ग्लानि करनेको जुगुप्सा कहते हैं।

प्रश्न ७७— पुरुषवेद किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मीय गुण, पुरुषार्थके विकासमें उत्साह व यत्न करनेको पुरुषवेद कहते हैं अथवा स्त्रीके साथ रमण करनेके अभिलाष परिणामको पुरुषवेद कहते हैं।

प्रश्न ७८— स्त्रीवेद किसे कहते हैं ?

उत्तर— मायाचारकी मुख्यता, पुरुषार्थमें निरुत्साह, भयशीलता आदिक परिणामको अथवा पुरुषके साथ रमण करनेके अभिलाष परिणामको स्त्रीवेद कहते हैं।

प्रश्न ७९—नपुंसकवेद किसे कहते हैं ?

उत्तर— कायरता व कर्तव्यमें निरुत्साह आदि परिणामको अथवा पुरुष व स्त्री दोनों के साथ रमण करनेके परिणामको नपुंसकवेद कहते हैं।

प्रश्न ८०—योग किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्मप्रदेशके परिस्पंद होनेके कारणभूत प्रयत्न को योग कहते हैं।

प्रश्न ८१—योगके कितने भेद हैं ?

उत्तर—योगके मूल भेद ३ हैं— (१) मनोयोग, (२) वचनयोग, (३) काययोग। योगके उत्तर भेद १५ हैं— (१) सत्यमनोयोग, (२) असत्यमनोयोग, (३) उभयमनोयोग, (४) अनुभयमनोयोग, (५) सत्यवचनयोग, (६) असत्यवचनयोग, (७) उभयवचनयोग,

(८) अनुभयवचनयोग, (९) औदारिक काययोग, (१०) औदारिक मिश्रकाययोग, (११) वैक्रियककाययोग, (१२) वैक्रियकमिश्रकाययोग, (१३) आहारककाययोग, (१४) आहारकमिश्रकाययोग, (१५) कार्माणकाययोग।

प्रश्न ८२-- सत्यमनोयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- सत्यवचनके कारणभूत मनको सत्यमन कहते हैं और सत्यमनके निमित्तसे होने वाले योगको सत्यमनोयोग कहते हैं।

प्रश्न ८३-- असत्यमनोयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—असत्यवचनके कारणभूत मनको असत्यमन कहते हैं और असत्य मनके निमित्तसे होने वाले योगको असत्यमनोयोग कहते हैं।

प्रश्न ८४-- उभयमनोयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- उभय (सत्य व असत्य मिले हुये) वचनके कारणभूत मनको उभयमन कहते हैं और उभयमनके निमित्तसे होने वाले योगको उभयमनयोग कहते हैं।

प्रश्न ८५-- अनुभयमनोयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर--अनुभय अर्थात् जो न सत्य है और न असत्य, ऐसे वचनके कारणभूत मनको अनुभयमन कहते हैं और अनुभयमनके निमित्तसे होने वाले योगको अनुभयमनोयोग कहते हैं।

प्रश्न ८६-- सत्यवचनयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- सत्यवचनके निमित्तसे होने वाले योगको सत्यवचनयोग कहते हैं।

प्रश्न ८७—असत्यवचनयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- असत्य वचनके निमित्तसे होने वाले योगको असत्यवचनयोग कहते हैं।

प्रश्न ८८— उभयवचनयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—सत्य व असत्य मिश्रित वचनके निमित्तसे होने वाले योगको उभयवचनयोग कहते हैं।

प्रश्न ८९— अनुभयवचनयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर— अनुभय (जो न सत्य है और न असत्य है) वचनके निमित्तसे होने वाले योगको अनुभयवचनयोग कहते हैं।

प्रश्न ९०— दिव्यध्वनिके शब्द किस वचनरूप हैं ?

उत्तर-- दिव्यध्वनिके शब्द अनुभयवचन हैं और ये ही शब्द श्रोतावोंके कर्णमें प्रविष्ट होनेपर सत्यवचन कहलाते हैं।

प्रश्न ९१-- द्वीन्द्रियादि असंज्ञी जीवोंके शब्द किस वचनरूप हैं ?

उत्तर-- द्वीन्द्रियादि असंज्ञी जीवोंके शब्द अनुभयवचनरूप हैं।

प्रश्न ६२—संज्ञी जीवोंकी कौनसी भाषा अनुभयवचन रूप हैं ?

उत्तर– प्रश्न, आज्ञा, निमन्त्रण आदिके शब्द अनुभयवचन कहलाते हैं।

प्रश्न ६३– औदारिक काययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर– मनुष्य व तिर्यंचोंके शरीरको औदारिक काय कहते हैं, उस कायके निमित्तसे होने वाले योगको औदारिक काययोग कहते हैं।

प्रश्न ६४-- औदारिक मिश्रकाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर– औदारिक मिश्रकायके निमित्तसे होने वाले योगको औदारिक मिश्रकाययोग कहते हैं।

प्रश्न ६५– औदारिक मिश्रकाय कब होता है ?

उत्तर– कोई जीव मरकर मनुष्य या तिर्यंचगतिमें जावे। वहाँ जन्मस्थानपर पहुंचते ही यह जीव औदारिक वर्गणाओंको शरीररूपसे ग्रहण करने लगता है, किन्तु जब तक शरीर पर्याप्ति (शरीर बनानेकी शक्ति) पूर्ण नहीं हो पाती है तब तक उस शरीरको औदारिक मिश्रकाय कहते हैं। इस अपर्याप्त अवस्थानमें कार्माणवर्गणा और औदारिक वर्गणा दोनोंका सम्मिलित ग्रहण है।

प्रश्न ६६– वैक्रियककाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—देव व नारकियोंके शरीरको वैक्रियककाय कहते हैं, उसके निमित्तसे होने वाले योगको वैक्रियककाययोग कहते हैं।

प्रश्न ६७—वैक्रियकमिश्रकाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर– वैक्रियकमिश्रकायके निमित्तसे होने वाले योगको वैक्रियकमिश्रकाययोग कहते हैं।

प्रश्न ६८—वैक्रियकमिश्रकाय कब होता है ?

उत्तर—कोई मनुष्य या तिर्यञ्च मरकर देव या नरकगतिमें जावे। वहाँ जन्मस्थान पर पहुंचते ही जीव वैक्रियक वर्गणाओंको शरीर रूपसे ग्रहण करने लगता है। किन्तु जब तक शरीर पर्याप्ति (शरीर रचना होनेकी शक्ति) पूर्ण नहीं हो पाती तब तक इस शरीरको वैक्रियक मिश्रकाय कहते हैं। इस अपर्याप्ति अवस्था में कार्माणवर्गणा और वैक्रियकवर्गणा—इन दोनोंका सम्मिलित ग्रहण है।

प्रश्न ६९—आहारककाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर– प्रमत्तविरत (छठे) गुणस्थानवर्ती आहारकऋद्धिधारी मुनिके जब कोई सूक्ष्म तत्त्वमें शंका उत्पन्न होती है तब उनके मस्तकसे एक हाथका, धवल, पवित्र, अव्याघाती आहारक शरीर निकलता है। यह पुतला केवली या श्रुतकेवलीके दर्शन करके वापिस मस्तक

में समा जाता है। उस समय मुनिकी शंका निवृत्त हो जाती है। इस आहारक शरीरके निमित्तसे जो योग होता है उसे आहारककाययोग कहते हैं।

प्रश्न १००– आहारकमिश्रकाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—यह आहारकशरीर जब तक पूर्ण बन नहीं लेता तब तक आहारक मिश्रकाय कहलाता है। इस आहारकमिश्रकायके निमित्तसे होने वाले योगको आहारकमिश्रकाययोग कहते हैं। इस अपर्याप्ति अवस्थानमें औदारिक वर्गणा व आहारकवर्गणा दोनोंका सम्मिलित ग्रहण है।

प्रश्न १०१—कार्माणकाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—कोई जीव मरकर दूसरी गतिमें मोड़े वाली विग्रहगतिसे जावे तो उसके उस रास्तेमें केवल कार्माणकायके निमित्तसे होता है तथा समुद्घातकेवलीके प्रतर और लोकपूरण समुद्घातमें केवल कार्माणकायके निमित्तसे योग होता है। उस योगको कार्माणकाययोग कहते हैं।

प्रश्न १०२-- इन सब आस्रवोंके जाननेसे क्या लाभ है ?

उत्तर—ये सब आस्रव विभावरूप हैं, मैं मात्र चैतन्यस्वरूप हूं। इस प्रकार अन्तर जाननेसे भेदविज्ञान होता है तथा भूतार्थनयसे आस्रवका जानना निश्चय सम्यक्त्वकी उत्पत्ति का कारण है।

प्रश्न १०३– भूतार्थनय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- एकके गुणपर्यायोंको उस ही एककी ओर झुकते हुए उस एकमें ही जाननेको भूतार्थनय कहते हैं।

प्रश्न १०४– भूतार्थनयसे आस्रवका जानना किस प्रकार है ?

उत्तर—ये सब आस्रव पर्यायें हैं। किस द्रव्यकी हैं ? जीवद्रव्यकी। जीवद्रव्यके किस गुणकी हैं ? मिथ्यात्व तो सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुणकी पर्यायें हैं और योग योगशक्तिकी पर्यायें हैं, शेष सब चारित्रगुणकी पर्यायें हैं। इस प्रकार द्रव्य, गुण, पर्यायोंको यथार्थ जानकर एकत्वकी ओर उपयोग जावे, इस प्रकार जानना भूतार्थनयका जानना होता है। जैसे, यह लोभ पर्याय चारित्रगुणकी है, इस बोधमें पर्यायदृष्टिसे गौण हो जाती है और गुणदृष्टि मुख्य हो जाती है पुनः चारित्रगुण जीवद्रव्यका है, इस बोधमें गुणदृष्टि गौण हो जाती है और द्रव्यदृष्टि मुख्य हो जाती है। पश्चात् द्रव्यदृष्टिमें विकल्पका अवकाश न होनेसे द्रव्यदृष्टि भी छूटकर केवल सहज आनन्दमय परिणमनका अनुभव रह जाता है। इस शुद्ध आत्मतत्त्वकी अनुभूतिको निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं।

इस प्रकार भावास्रवके स्वरूपका विशेष रूपसे वर्णन करके अब द्रव्यास्रवके स्वरूपका

विशेष रूपसे वर्णन करते हैं—

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेग्रो अणेयभेग्रो जिणक्खादो ॥३१॥

ग्रन्वय– णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि स दव्वासवो अणेयभेग्रो णेग्रो जिणक्खादो ।

अर्थ—ज्ञानावरणादि कर्मरूपसे परिणत होने योग्य जो पुद्गल आता है वह अनेक भेद वाला द्रव्यास्रव जानना चाहिये, ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ।

प्रश्न १– कौनसे पुद्गल कर्मरूपमें परिणत होनेके योग्य होते हैं ?

उत्तर—कार्माणवर्गणा नामक स्कन्ध कर्मरूपसे परिणत होनेके योग्य होते हैं ।

प्रश्न २– कार्माणवर्गणायें कहाँ मौजूद रहती हैं ?

उत्तर—कार्माणवर्गणायें समस्त लोकमें ठसाठस व्याप्त हैं । लोकके एक-एक प्रदेशपर अनन्त कार्माणवर्गणायें हैं ।

प्रश्न ३—उन कार्माणवर्गणाओंका कर्मरूप होनेसे पहिले भी जीवके साथ कोई सम्बंध है या नहीं ?

उत्तर—कुछ कार्माणवर्गणाओंका कर्मरूप होनेसे पहिले भी जीवके साथ एकक्षेत्राव-गाह सम्बन्ध रहता है, उन्हें विस्रसोपचय कहा जाता है । सभी संसारी जीवोंके विस्रसोपचय बना रहता है ।

प्रश्न ४—क्या कुछ कार्माणवर्गणायें विस्रसोपचयसे अलग भी हैं ?

उत्तर– कुछ कार्माणवर्गणायें विस्रसोपचयसे अलग भी हैं । ये भी कभी विस्रसोपचय में शामिल हो जाती हैं ।

प्रश्न ५—क्या विस्रसोपचय वाले स्कन्ध ही कर्मरूप परिणत होते हैं या अन्य कार्मा-णवर्गणायें भी कर्मरूप परिणत हो जाते हैं ?

उत्तर—विस्रसोपचयके कार्माण स्कन्ध ही कर्मरूप परिणत होते हैं । अन्य कार्माण-वर्गणायें भी विस्रसोपचयरूप बनकर कर्मरूप परिणत हो जाती हैं ।

प्रश्न ६– कर्म कितने प्रकारके हैं ?

उत्तर—कर्मके मूलमें २ प्रकार हैं—(१) घातियाकर्म और (२) अघातियाकर्म ।

प्रश्न ७—घातियाकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म आत्माके ज्ञानादि अनुजीवी गुणोंके घातनेमें निमित्त हों उन्हें घातियाकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८—अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—भावात्मक गुणोंको अनुजीवी गुण कहते हैं। इन गुणोंके अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। ये गुण कम या अधिक नाना प्रकारके स्थानोंमें विकसित हो सकते हैं। जैसे ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, शक्ति।

प्रश्न ९—अघातियाकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म जीवके अनुजीवी गुणोंका घात न करें और केवल प्रतिजीवी गुणोंका विकास रुकनेमें निमित्त हों उन्हें अघातियाकर्म कहते हैं।

प्रश्न १०—प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर—अभावात्मक धर्मोंको प्रतिजीवी गुण कहते हैं। इन गुणोंके अविभागप्रतिच्छेद नहीं होते। जैसे अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अव्याबाध।

प्रश्न ११— घातियाकर्मके कितने भेद हैं?

उत्तर—घातियाकर्मके चार भेद हैं—(१) ज्ञानावरणकर्म, (२) दर्शनावरणकर्म, (३) मोहनीयकर्म और अन्तरायकर्म।

प्रश्न १२— ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म आत्माके ज्ञानगुणको प्रकट न होने दें अर्थात् ज्ञानगुणके अविकासमें जो निमित्त हो उसे ज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३—ज्ञानावरणकर्मके कितने प्रकार हैं?

उत्तर—ज्ञानावरणकर्मके ५ प्रकार हैं—(१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण, (४) मनःपर्ययज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण।

प्रश्न १४—मतिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्मके उदयको पाकर मतिज्ञान प्रकट न हो, उसे मतिज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न १५— श्रुतज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो श्रुतज्ञानको प्रकट न होने दे उसे श्रुतज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न १६— अवधिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो अवधिज्ञानका आवरण करे उस कर्मको अवधिज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न १७—मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म मनःपर्ययज्ञानको प्रकट न होने दे, उसे मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८—केवलज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म केवलज्ञानको प्रकट न होने दे, उसे केवलज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न १६– आत्मामें यदि केवलज्ञान आदि ज्ञान हैं तो उनका आवरण हो ही नहीं सकता और यदि नहीं है तो आवरण किसका हो ?

उत्तर– आत्मामें केवलज्ञान आदि शक्तिरूपसे हैं, कर्मके निमित्तसे वे प्रकट नहीं हो पाते, यही उनका आवरण है ।

प्रश्न २०– क्या ज्ञानावरणकर्म निश्चयसे ज्ञानका घात करते हैं ?

उत्तर– एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका किसी प्रकारका परिणमन नहीं करता, अतः निश्चय से कर्म ज्ञानका घात नहीं करता, किन्तु ऐसा सहज ही निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है कि कर्मोंके उदय होनेपर आत्मज्ञानगुणका उचित विकास नहीं कर पाता । उदय भी ऐसी योग्यता वालों के होता है ।

प्रश्न २१-- दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जो आत्माके दर्शनगुणका विकास न होने दे, उसे दर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २२-- दर्शनावरणकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर-- दर्शनावरणकर्मके ९ भेद हैं– (१) चक्षुदर्शनावरण, (२) अचक्षुदर्शनावरण, (३) अवधिदर्शनावरण, (४) केवलदर्शनावरण, (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचलाप्रचला, (९) स्त्यानगृद्धि ।

प्रश्न २३– चक्षुदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जो कर्म चक्षुर्दर्शनको न होने दे उसे चक्षुर्दर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २४-- अचक्षुर्दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जो कर्म अचक्षुर्दर्शन न होने दे उसे अचक्षुर्दर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २५—अवधिदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म अवधिदर्शन न होने दे उसे अवधिदर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २६—केवलदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म केवलदर्शनको प्रकट न होने दे उसे केवलदर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २७—निद्रादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे साधारण नींद आवे, जहां दर्शन अथवा स्वसंवेदन न हो सके उस कर्मको निद्रादर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २८—निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे गाढ़ निद्रा आवे, बीचमें जगकर भी पुनः सो जावे, जिससे दर्शन अथवा स्वसम्वेदन नहीं हो सकता उसे निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २९—प्रचलादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अर्धनिद्रितसा सोवे, जिससे दर्शनगुणका उपयोग न हो सके उसे प्रचलादर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न ३०—प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे ऐसी निद्रा आवे जहाँ अङ्ग उपाङ्ग चलें, दाँत किटकिटाये, मुंहसे लार बहे आदि जिससे दर्शनोपयोग न हो उसे प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न ३१– स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे ऐसी निद्रा आवे कि निद्रामें ही उठकर कोई बड़ा काम कर आवे और जागनेपर यह मालूम भी न हो उसे स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणनामकर्म कहते हैं। इसके उदयमें भी जीवको दर्शन अथवा स्वसंवेदन नहीं हो पाता।

प्रश्न ३२– मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अन्य तत्त्वोंमें मोहित हो जाय, अपने शुद्ध स्वरूपका भान न कर सके और न स्वरूपमें स्थिर हो सके उसे मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ३३—मोहनीयकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर– मोहनीयकर्मके मूलमें दो भेद हैं—(१) दर्शनमोहनीय, (२) चारित्रमोहनीय।

प्रश्न ३४—दर्शनमोहनीयके कितने भेद हैं ?

उत्तर—दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं– (१) मिथ्यात्व, (२) सम्यग्मिथ्यात्व और (३) सम्यक्प्रकृति।

प्रश्न ३५—चारित्रमोहनीयके कितने भेद हैं ?

उत्तर– चारित्रमोहनीयके २५ भेद हैं—१६ कषायवेदकमोहनीय और ९ नोकषायवेदकमोहनीय।

प्रश्न ३६– कषायवेदकमोहनीयकर्म १६ कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—कषायवेदकमोहनीयकर्म १६ इस प्रकार हैं—(१) अनन्तानुबंधीक्रोधवेदकमोहनीय, (२) अनन्तानुबंधीमानवेदकमोहनीय, (३) अनन्तानुबंधीमायावेदकमोहनीय, (४) अनन्तानुबंधीलोभवेदकमोहनीय, (५) अप्रत्याख्यानावरणक्रोधवेदकमोहनीय, (६) अप्रत्याख्यानावरणमानवेदकमोहनीय, (७) अप्रत्याख्यानावरणमायावेदकमोहनीय, (८) अप्रत्याख्यानावरणलोभवेदकमोहनीय, (९) प्रत्याख्यानावरणक्रोधवेदकमोहनीय, (१०) प्रत्याख्यानावरणमानवेदकमोहनीय, (११) प्रत्याख्यानावरणमायावेदकमोहनीय, (१२) प्रत्याख्यानावरणलोभवेदकमोहनीय, (१३) संज्वलनक्रोधवेदकमोहनीय, (१४) संज्वलनमानवेदकमोहनीय, (१५) संज्वलनमायावेदकमोहनीय और (१६) संज्वलनलोभवेदकमोहनीयकर्म।

प्रश्न ३७– नोकषायवेदकमोहनीयकर्मके ९ प्रकार कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर– नोकषायवेदकमोहनीयकर्म ९ इस प्रकार हैं– (१) हास्यवेदकमोहनीय, (२) रतिवेदकमोहनीय, (३) अरतिवेदकमोहनीय, (४) शोकवेदकमोहनीय, (५) भयवेदकमोहनीय, (६) जुगुप्सावेदकमोहनीय, (७) पुरुषवेदकमोहनीय, (८) स्त्रीवेदकमोहनीय और (९) नपुंसकवेदकमोहनीय ।

प्रश्न ३८— मिथ्यात्वमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयको निमित्त पाकर आत्मा यथार्थ श्रद्धान न कर सके उसे मिथ्यात्वमोहनीयकर्म कहते हैं । इस कर्मके उदयसे जीव शुद्ध निजस्वरूपका प्रत्यय नहीं कर सकता व शरीर आदिमें आत्मबुद्धि करता है ।

प्रश्न ३९– सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवके न तो केवलसम्यक्त्वरूप परिणाम हों और न केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम हों, किन्तु मिले हुए हों उस कर्मको सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४०– सम्यक्प्रकृतिमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे आत्माके सम्यग्दर्शनमें चल, मलिन, अगाढ़ दोष उत्पन्न हों उसे सम्यक्प्रकृतिमोहनीयकर्म कहते हैं । इस कर्मके उदयमें सम्यग्दर्शनका घात नहीं होता। ये चल मलिन अगाढ़ दोष भी अत्यन्त सूक्ष्मरूप दोष हैं ।

प्रश्न ४१– अनन्तानुबन्धी क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे पाषाणरेखा सदृश दीर्घकाल तक न मिटने वाले ऐसे क्रोधका वेदन हो जिससे मिथ्यात्वभाव पुष्ट होता चला जावे उस कर्मको अनन्तानुबन्धी क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४२– अनन्तानुबन्धी मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे पाषाणकी कठोरता सदृश दीर्घकाल तक न नमने वाले मानका वेदन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसको अनन्तानुबन्धी मानवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४३– अनन्तानुबन्धी मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बांसकी जड़की तरह अत्यन्त वक्र माया (छल कपट) का परिणमन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसको अनन्तानुबन्धी मायावेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४४—अनन्तानुबन्धी लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हिरमजीके रंगकी तरह दीर्घकाल तक न छूटने वाली

तृष्णाका वेदन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसे अनन्तानुबन्धी लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ४५-- अनन्तानुबन्धी कषायका कितना काल है ?

उत्तर– अनन्तानुबन्धी कषायके संस्कारकी अवधि नहीं है। यह कई भवों तक साथ जा सकता है, अनन्त भवों तक साथ जा सकता है।

प्रश्न ४६– अनन्तानुबन्धी कषायका कार्य क्या है ?

उत्तर—सम्यक्त्व न होने देना और मिथ्यात्वको उत्पन्न करना, पुष्ट करना, दोनों अनन्तानुबन्धी कषायके कार्य हैं।

प्रश्न ४७—अनन्तानुबन्धी शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—जो अनन्त भवों तक भी सम्बन्ध रखे उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

प्रश्न ४८– अप्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हलरेखासदृश (पृथ्वीमें हलके चलनेसे होने वाले गड्ढेकी तरह) कुछ बहुत काल तक न मिटने वाले क्रोधका वेदन हो जिससे संयमासंयम प्रकट न हो सकता उसको अप्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ४९– अप्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हड्डीकी तरह कुछ कठिनतासे मुड़ने वाले मानका वेदन हो जिससे संयमासंयम प्रकट नहीं हो सकता उसको अप्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५०—अप्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे मेढाके सींगकी कुटिलताकी तरह वक्र मायाका वेदन करे जिससे संयमासंयम प्रकट नहीं हो सकता उसे अप्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५१—अप्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे चकेके ओंगनके रंगकी रंगाईकी तरह कुछ बहुत काल तक न छूटने वाली तृष्णाका वेदन हो जिससे संयमासंयम प्रकट नहीं हो सकता उसे अप्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५२— अप्रत्याख्यानावरण कषायका काल कितना है ?

उत्तर—अप्रत्याख्यानावरण कषायका संस्कार अधिकसे अधिक ६ माह तक रहता है।

प्रश्न ५३-- अप्रत्याख्यानावरण कषायका कार्य क्या है ?

उत्तर—अप्रत्याख्यानवरण कषायका कार्य देश संयमको प्रकट न होने देना है

अप्रत्याख्यानावरणका शब्दार्थ यह है— अ– ईषत्, प्रत्याख्यान– त्यागका, आवरण– ढाकने वाला। ईषत् माने आंशिक त्यागको देशसंयम अथवा संयमासंयम कहते हैं।

प्रश्न ५४– प्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे धूलिरेखा याने गाड़ीके चक्केकी लकीरके सदृश अल्पकाल तक ही न मिटने वाले क्रोधका वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५५—प्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे लकड़ी याने काष्ठदण्डकी तरह कुछ शीघ्र मुड़ जाने वाले मानका वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५६– प्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे गोमूत्रकी तरह अल्पवक्ररूप मायाका वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५७– प्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरपर लगे हुए मलकी तरह अल्प प्रयत्नसे छूट सकने वाली तृष्णाका वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५८—प्रत्याख्यानावरण कषायका काल कितना है ?

उत्तर—प्रत्याख्यानावरण कषायके संस्कारका काल अधिकसे अधिक १५ दिन तक ही है।

प्रश्न ५९– प्रत्याख्यानावरण कषायका कार्य क्या है ?

उत्तर—प्रत्याख्यानावरण कषायका कार्य सकल संयम (महाव्रत) प्रकट नहीं होने देना है। प्रत्याख्यानावरणका शब्दार्थ यह है—प्रत्याख्यान = त्याग (सर्वदेश व्रत) का, आवरण = ढांकने वाला।

प्रश्न ६०– संज्वलनक्रोधवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जलरेखाके सदृश शीघ्र मिट जाने वाले क्रोधका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनक्रोधवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ६१– संज्वलनमानवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बेंत (पतली छड़ी) की नम्रताकी तरह शीघ्र मिट सके, ऐसे मानका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनमानवेदक

मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६२-- संज्वलनमायावेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे चमरी गौ के केशोंकी तरह अत्यल्प वक्रता वाले माया-कषायका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनमायावेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६३—संज्वलनलोभवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे हल्दीके रंगकी तरह शीघ्र नष्ट हो जाने वाली तृष्णाका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनलोभवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६४— संज्वलनकषायका काल कितना है ?

उत्तर— संज्वलनकषायके संस्कारका काल अन्तर्मुहूर्त तक ही हो सकता है ।

प्रश्न ६५— संज्वलन कषायका कार्य क्या है ?

उत्तर— संज्वलनका शब्दार्थ है—सं = सम्यक् प्रकारसे, ज्वलन = जो जले अर्थात् संज्वलनकषाय सकलसंयमका नाश न करते हुए रहती है, यही इसका सम्यक्पना है और कषायके कारण यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो पाता ।

प्रश्न ६६— यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर— कषायका अभाव होनेपर आत्माका यथा = जैसा कषायरहित शुद्ध स्वभाव है उस स्वरूपके ख्यात याने प्रकट हो जानेको यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

प्रश्न ६७—हास्यवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस कर्मके उदय होनेपर हास्यजनक राग हो उसे हास्यवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६८— रतिवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे इष्ट विषयोंमें रमे उसे रतिवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६९— अरतिवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे अनिष्ट विषयोंमें अरुचि हो उसे अरतिवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७०—शोकवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे जीवके विषाद उत्पन्न हो उसे शोकवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७१—भयवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवके भय उत्पन्न हो उसको भयवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७२– जुगुप्सावेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवके ग्लानि उत्पन्न हो उसे जुगुप्सावेदक मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७३– पुरुषवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे महान् कर्तव्योंमें वृत्ति, स्त्रीरमणाभिलाषा आदि पौरुष भाव हों उसे पुरुषवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७४-- स्त्रीवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे कोमलाङ्गता, नेत्रविभ्रम, मुख फुलाना, पुरुष रमणेच्छा आदि स्त्रैण भाव हों उसे स्त्रीवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७५– नपुंसकवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे स्त्री पुरुष दोनोंमें रमनेकी इच्छा, कामाग्निकी प्रबलता, कायरता आदि क्लैव भाव उत्पन्न हों उसे नपुंसकवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७६– इन उक्त नौ भेदोंका नाम नोकषाय क्यों है ?

उत्तर—इन कर्मोंकी स्थिति अल्प होती है और इनमें अनुभाग भी अल्प होता है, इस कारण ये ईषत् कषायें हैं। नोकषायका शब्दार्थ यह है–नो = ईषत् कषाय सो नोकषाय।

प्रश्न ७७– अन्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो कर्म दो के बीच अन्तरको उत्पन्न करनेमें निमित्त हो उसे अन्तरायकर्म कहते हैं। अन्तराय शब्दका अर्थ भी यही है कि जो अन्तरका आय याने उत्पाद करे सो अंतराय अर्थात् जो जीवके दान, लाभ आदिमें विघ्न होनेमें निमित्त हो उसे अंतरायकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७८—अन्तरायकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अन्तरायकर्मके ५ भेद हैं-- (१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और (५) वीर्यान्तराय।

प्रश्न ७९—दानान्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे दान देते हुए जीवके दानमें विघ्न उपस्थित हो उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८०– लाभान्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवके लाभमें विघ्न हो उसे लाभान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८१—भोगान्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवके भोगमें विघ्न उपस्थित हो उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८२—उपभोगान्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीव उपभोगमें विघ्न आवे उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८३-- वीर्यान्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवके शक्तिके विकासमें विघ्न हो उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८४—अघातियाकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अघातिया कर्मके ४ भेद हैं– (१) वेदनीयकर्म, (२) आयुकर्म, (३) नामकर्म और गोत्रकर्म।

प्रश्न ८५—वेदनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे जीव इन्द्रिय व मनके विषयोंका भोगरूप वेदन करे उसे वेदनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८६-- वेदनीयकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर– वेदनीयकर्मके २ भेद हैं– (१) सातावेदनीथ और (२) असातावेदनीय।

प्रश्न ८७-- सातावेदनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे जीव सुखका वेदन करे उसे सातावेदनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८८– असातावेदनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीव दुःखका वेदन करे उसे असातावेदनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ८९– क्या वेदनीयकर्मका क्षय होनेपर सुख दुःख दोनोंका अभाव हो जाता है ?

उत्तर– वेदनीयकर्मके क्षय होनेपर सुख और दुःख दोनोंका क्षय हो जाता है।

प्रश्न ९०– सुखके अभावमें जीवका स्वभाव ही मिट जावेगा ?

उत्तर– जीवका स्वभाव है आनंद। आनंद गुणके परिणमन ३ होते हैं– (१) आनंद, (२) सुख और (३) दुःख। सुख और दुःख आनन्दगुणके विकृत परिणमन हैं और आनन्द गुणका स्वाभाविक परिणमन है।

प्रश्न ९१– सुख क्यों विकृत परिणमन है ?

उत्तर– सुखका अर्थ है-- सु = सुहावना, ख = इन्द्रियोंको अर्थात् जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे सो सुख है। यह सुख दुःखकी भांति विकृत परिणमन है, क्योंकि दुःखका मतलब है-- दुः = बुरा, असुहावना, ख = इन्द्रियोंको अर्थात् जो इन्द्रियोंको असुहावना लगे सो दुःख

है। इन्द्रियोंको सुहावना असुहावना वेदन करना दोनों ही आनन्दगुणके विकार हैं।

प्रश्न ९२-- आनन्द स्वाभाविक परिणमन कैसे है ?

उत्तर-- आनन्दका भाव यह है—आ = समन्तात् नन्दतीति आनन्दः। सर्व ओरसे समृद्धिशाली होना सो आनन्द है। इसमें परम निराकुल अवस्था ही परम समृद्धि है, वह कर्म क्षय होनेपर होती ही है।

प्रश्न ९३-- आयुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवन अवस्था हो और अभावसे मरण अवस्था हो उसे आयुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९४-- आयुकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर-- आयुकर्मके ४ भेद हैं-- (१) नरकायु, (२) तिर्यगायु, (३) मनुष्यायु और (४) देवायु।

प्रश्न ९५-- नरकायुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर--जिस कर्मके उदयसे जीवका नरकभवमें अवस्थान हो उसे नरकायुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९६-- तिर्यगायुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे आत्माका तिर्यञ्चभवमें अवस्थान हो उसे तिर्यगायुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९७-- मनुष्यायुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे जीवका मनुष्यभवमें अवस्थान हो उसे मनुष्यायुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९८—देवायुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवका देवभवमें अवस्थान हो उसे देवायुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९९-- नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे नाना प्रकार शरीर सम्बन्धी रचना हो उसे नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १००-- नामकर्मके कितने भेद हैं ?

उत्तर-- नामकर्मके ९३ भेद हैं—४ गतिनामकर्म (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव), ५ जातिनामकर्म (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय), ५ शरीरनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण), ३ अङ्गोपाङ्गनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक और आहारक), १ निर्माणनामकर्म, ५ बन्धननामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण), ५ संघातनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण), ६ संस्थान-

नामकर्म (समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, वामन, कुब्जक और हुंडक), ६ संहनननामकर्म (वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तसृपाटिका), ८ स्पर्शनामकर्म (स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, गुरु, लघु, कठोर और मृदु), ५ रसनामकर्म (अम्ल, मधुर, कटु, तिक्त, कषायित), २ गन्धनामकर्म (सुगन्ध और दुर्गन्ध), ५ वर्णनामकर्म (कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत), ४ आनुपूर्व्यनामकर्म (नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य), १ अगुरुलघुनामकर्म, १ उपघातनामकर्म, १ परघातनामकर्म, १ आतपनामकर्म, १ उद्योतनामकर्म, १ उच्छ्वासनामकर्म, २ विहायोगतिनामकर्म (प्रशस्त और अप्रशस्त), १ प्रत्येकशरीरनामकर्म, १ त्रसनामकर्म, १ सुभगनामकर्म, १ सुस्वरनामकर्म, १ शुभनामकर्म, १ बादरनामकर्म, १ पर्याप्तिनामकर्म, १ स्थिरनामकर्म, १ आदेयनामकर्म, १ यशःकीर्तिनामकर्म, १ साधारणशरीरनामकर्म, १ स्थावरनामकर्म, १ दुर्भगनामकर्म, १ दुःस्वरनामकर्म, १ अशुभनामकर्म, १ सूक्ष्मनामकर्म, १ अपर्याप्तिनामकर्म, १ अस्थिरनामकर्म, १ अनादेयनामकर्म, १ अयशःकीर्तिनामकर्म और १ तीर्थङ्करनामकर्म ।

प्रश्न १०१-- नरकगतिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे नरकभवके योग्य परिणाम हों जिस भावमें रहनेपर नरकमें उदय आने योग्य कर्मोंका उदय होता है उसको नरकगतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०२—तिर्यग्गतिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे तिर्यग्भवके योग्य परिणाम हों, जिस भावमें रहनेपर तिर्यंचमें उदय आने योग्य कर्मोंका उदय होता रहता है उसे तिर्यग्गतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०३– मनुष्यगतिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे मनुष्यभवके योग्य परिणाम हों, जिस भावमें रहनेपर मनुष्यमें उदय याने योग्य कर्मोंका उदय होता रहता है उसे मनुष्यगतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०४—देवगतिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस नामकर्मके उदयसे देवभवके योग्य परिणाम हों, जिस भावमें रहनेपर देवमें उदय आनेके योग्य कर्मोंका उदय होता रहता है उसे देवगतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०५—जातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे प्राणियोंके सदृश उत्पन्न हों उसे जातिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०६– एकेन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे केवल स्पर्शनइन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे एकेन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०७– द्वीन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे स्पर्शन और रसना– इन दो इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे द्वीन्द्रियजातिनामकर्म हैं।

प्रश्न १०८—त्रीन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदयसे स्पर्शन, रसना व घ्राण-- इन तीन इन्द्रिय वाला जीवन मिले उस कर्मको त्रीन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १०९—चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु--इन चार इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११०—पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—इन पाँचों इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १११– शरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरकी रचना हो उसे शरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११२– औदारिक शरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे औदारिक नामक आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ सम्बन्ध हो उसे औदारिक शरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११३—वैक्रियकशरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे वैक्रियक नामक आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ संबन्ध हो उसे वैक्रियकशरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११४– आहारकशरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे, आहारक नामक आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ संबन्ध हो उसे आहारकशरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११५– तैजसशरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तैजसवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ संबन्ध हो उसे तैजसशरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११६– कार्माणशरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे कार्माणवर्गणाके पुद्गल स्कन्ध कर्मरूप परिणत होकर कार्माण शरीररूप परिणत होते हुए जीवके साथ संबन्ध हो उसे कार्माणशरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११७—अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोंकी निष्पत्ति होती है उसे अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११८– अङ्ग कितने और कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—अङ्ग ८ होते हैं– (१) दक्षिण पाद, (२) वाम पाद, (३) दक्षिण हस्त, (४) वाम हस्त, (५) नितंब, (६) पीठ, (७) हृदय, (८) मस्तक।

प्रश्न ११९– उपाङ्ग कितने और कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर-- कपाल, ललाट, कान, नाक, ओंठ, अंगुली, ठोड़ी आदि अनेक उपाङ्ग होते हैं।

प्रश्न १२०—औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे औदारिक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोंकी रचना हो उसे औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२१– वैक्रियकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे वैक्रियक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोंकी निष्पत्ति हो उसे वैक्रियकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२२– आहारकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे आहारक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोंकी रचना हो उसे आहारकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२३-- निर्माणनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे अङ्ग उपाङ्गोंकी यथायोग्य ठीक-ठीक प्रमाणसे और ठीक-ठीक स्थानपर निष्पत्ति हो उसे निर्माणनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२४– बन्धननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीवसम्बंध वर्तमान पुद्गल सम्बंधोंके साथ शरीररूप परिणत होने वाले पुद्गलस्कन्धोंका परस्पर बन्धन हो उसे बन्धननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२५– औदारिकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीवसंबद्ध वर्तमान पुद्गलस्कन्धोंके साथ औदारिक शरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धोंका परस्पर बन्धन हो उसे औदारिक शरीरबन्धननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२६– वैक्रियकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे जीवसंबद्ध वर्तमान पुद्गलस्कन्धोके साथ वैक्रियक शरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धोंका परस्पर बन्धन हो उसे वैक्रियकशरीर बन्धननामकर्म

कहते हैं।

प्रश्न १२७—आहारकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे आहारकशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कंधोंका जीवसंबद्ध पुद्गलस्कंधोंके साथ परस्पर बन्धन हो उसे आहारकशरीर बन्धननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२८– तैजसशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तैजसशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कंधोंका जीवसंबद्ध पुद्गलस्कंधोंके साथ परस्पर बन्धन हो उसे तैजसशरीर बन्धननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १२९– कार्माणशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे कार्माणशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धोंका जीवसंबद्ध पुद्गलस्कन्धोंके साथ परस्पर बन्धन हो उसे कार्माणशरीर बन्धननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३०– संघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बद्धशरीर स्कन्धोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे संघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३१—औदारिक शरीरसंघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध औदारिक शरीरस्कन्धोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे औदारिक शरीरसंघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३२– वैक्रियकशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध वैक्रियकशरीर स्कन्धोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे वैक्रियकशरीर संघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३३—आहारकशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध आहारकशरीर स्कन्धोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे आहारकशरीर संघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३४– तैजसशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध तैजसशरीर स्कंधोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे तैजसशरीर संघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३५-- कार्माणशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बद्ध कार्माणशरीर स्कंधोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे कार्माणशरीर संघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३६– संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १३७– समचतुरस्र संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीर बिल्कुल सुडौल बने उसे समचतुरस्र संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३८– न्यग्रोधपरिमंडल संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे बड़के पेड़के आकारकी तरह शरीरका नीचेका भाग छोटा और ऊपरका भाग बड़ा हो उसे न्यग्रोधपरिमंडल संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३९– स्वाति संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरका स्वाति (बामी) का आकार बने याने नीचेका भाग छोटा और ऊपरका लम्बा बने उसे स्वातिसंस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४०—वामन संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार बौना हो उसे वामन संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४१—कुब्जक संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार कुबड़ा हो उसे कुब्जक संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४२—हुंडक संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार कई प्रकारका या विचित्र अथवा अट-पटा हो उसे हुंडक संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४३– संहनननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डियों और हड्डियोंके सन्धियों याने बंधन विशेष की रचना होती है उसे संहनननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४४– वज्रऋषभनाराच संहनननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड़, वज्रके वेठन और वज्रको कीलियाँ हों उसे वज्रऋषभनाराच संहनननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४५– वज्रनाराच संहनननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड़ और वज्रकी कीलियाँ हों, किन्तु वेठन वज्र के न हों उसे वज्रनाराच संहनननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४६– नाराचसंहनननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हड्डियाँ कीलियोंसे कीलित हों उसे नाराचसंहनननाम-कर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४७—अर्द्धनाराच संहनननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डियाँ आधी कीलित हों उसको अर्द्धनाराच संहनननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १४८—कीलक संहनननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डियाँ कीलियोंसी स्पष्ट हों उसे कीलकसंहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १४९—असंप्राप्तसृपाटिका संहनननामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डियाँ नसाजालसे बंधी हुई हों उसे असंप्राप्त-सृपाटिका संहनननामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १५०—स्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे स्पर्शनाम-कर्म कहते हैं।

प्रश्न १५१– स्निग्धस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत स्निग्ध स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे स्निग्धनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १५२– रूक्षस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत रूक्ष स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे रूक्षस्पर्शनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १५३– शीतस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत शीतस्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे शीत-स्पर्शनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १५४– उष्णस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत उष्ण स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे उष्णस्पर्शनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १५५– गुरुस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत गुरु नामक स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे गुरुस्पर्शनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १५६-- लघुस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत लघु नामक स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे लघुस्पर्शनामकर्म कहते हैं ?

प्रश्न १५७—कठोरस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे नियत कठोरनामक स्पर्शको निष्पत्ति होती है उसे कठोर स्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५८—मृदुस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें नियत कोमल स्पर्शकी उत्पत्ति होती है उसे मृदुस्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५९—रसनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत रसकी निष्पत्ति हो उसे रसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६०—ग्रम्लरसनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत ग्रम्ल (खट्टे) रसकी निष्पत्ति हो उसे ग्रम्लरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६१— मधुररसनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत मधुर रसकी निष्पत्ति हो उसे मधुररसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६२—कटुरसनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत कड़ुवे रसकी निष्पत्ति हो उसे कटुरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६३—तिक्तरसनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत तीखे रसकी निष्पत्ति हो उसे तिक्तरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६४— कषायितरसनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत कषैले रसकी निष्पत्ति हो उसे कषायितरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६५—गन्धनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत गन्धकी निष्पत्ति हो उसे गन्धनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६६— सुगन्धनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत सुगन्धकी निष्पत्ति हो उसे सुगन्ध नामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६७—दुर्गन्धनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत दुर्गन्धकी निष्पत्ति हो उसे दुर्गन्ध-नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १६८– वर्णनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे प्रतिनियत वर्णकी निष्पत्ति हो उसे वर्णनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १६९– कृष्णवर्णनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत कृष्णवर्णकी निष्पत्ति हो उसे कृष्ण-वर्णनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १७०–नीलवर्णनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत नील वर्णकी निष्पत्ति हो उसे नील-वर्णनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १७१– रक्तवर्णनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत लाल वर्णकी निष्पत्ति हो उसे रक्त-वर्णनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १७२—पीतवर्णनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत पीले वर्णकी निष्पत्ति हो उसे पीत-बर्णनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १७३– श्वेतवर्णनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत श्वेत वर्णकी निष्पत्ति हो उसे श्वेत-वर्णनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १७४– शरीर पुद्गल है और पुद्गलका स्वभाव ही रूपादिका है, फिर स्पर्श-नामकर्मकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर– यदि स्पर्शादि नामकर्म न हों तो यह व्यवस्था नहीं बनेगी कि भौंरोंमें भौंरों जैसा प्रतिनियत रूप, रस, गंधादिसे हो। घोड़ों, मनुष्यों आदिमें घोड़ों, मनुष्यों आदि जैसा रूप रसादि हो। यह व्यवस्था इन स्पर्शादि नामकर्मोंके उदयसे होती है।

प्रश्न १७५– आनुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे विग्रहगतिमें पूर्व शरीरके आकार आत्मप्रदेश हों उसे आनुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १७६– विग्रहगति किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मरणके पश्चात् नवीन देह धारण करनेके लिये जो जीवका गमन होता है उसे विग्रहगति कहते हैं।

प्रश्न १७७-- क्या सभी विग्रहगतियोंमें जीवका आकार पूर्व भव जैसा होता है ?

उत्तर-- मोड़े लेकर जाने वाली गतिमें जीवका आकार पूर्वभवके आकारका होता है।

प्रश्न १७८—बिना मोड़ेकी विग्रहगतिमें जीवका क्या आकार रहता है ?

उत्तर-- बिना मोड़े वाली गतिमें जीवको एक भी समयका अवकाश नहीं मिलता, किन्तु पहिले समयमें मरा, दूसरे समयमें उत्पन्न हो गया, इसलिये आकार सहित गति न होकर जीवका विसर्पण होकर जन्मस्थानार संकोच हो जाता है। वहाँ आनुपूर्व्यनामकर्मका उदय भी नहीं है।

प्रश्न १७९-- नरकगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तिर्यंच या मनुष्यगतिसे मरणकर नरकभवमें देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमें हो उसे नरकगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८०—तिर्यंग्गत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे किसी गतिसे मरणकर तिर्यंग्गतिमें देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमें हो उसे तिर्यंग्गत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८१—मनुष्यगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे किसी गतिसे मरणकर मनुष्यगतिमें देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमें हो उसे मनुष्यगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८२— देवगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसे मरणकर देवगतिमें देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमें हो उसे देवगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८३— अगुरुलघुनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर यथायोग्य गुरु और लघु हो अर्थात् न तो ऐसा गुरु शरीर हो कि लोहके गोलेके समान गिर जावे और न ऐसा लघु शरीर हो कि आक के तूलके समान उड़ जावे, उसे अगुरुलघुनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८४—उपघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे अपने ही शरीरका अवयव अपना ही घात करने वाला हो उसे उपघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८५—परघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे परप्राणोका घात करने वाला देहमें अवयव हो उसे परघातनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८६—आतपनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीर मूलमें तो ठंडा हो और दूरवर्ती पदार्थोंके उष्ण हो जानेमें निमित्त हो तथा तेजोमय हो उसे आतपनामकर्म कहते हैं। इसका उदय सूर्यविमानके पृथ्वीकायिक जीवोंमें पाया जाता है।

प्रश्न १८७– उद्योतनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीर मूलमें भी शीत हो और दूरवर्ती पदार्थोंके उष्णता का कारण न हो तथा उद्योतरूप (चमकदार) हो उसे उद्योतनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८८– उच्छ्वासनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें श्वास और उच्छ्वास प्रकट हों उसे उच्छ्वासनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १८९– विहायोगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीव गमन करे उसे विहायोगतिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९०– प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे सुन्दर गमनविधि हो उसे प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म कहते हैं। जैसे हंस, घोड़ा आदिकी गति।

प्रश्न १९१—अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे असुन्दर गमनविधि हो उसे अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म कहते हैं। जैसे गधा, कुत्ता आदिकी गतिविधि।

प्रश्न १९२– प्रत्येकशरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे एक शरीरका अधिष्ठाता एक जीव हो उसे प्रत्येकशरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९३– त्रसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अंग उपांग सहित काय (शरीर) मिले उसे त्रसनामकर्म कहते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं।

प्रश्न १९४—सुभगनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे प्राणीपर अन्य प्राणियोंकी प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभगनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९५—सुस्वरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे अच्छा स्वर हो उसे सुस्वरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९६– शुभनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरके शुभ अवयव हों उसे शुभनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९७– बादरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बादर शरीर हो, जो दूसरेको रोक सके व दूसरेसे रुक सके उसे बादरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९८– पर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर मिले जिसकी पर्याप्ति नियमसे पूर्ण हो, शरीरपर्याप्ति पूर्ण हुए बिना मरण न हो उसे पर्याप्तिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९९– स्थिरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमें धातु उपधातु अपने-अपने ठिकाने रहें, अचलित रहें उसे स्थिरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २००—आदेयनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमें कान्ति प्रकट हो उसे आदेयनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०१– यशःकीर्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवका यश और कीर्ति प्रकट हो उसे यशःकीर्तिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०२– साधारणशरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे एक शरीरके स्वामी अनेक जीव हों उसे साधारणशरीरनामकर्म कहते हैं। जैसे निगोद।

प्रश्न २०३-- स्थावरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अंग उपांग रहित शरीर मिले उसे स्थावरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०४—दुर्भगनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे प्राणीपर अन्य प्राणियोंकी अरुचि उत्पन्न हो उसे दुर्भगनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०५-- दुःस्वरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर--जिस नामकर्मके उदयसे बुरा स्वर हो उसे दुःस्वरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०६-- अशुभनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिस कर्मके उदयसे शरीरके असुहावने अवयव हों उसे अशुभनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०७– सूक्ष्मनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे शरीर सूक्ष्म हो, जो न किसीको रोक सके और न किसी से रुक सके उसे सूक्ष्मनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०८—अपर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर मिले जिसकी पर्याप्ति पूर्ण न हो और मरण हो जाय उसे अपर्याप्तिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०९—अस्थिरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरके धातु उपधातु चलित हो जाया करें उसे अस्थिर-नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २१०– अनादेयनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे कान्तिरहित शरीर हो उसे अनादेयनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २११– अयशःकीर्तिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अपयश और अकीर्ति हो उसे अयशःकीर्तिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २१२– तीर्थङ्करप्रकृतिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तीर्थंकरपना हो, सर्वज्ञदेवके सातिशय दिव्यध्वनि, विहार आदिसे लोकोपकार हो उसे तीर्थंकरप्रकृतिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २१३-- क्या ये भेद एक-एक कर्मस्कन्ध हैं ?

उत्तर—प्रत्येक भेद अनन्त कार्माणवर्गणावोंका स्कन्ध है। जिन कार्माणवर्गणाओंकी प्रकृति उस भेदरूप है उन कार्माणस्कन्धोंकी वह संज्ञा है।

प्रश्न २१४-- इन द्रव्यास्रवोंके जाननेसे कुछ आत्मलाभ है ?

उत्तर-- भूतार्थनयसे यदि इन्हें जाना जाय तो इनका ज्ञान निश्चयसम्यक्त्वका कारण हो जाता है।

प्रश्न २१५—भूतार्थनयसे इन द्रव्यास्रवोंका जानना किस प्रकार है ?

उत्तर-- उक्त सब द्रव्यास्रव पर्यायें हैं। किस द्रव्यकी पर्यायें हैं ? पुद्गल द्रव्यकी ये पर्यायें पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न हुई हैं। जहांसे उत्पन्न हुई हैं केवल उस द्रव्यकी दृष्टि रहनेपर ये पर्यायें गौण हो जाती हैं और द्रव्यदृष्टि मुख्य हो जाती है। पश्चात् द्रव्यदृष्टिमें विकल्पोंका अवकाश न होनेसे द्रव्यदृष्टिका विकल्प भी छूटकर आत्माका केवल सहज आनंदमय परिणमन का अनुभव रह जाता है। इस शुद्ध आत्मतत्त्वकी अनुभूतिको निश्चयसम्यक्त्व कहते हैं।

इस प्रकार आस्रव तत्त्वका वर्णन करके बन्धतत्त्वका वर्णन करते हैं—

वज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबन्धो सो ।
कम्मादपतेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

अन्वय– जेण चेदणभावेण कम्मं वज्झदि सो भावबन्धो दु कम्मादपते साणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ।

अर्थ—जिस चेतनभावके निमित्तसे कर्म बंधता है वह तो भावबंध है और कर्म तथा आत्माके प्रदेशोंका परस्पर प्रवेशरूप होना अर्थात् एकाकार होना सो द्रव्यबंध है ।

प्रश्न १– कौनसे चेतनभाव भावबन्ध कहलाते हैं ?

उत्तर– मिथ्यात्व, राग और द्वेष भावबन्ध कहलाते हैं ।

प्रश्न २– मिथ्यात्व आदि भाव भावबंध क्यों हैं ?

उत्तर– मिथ्यात्वादि भाव अखण्ड निज चैतन्यस्वभावके अनुभवसे विपरीत हैं, विरुद्ध भाव हैं, अतः भावबन्ध हैं ।

प्रश्न ३—बन्धमें तो दोका सम्बन्ध है, यहाँ दो क्या तत्त्व हैं जिनका बंध हो ?

उत्तर—यहाँ उपयोग और रागादिका सम्बन्ध हुआ है अर्थात् चैतन्यगुणके विकासमें चारित्रगुणका विकृत विकास अभिगृहीत हुआ है, अतः अर्थात् उपयोगभूमिमें रागादिके सम्बंध होनेसे भावबन्ध कहलाता है । (प्र. गा. 175)

प्रश्न ४—यह चेतनभाव शुद्ध है अथवा अशुद्ध ?

उत्तर– यह चेतनभाव अशुद्ध है, क्योंकि कर्मरूप उपाधिको निमित्त पाकर हुआ है ।

प्रश्न ५– भावबन्धकी तरह क्या द्रव्यबन्ध भी एक ही पदार्थमें होता है ?

उत्तर– द्रव्यबन्ध एक जातिके पदार्थोंमें होता है अर्थात् पुद्गलकर्मका पुद्गलकर्मके साथ बन्ध होना द्रव्यबन्ध है ।

प्रश्न ६– यहां आत्मा और कर्मके परस्पर बन्धको द्रव्यबन्ध कैसे कहा ?

उत्तर– यह दो जातिके द्रव्योंका बन्ध है, इसे भी द्रव्यबन्ध कहते हैं । इस द्रव्यबन्ध का दूसरा नाम उभयबन्ध है ।

प्रश्न ७– क्या केवल एक पुद्गलकर्ममें द्रव्यबन्ध नहीं माना जा सकता ?

उत्तर—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभागके बन्धकी अपेक्षासे एक पुद्गलकर्ममें द्रव्यबन्ध माना जा सकता है । किन्तु यह बन्ध केवल एक परमाणु या संख्यात असंख्यात परमाणुओंके स्कन्धमें भी नहीं बनता । बनता तो अनन्त परमाणुओंके स्कन्धमें, फिर भी सूक्ष्मदृष्टि से उसी स्कन्धके एक-एक परमाणुमें भी वह सब है ।

प्रश्न ८– आत्मा तो अमूर्त है, उसके साथ मूर्तकर्मका बंध कैसे हो जाता है ? प्र. गा. 173-174

उत्तर—संसारी आत्मा कर्मबन्धनसे बद्ध होनेके कारण कर्मसम्बन्धसे कथंचित् मूर्त

माना गया है, ऐसे आत्माके साथ कर्मका बन्ध हो जाना युक्त ही है।

प्रश्न ९– आत्माके साथ कर्मका एकाकार हो जानेका क्या अर्थ है ?

उत्तर– आत्माका व कर्मस्कन्धोंका एकक्षेत्रावगाह हो जाना, उनमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध हो जाना एकाकारताका अर्थ है। ऐसा होनेपर भी निश्चय प्रत्येक द्रव्य अपने आपमें ही है, अतः स्वतन्त्र है।

प्रश्न १०—भावबन्ध और भावास्रवमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—भावबन्धमें कर्मबन्धकी निमित्तता है और भावास्रवमें कर्मास्रवकी निमित्तता है। भावबन्ध व्याप्य है और भावास्रव व्यापक है।

अब द्रव्यबन्धके भेद व भेदोंका कारण दिखाते हैं—

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदे स भेदाहु चदुविदोबंधो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

अन्वय– बन्धो पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदे स भेदाहु चदुविदो। पयडिपदेसा जोगा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति।

अर्थ– बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे ४ प्रकारका होता है। उनमें से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योगसे होते हैं तथा अनुभागबन्ध और स्थितिबन्ध कषायसे होते हैं।

प्रश्न १-- प्रकृतिबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीवको विभाव पर्यायमें ले जानेके लिये कर्मस्कन्धोंमें पृथक्-पृथक् प्रकृतियों का (आदतों या स्वभावोंका) पड़ जाना प्रकृतिबन्ध है।

प्रश्न २—ज्ञानावरणकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर— ज्ञानावरणकी प्रकृति आत्माके ज्ञानगुणको आच्छादित करनेकी है।

प्रश्न ३—दर्शनावरणकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर-- दर्शनावरणकर्मकी प्रकृति आत्माके दर्शनगुणको आच्छादित करनेकी है।

प्रश्न ४-- मोहनीयकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर– जीवको हेय और उपादेयके विवेकसे भी रहित कर देनेकी प्रकृति मोहनीयकर्मकी है।

प्रश्न ५-- अन्तरायकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर-- दान, लाभ आदिमें विघ्न करनेकी प्रकृति अन्तरायकर्मकी है।

प्रश्न ६– वेदनीयकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर– वेदनीयकर्मकी प्रकृति अल्पसुख और बहुत दुःख उत्पन्न करनेकी है।

प्रश्न ७—आयुकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर—प्रतिनियत शरीरमें ही जीवको रोके रहना आयुकर्मकी प्रकृति है।

प्रश्न ८– नामकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर—नानारूपमय शरीरकी रचनामें निमित्त होना नामकर्मकी प्रकृति है।

प्रश्न ९– गोत्रकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर– उच्च अथवा नीच गोत्र करना गोत्रकर्मकी प्रकृति है।

प्रश्न १०– एक समयमें क्या एक प्रकृतिबन्ध होता है या सर्व प्रकृतिबन्ध होता है ?

उत्तर– यदि आयु प्रकृतिबन्ध (अपकर्षका●) नहीं है तो एक समयमें आयुप्रकृतिको छोड़कर ७ कर्मप्रकृतियोंका बन्ध होता है। यदि अपकर्षकाल है तो आठों कर्मप्रकृतियोंका बंध हो सकता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें आयुप्रकृति और मोहनीयप्रकृतिके बिना शेष ६ कर्मप्रकृतियोंका (कर्मोंका) बन्धन होता है। उपशान्तमोह, क्षीणमोह व सयोगकेवलीके केवल एक वेदनीयप्रकृतिका आस्रव होता है। यह एक प्रकृतिबन्ध दूसरे समय भी नहीं ठहरता है, इसलिये इसे आस्रव (ईर्यापथ) आस्रव कहते हैं।

प्रश्न ११—अपकर्षकालका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—आयुकर्मके बंधनेके ८ प्रकार होते हैं– कर्मभूमि मनुष्य व तिर्यञ्चोंके आयु बंधका पहिली बार उनकी वर्तमान आयुके २ बटा ३ भाग बीतनेपर होता है। यदि तब आयु न बंधे तब शेष आयुके दो विभाग बीतनेपर होता है। इस प्रकार शेषके दो त्रिभागोंमें ६ बार और कहना चाहिये।

प्रश्न १२—यदि उन आठ बारोंमें आयु न बंध सके तब कब आयु बंधेगी ?

उत्तर—यदि उन आठ अपकर्षोंमें आयु न बंधे तब अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें अवश्य बंध जावेगी। जिसे मोक्ष जाना है उसके उस चरमभवमें कोई आयु नहीं बंधती।

प्रश्न १३—भोगभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चोंके आठ अपकर्ष कब होते हैं ?

उत्तर—भोगभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चके अन्तिम ६ माह शेष रहनेपर उसके आठ बार दो विभाग करने चाहियें। जैसे पहिली बार दो माह आयु शेष रहनेपर होता है।

प्रश्न १४—अस्थिर भोगभूमियाके नर व तिर्यञ्चोंके अपकर्ष कैसे होते हैं ?

उत्तर– भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें भोगभूमि पहले, दूसरे, तीसरे कालमें होती हैं। ये अस्थिर भोगभूमि कहलाती हैं। अस्थिर भोगभूमि मनुष्य और तिर्यञ्चोंके अपकर्ष उनकी ९ माह आयु शेष रहनेपर ८ बार दो विभागोंमें लगानी चाहिये। जैसे कि इनका पहिली बार ३ माह आयु शेष रहनेपर होता है।

प्रश्न १५—देव व नारकियोंके आयुबन्धके अपकर्ष कब होते हैं ?

उत्तर—देव व नारकियोंके आयुबन्धके अपकर्ष उनकी आयु ६ माह शेष रहनेपर ८ बार दो विभागोंमें लगा लेना चाहिये।

प्रश्न १६—एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवोंका आयुबंधका अपकर्ष कब होता है ?

उत्तर– एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवोंका अपकर्ष कर्मभूमियाकी तरह समस्त आयुके ८ बार दो विभागोंमें लगा लेना चाहिये। जैसे किसीकी आयु ८१ वर्षकी है तो ५४ वर्ष होनेपर आयुबंध हो सकता, तब आयुबन्ध न हो तो फिर ७२ वर्षकी आयुमें आयुबंध हो सकता। तब न बंधे तो फिर ७८ वर्षकी आयुमें आयुबंध हो सकता, तब ८० वर्षकी उम्रमें आयुबंध हो सकता। इस प्रकार पूरे ८ बार कर लेना चाहिये।

प्रश्न १७– क्या एक कर्ममें आवान्तर प्रकृतियाँ भी हो सकती हैं ?

उत्तर– कर्मोंके जो १४८ भेद बताये गये हैं। उनरूप प्रकृतियाँ तो होती ही हैं यह तो स्पष्ट है, किन्तु १४८ प्रकृतियोंमें किसी एक प्रकृतिमें भी आवांतर असंख्यात प्रकृतियां होती हैं। जैसे एक मतिज्ञानावरणको लें, उसमें घटमतिज्ञानावरण, पटमतिज्ञानावरण आदि अनेक प्रकृतियां हो जाती हैं।

प्रश्न १८—स्थितिबंध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीवके प्रदेशोंमें बद्धकर्मस्कन्धोंकी कर्मरूपसे रहनेको, कालकी मर्यादा पड़ जानेको स्थितिबन्ध कहते हैं।

प्रश्न १९– किस कर्मकी कितनी उत्कृष्ट स्थिति होती है ?

उत्तर– ज्ञानाबरण कर्मकी ३० कोड़ाकोड़ीसागर, दर्शनावरणकी ३० कोड़ाकोड़ीसागर, मोहनीयकर्मकी ७० कोड़ाकोड़ीसागर, अन्तरायकर्मकी ३० कोड़ाकोड़ीसागर, वेदनीयकर्मकी, ३० कोड़ाकोड़ीसागर, आयुकर्मकी ३३ सागर, नामकर्मकी २० कोड़ाकोड़ीसागर और गोत्रकर्मकी २० कोड़ाकड़ीसागर उत्कृष्ट स्थिति होती है।

प्रश्न २०–एक कर्मप्रकृतिके जितनी कर्मवर्गणायें बंधती हैं क्या उन सभी वर्गणाओं की उक्त स्थिति होती है ?

उत्तर– आबाधाकालके बाद किन्हीं वर्गणावोंको १ समयकी, किन्हीं वर्गणावोंको २ समयको, किन्हीं वर्गणावोंकी ३ समयकी इत्यादि प्रकारसे १–१ समय बढ़ाकर उत्कृष्ट स्थिति तक लगा लेना चाहिये।

प्रश्न २१—तब किन्हीं वर्गणावोंकी उक्त उत्कृष्ट स्थिति हुई, फिर कर्मसामान्यकी उत्कृष्ट स्थिति कैसे हुई ?

उत्तर– एक समयमें जितनी कार्माणवर्गणायें बंधीं उनमेंसे जो एक प्रकृतिकी हुई, उनमें प्रकृतिकी अपेक्षा अभेद करके उस प्रकृतिकी जो उत्कृष्ट स्थिति होती है उस ही का

उत्कृष्टमें वर्णन किया है।

प्रश्न २२– अबाधाकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर– बद्धकर्मस्कन्ध जितने काल उदयमें नहीं आ सकते उतने कालको अबाधाकाल कहते हैं। यहाँ सामान्य अबाधाकालका प्रकरण है, अतः उस बद्ध कर्मस्कन्धमें से कोई भी वर्गणायें जब तक उदयमें नहीं आ सकतीं उतना अबाधाकाल यहाँ ग्रहण करना।

प्रश्न २३– विशेषरूपसे अबाधाकाल क्या होता है ?

उत्तर—एक समयमें बंधे हुए कर्मस्कन्धोंमें भी भिन्न-भिन्न कर्मवर्गणाओंकी जो-जो स्थिति मिली है उससे पहिलेका काल उन-उन कर्मवर्गणाओंका अबाधाकाल कहलाता है।

प्रश्न २४—कर्मोंकी जघन्यस्थिति क्या है ?

उत्तर—ज्ञानावरणकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, दर्शनावरणकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, मोहनीयकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, अन्तरायकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, वेदनीयकर्मकी १२ मुहूर्त, आयुकर्मकी अंतर्मुहूर्त, नामकर्मकी ८ मुहूर्त और गोत्रकर्मकी ८ मुहूर्त जघन्यस्थिति होती है।

प्रश्न २५– इन जघन्यस्थितियोंको कौन जीव बांधता है ?

उत्तर—आयुकर्मको छोड़कर बाकी सब कर्मोंकी जघन्यस्थितियोंको उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणीमें होने वाले मुनिवृषभ ही बांधते हैं। आयुकर्मकी जघन्यस्थितिको क्षुद्र जन्म वाले जीव बांधते हैं।

प्रश्न २६– अनुभाग बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव प्रदेशोंके साथ बद्ध कर्मस्कन्धोंमें सुख दुःख आदि देनेकी शक्ति विशेषके पड़ जानेको अनुभागबन्ध कहते हैं।

प्रश्न २७— अनुभागके संक्षिप्त प्रकार कितने हैं ?

उत्तर—अनुभागके संक्षिप्त ४ प्रकार हैं—(१) मन्द, (२) मंदतीव्र, (३) तीव्रमंद और (४) तीव्र।

प्रश्न २८– इन ४ प्रकारके अनुभागोंमें तारतम्य किस प्रकार है ?

उत्तर– अनुभागोंका तारतम्य उदाहरण द्वारा बताया जा सकता है। एतदर्थ तीन विभाग करने चाहियें– (१) घातिया कर्मोंका अनुभाग, (२) पुण्यरूप अघातिया कर्मोंका अनुभाग और (३) पापरूप घातिया कर्मोंका अनुभाग।

प्रश्न २९– घातिया कर्मोंके उन चार प्रकारके अनुभागोंके उदाहरण क्या हैं ?

उत्तर– घातिया कर्मोंके अनुभाग लता, दारु (काठ), अस्थि व पाषाणके समान उत्तरोत्तर कोमलसे कठोर फल देने वाले होते गये हैं।

प्रश्न ३०– पुण्यरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग किसके समान हैं ?

उत्तर– पुण्यरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग गुड़, खांड, मिश्री और अमृतके समान उत्तरोत्तर मधुर हैं, फल देने वाले हैं।

प्रश्न ३१-- पापरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग किसके समान हैं ?

उत्तर-- पापरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग नीम, काञ्जीर, विष और हालाहालकें समान उत्तरोत्तर कटुक फल देने वाले हैं।

प्रश्न ३२—प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर– कर्मपरमाणुवोंका परस्पर व जीवप्रदेशोंके साथ बन्ध होनेको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

प्रश्न ३३—एक बारमें कितने कर्मपरमाणुवोंका बन्ध होता है ?

उत्तर—सिद्धोंके अनन्तवें भाग और अभव्योंसे अनन्तगुणे कर्मपरमाणुवोंका एक समयमें बन्ध हो जाता है। यह संख्या इतने लम्बे मापकी है कि एक जीवके साथ इतने कर्मपरमाणुवोंका बन्ध होता है और एक जीवके एक-एक प्रदेशपर इतने कर्मपरमाणुवोंका बन्ध हो जाता है।

प्रश्न ३४– बद्ध कर्मपरमाणुद्रव्योंका किस-किस कर्मप्रकृतिमें कितना विभाग होता है ?

उत्तर—सबसे अधिक वेदनीयकर्ममें, उससे कम मोहनीयकर्ममें, उससे कम ज्ञानावरणमें, ज्ञानावरणके बराबर दर्शनावरणमें, ज्ञानावरणके बराबर अन्तरायकर्ममें, उससे कम नामकर्ममें, नामकर्मके बराबर गोत्रकर्ममें और गोत्रकर्मसे कम आयुकर्ममें बद्ध कर्मस्कन्धके परमाणु बंट जाते हैं।

प्रश्न ३५– इस बंटवारेको कौन करता है ?

उत्तर– यह विभाग स्वयं हो जाता है, इस विभागका भी कारण वही परिणाम है जो बन्धका कारण है। जैसे भोजन करनेके बाद पेटमें जो आहार पहुंचा उसका कितना खून बने, कितना मल बने आदि बंटवारा स्वयं हो जाता है। उसका कारण कहा जा सकता है तो वही जठराग्नि।

प्रश्न ३६—चारों प्रकारके बन्ध किस कारणसे होते हैं ?

उत्तर– प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योगसे होते हैं और स्थितिबन्ध एवं अनुभागबन्ध कषायसे होते हैं।

प्रश्न ३७—योग किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्माके प्रदेशोंके परिस्पन्द होनेको योग कहते हैं।

प्रश्न ३८—योग क्या आत्माका स्वभाव है ?

उत्तर— आत्मप्रदेशपरिस्पन्दरूप योग आत्माका स्वभाव नहीं है, वह तो कर्मोदयवश होता है। योगशक्ति अवश्य गुण या स्वभाव है, सो कर्मोदयसे उसका परिस्पन्द परिणमन होता है और प्रतिनियत कर्मोदयके अभावसे व सर्वथा कर्मोदयके अभावसे उसका निष्क्रिय परिणमन होता है। निश्चयनयसे शुद्ध आत्मप्रदेश निष्क्रिय होते हैं, व्यवहारनयसे सक्रिय होते हैं।

प्रश्न ३९— कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर— जो आत्माको कषे याने दुःख दे अथवा जो निर्दोष परमात्मतत्त्वकी भावना का अवरोध करे उसे कषाय कहते हैं।

प्रश्न ४०— इन बन्धोंके स्वरूप जान लेनेसे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—ये बन्ध आत्माके स्वभाव नहीं हैं और न आत्माके हैं, ऐसा यथार्थ तत्त्व जानकर निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनी चाहिये।

प्रश्न ४१—बन्धके कारण जानकर हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—योग और कषायसे उक्त बन्ध होते हैं, अतः बन्धके विनाशके अर्थ योग और कषायका त्याग करते हुए शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनी चाहिये।

प्रश्न ४२— योग और कषायका त्याग किस प्रकार होगा ?

उत्तर—मैं ध्रुव आत्मा निष्क्रिय और निष्कषाय हूं, इस प्रकारकी प्रीतिपूर्वक भावना से योग और कषायकी उपेक्षा होकर शुद्ध आत्मतत्त्वकी अभिमुखता होती है। इस पुरुषार्थके बलसे योग और कषाय भी समुच्छिन्न हो जाता है।

प्रश्न ४३— योग और कषायमें पहिले कौन नष्ट होता है ?

उत्तर—पहिले कषाय नष्ट होती है पश्चात् योग नष्ट होता है। कषायका सर्वथा नाश दसवें गुणस्थानके अन्तमें हो जाता है।

इस प्रकार बन्धतत्त्वका वर्णन करके अब संवरतत्त्वका वर्णन करते हैं—

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु दव्वस्सावणिरोहणो अण्णो ॥३४॥

अन्वय—जो चेदणपरिणामो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ सो खलु भाव संवरो, दव्व-स्सासवणिरोहणो अण्णो।

अर्थ—जो चेतनपरिणाम कर्मके आस्रवके रोकनेमें कारण है वह निश्चयसे भावसंवर है और द्रव्यास्रवका रुक जाना द्रव्यसंवर है।

प्रश्न १—क्या चेतन परिणाम आते हुए कर्मोंको रोक देता है ?

उत्तर—चेतनपरिणाम आते हुए कर्मोंको तो नहीं रोकता है, किन्तु शुद्ध चेतनपरिणामके निमित्तसे कर्मोंका आना (आस्रव) रुक जाता है याने कर्म आते ही नहीं हैं।

प्रश्न २– शुद्ध चेतनपरिणामकी निष्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तर—अनादि अनन्त, अहेतुक, सहजानन्दमय, निष्प्रकाशमान, ध्रुव, कारणपरमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभावकी भावनासे शुद्ध चेतनपरिणामकी निष्पत्ति होती है।

प्रश्न ३-- शुद्ध चैतन्यस्वभाव अनादि अनन्त कैसे हैं ?

उत्तर– चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव सत् है। सत्की न आदि होती है और न अंत होता है, केवल परिणमन होता रहता है। यहाँ परिणमनपर दृष्टि नहीं है, क्योंकि परिणमन तो समयमात्र रहकर नष्ट होता रहता है, मैं आगे भी रहता हूं। परिणमन समयमात्रको होता है, मैं उससे पहिले भी था, अतः मैं अनादि अनन्त हूँ।

प्रश्न ४– शुद्ध चैतन्यस्वभाव अहेतुक कैसे है ?

उत्तर--चैतन्यस्वभाव स्वतःसिद्ध है, वह किन्हीं कारणोंसे उत्पन्न नहीं हुआ। कारणों से उत्पन्न तो पर्याय होती है, क्योंकि प्रतिविशिष्ट पर्याय जो होती है वह पहिले नहीं थी। मैं अथवा चैतन्यस्वभाव पहिले नहीं था, ऐसा नहीं है। अतः मैं अहेतुक हूं अथवा चैतन्यस्वभाव अहेतुक है।

प्रश्न ५– चैतन्यस्वभाव सहजानन्दमय कैसे है ?

उत्तर—चेतनमें आनन्दगुण सहज है, स्वभावरूप है। आत्माका न तो आनन्दगुण किसी अन्य द्रव्यसे हुआ और न आनन्दका विकास किसी अन्य द्रव्यसे होता है तथा शुद्ध चैतन्यस्वभावकी भावनामें सहज अनुपम परम आनन्द प्रकट होता है, जिससे स्वभावका पूर्ण साक्षात् परिचय मिलता है। अतः चैतन्यस्वभाव सहजानन्दमय है।

प्रश्न ६– चैतन्यस्वभाव नित्य प्रकाशमान कैसे है ?

उत्तर– चैतन्यस्वभाव दर्शनसामान्यात्मक है। यह स्वभाव तो नित्य प्रकाशमान है ही, किन्तु इसका प्रत्यय सम्यग्दृष्टिको होता है। व्यवहारमें भी ज्ञानदर्शनका किसी न किसी रूपमें विकास प्रत्येक जीवमें रहता है, वह चैतन्यस्वभावका ही तो विकास है। अतः चैतन्यस्वभाव नित्य प्रकाशमान है।

प्रश्न ७– चैतन्यस्वभाव ध्रुव क्यों है ?

उत्तर– चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव अविनाशी है, सत् है। सत्का कभी विनाश नहीं होता। अतः चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव ध्रुव है।

प्रश्न ८-- चैतन्यस्वभावको कारणपरमात्मा क्यों कहते हैं ?

उत्तर-- कार्यपरमात्मत्व याने शुद्ध पूर्ण विकास चैतन्यस्वभावका ही परिणमन है,

चैतन्यस्वभावसे ही प्रकट हुआ है, अतः सिद्ध परमात्मतत्त्व चैतन्यस्वभावसे प्रकट होनेके कारण इस चैतन्यस्वभावको कारणपरमात्मा कहते हैं।

प्रश्न ६— अब संवरका परिणाम किस रूप है ?

उत्तर—शुद्ध चेतनभाव रूप है याने अनाद्यनन्त, अहेतुक निज चैतन्यस्वभावकी भावना, उपयोग, अवलम्बन व सहज परिणतिरूप है।

प्रश्न १०—द्रव्यसंवर किसे कहते हैं ?

उत्तर—अब संवरके निमित्तसे होने वाले नूतन द्रव्यकर्मके आनेके अभावको द्रव्यसंवर कहते हैं।

प्रश्न ११—जो कर्म आ ही नहीं रहे हैं उनका संवर क्या ?

उत्तर—कर्म पहिले आया करते थे वे चेतनके परिणामोंके ही निमित्तसे आया करते थे तो अब विरुद्ध चेतनभावके प्रतिपक्षी शुद्ध चेतनभाव हैं सो पूर्वमें आते थे, उसकी अपेक्षासे व अब वे विभावरूप चेतनभाव नहीं हो सकते जो द्रव्यास्रवके कारण बनते। इन सब दृष्टियों से संवर युक्तियुक्त सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न १२— १४८ कर्मप्रकृतियोंका संवर क्या किसीसे कम होता है या यथा तथा ?

उत्तर—गुणविकासके याने गुणस्थानके अनुसार इन १४८ प्रकृतियोंका संवर होता है।

प्रश्न १३—मिथ्यात्व गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्व गुणस्थानमें संवर तो नहीं होता है, किन्तु प्रायोग्यलब्धिके कालमें ३४ बंधापसरण होते हैं।

प्रश्न १४—बन्धापसरण और संवरमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—बन्धापसरण तो मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्रायोग्यलब्धिके समय हो जाता है। वह मिथ्यादृष्टि यदि कारणलब्धि न कर सका तो प्रायोग्यलब्धिसे गिरकर फिर इसी गुणस्थान में बन्ध करने लगता तथा यदि ऊपर गुणस्थानोंमें चढ़ा तो भी इनमेंसे कुछ प्रकृतियोंका कुछ गुणस्थानों तक बन्ध करने लगता। किन्तु जिस प्रकृतिका संवर जिस गुणस्थानमें होता है उसमें व उससे ऊपरके सब गुणस्थानोंमें व अतीत गुणस्थानमें कहीं भी उसका बन्ध नहीं हो सकता। ये बन्धापसरण अभव्यके भी हो सकते हैं, किन्तु संवर कभी नहीं होता।

प्रश्न १५— ये ३४ बन्धापसरण किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्धिके बलसे जब क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धि और देशना-लब्धि प्राप्त करनेके पश्चात् प्रायोग्यलब्धिमें आता है तब वह केवल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति बांधता है अर्थात् एक कोड़ाकोड़ी सागरसे कम स्थिति बांधता है तथा इसके बाद भी

विशुद्धिबलसे स्थितिबन्ध उत्तरोत्तर कम बांधता है। इन्हीं कम स्थितिबन्धोंके अवसरोंमें १-१ करके ३४ बन्धापसरण होते हैं अर्थात् उन प्रकृतियोंकी जिनका निर्देश अभी किया जायगा बंघव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न १६– प्रथम बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—उक्त अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे भी कम-कम बन्ध होते-होते जब शत पृथक्त्व सागर (३०० से ६०० सागरके बीच) कम बन्ध होने लगता है तब नरकायुका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न १७—द्वितीय बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—प्रथम बन्धापरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब तिर्यगायुका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न १८—तृतीय बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—द्वितीय बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्व सागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब मनुष्यायुका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न १९– चतुर्थ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– तृतीय बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम होते-होते जब शतपृथक्त्व-सागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब देवायुका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न २०– पञ्चम बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– चतुर्थबन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम कम बंध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब नरकगति व नरकगत्यानुपूर्व्य– इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २१– षष्ठ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– पञ्चम बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम-कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्ति व साधारण, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ बंधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २२-- सप्तम बंधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– षष्ठ बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम-कम बंध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ बंधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न २३– अष्टम बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– सप्तम बंधापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथ-

क्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त, बादर, अपर्याप्ति, साधारणशरीर, इन तीन प्रकृतियोंका बंधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न २४– नवम बंधापसरण किसका और जब होता है ?

उत्तर—अष्टम बंधापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध रह जाता है तब बादर, अपर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ बंधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २५– दशम बंधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– नवम बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त द्वीन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति, इन दो प्रकृतियोंका एक साथ बंधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २६—११वां बंधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—दशम बंधापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बंध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त त्रीन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति—इन दो प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २७—१२वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर-- ११वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होतें-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त चतुरिन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति, इन दोनों प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २८– १३वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—१२वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति व अपर्याप्ति—इन दोनों प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २९—१४वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—१३वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति, इन दोनों प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३०– १५वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– १४वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त सूक्ष्म, पर्याप्ति, साधारण शरीर इन तीन प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३१—१६वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— १५वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब सूक्ष्म, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन परस्परसंयुक्त तीन प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ३२— १७वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर— १६वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब वादर, पर्याप्ति, साधारण शरीर, इन परस्परसंयुक्त तीन प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ३३—१८वां बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर— १७वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब वादर, पर्याप्ति, प्रत्येकशरीर, एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर, इन परस्परसंयुक्त छः प्रकृतियोंका बन्धापसरण हो जाता है।

प्रश्न ३४— १९वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—१८वें बंधापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त द्वीन्द्रियजाति व पर्याप्ति, इन दो प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३५—२०वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर— १९वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त त्रीन्द्रियजाति व पर्याप्ति, इन दोनों प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३६—२१वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—२०वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त चतुरिन्द्रियजाति व पर्याप्ति, इन दो प्रकृतियोंका बन्धापसरण हो जाता है।

प्रश्न ३७— २२वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—२१वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जाति व पर्याप्ति, इन परस्परसंयुक्त दोनों प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ३८— असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म तो कोई नहीं है ?

उत्तर—प्रकृतियाँ सब १४८ ही नहीं हैं, उन १४८ प्रकृतियोंके और भी आवान्तर

भेद हो जाते हैं जो कि असंख्यात और अनन्त तक हो जाते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जाति व संज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति, ये दोनों पंचेन्द्रियजाति नामकर्मके भेद हैं।

प्रश्न ३६—२३वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—२२वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य और उद्योत, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ बन्धापसरण हो जाता है।

प्रश्न ४०—२४वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर— २३वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब नीच गोत्रकर्मका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४१— २५वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—२४वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम बन्ध हो जाता है तब अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर व अनादेय, इन चारों प्रकृतियोंका एक साथ बंधापसरण हो जाता है।

प्रश्न ४२—२६वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—२५वें बन्धापरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब हुंडकसंस्थान व असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४३—२७वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—२६वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्व सागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब नपुंसकवेदका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ४४— २८वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— २७वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब वामनसंस्थान और कीलितसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४५— २९वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— २८वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बंध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब कुब्जकसंस्थान व अर्द्धनाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४६— ३०वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— २९वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बंध होते-होते जब शतपृथ-

क्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब स्त्रीवेदमोहनीयकर्मका बंधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ४७– ३१वां बंधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– ३०वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बंध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब स्वातिसंस्थान व नाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४८– ३२वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– ३१वें बंधापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथ-क्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान व वज्रनाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४९– ३३वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर– ३२वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक अङ्गो-पाङ्ग, वज्रऋषभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, इन पाँचों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ५०—३४वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—३३वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बंध होते होते जब शतपृथ-क्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, इन छः प्रकृतियोंका एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ५१—यह ३४ बन्धापसरण कब तक रहते हैं ?

उत्तर—इन ३४ बंधापसरणोंको करने वाले जीवके या तो मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्त हो जाय याने सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाये या प्रायोग्यलब्धिसे पतन हो जाय, इससे पहिले तक ३४ बंधापसरण बने रहते हैं।

प्रश्न ५२– सासादनसम्यक्त्व गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर—सासादनसम्यक्त्व नामक दूसरे गुणस्थानमें १६ प्रकृतियोंका संवर होता है। वे १६ प्रकृतियाँ ये हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) नपुंसकवेद, (३) नरकायु, (४) नरकगति, (५) एकेन्द्रियजाति, (६) द्वीन्द्रियजाति, (७) त्रीन्द्रियजाति, (८) चतुरिन्द्रियजाति, (९) हुंडक-संस्थान, (१०) असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, (११) नरकगत्यानुपूर्व्य, (१२) आतप, (१३) साधा-रणशरीर, (१४) सूक्ष्म, (१५) अपर्याप्त और (१६) स्थावर।

प्रश्न ५३—सासादन सम्यक्त्वमें इन १६ प्रकृतियोंका संवर क्यों होता है ?

उत्तर—इन १६ प्रकृतियोंके आस्रव, बन्धका कारण मिथ्यात्वभाव है। सासादन-

सम्यक्त्वमें मिथ्यात्वभाव है नहीं, अतएव अशुभोपयोगकी मन्दता होनेसे इन प्रकृतियोंका यहाँ संवर होता है।

प्रश्न ५४– मिश्रसम्यक्त्व गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर– तीसरे गुणस्थानमें ४१ प्रकृतियोंका संवर होता है। इनमेंसे सोलह प्रकृतियां तो पूर्व संवृत हैं, बाकी २५ प्रकृतियां ये हैं—(१) निद्रानिद्रा, (२) प्रचलाप्रचला, (३) स्त्यानगृद्धि, (४) अनन्तानुबंधी क्रोध, (५) अन० मान, (६) अन० माया, (७) अन० लोभ, (८) स्त्रीवेद, (९) तिर्यगायु, (१०) तिर्यग्गति, (११) न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, (१२) स्वातिसंस्थान, (१३) वामनसंस्थान, (१४) कुब्जकसंस्थान, (१५) वज्रनाराचसंहनन, (१६) नाराचसंहनन, (१७) अर्द्धनाराचसंहनन, (१८) कीलकसंहनन, (१९) तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, (२०) उद्योत, (२१) अप्रशस्तविहायोगति, (२२) दुर्भग, (२३) दुःस्वर, (२४) अनादेय और (२५) नीचगोत्र।

प्रश्न ५५– इन २५ प्रकृतियोंका मिश्रसम्यक्त्व गुणस्थानमें क्यों संवर होता ?

उत्तर– इन पच्चीस प्रकृतियोंके बन्धका कारण अनन्तानुबन्धी कषायका उदय है। इस तीसरे गुणस्थानमें अनन्तानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व नहीं हैं, अतः इन प्रकृतियोंके आस्रवका कारण न होनेसे सम्वर हो जाता है।

प्रश्न ५६—अनन्तानुबंधी कषाय यहां क्यों नहीं होती ?

उत्तर– सम्यग्मिथ्यात्व परिणामके होनेपर अशुभोपयोगकी अत्यन्त मन्दता होनेसे अनन्तानुबन्धी कषाय हो नहीं सकती।

प्रश्न ५७– अविरत सम्यक्त्वगुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सम्वर होता है ?

उत्तर—अविरत सम्यक्त्व नामक चौथे गुणस्थानमें पूर्वोक्त ४१ प्रकृतियोंका संवर होता है। यहां इस संवरका कारण सम्यक्त्वपरिणाम है। इस गुणस्थानमें अनंतानुबंधी कषाय ४ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, इन सात प्रकृतियोंके उपशम, क्षय या क्षयोपशम के कारण अशुभोपयोगका अभाव हो जाता है और शुद्धोपयोगसाधक शुभोपयोग प्रकट हो जाता है।

प्रश्न ५८—देशविरत गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर—देशविरत गुणस्थानमें ५१ प्रकृतियोंका सम्वर होता है। इनमें ४१ तो पूर्व संवृत हैं और १० प्रकृतियां ये हैं—(१-४) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (५) मनुष्यायु, (६) मनुष्यगति, (७) औदारिकशरीर, (८) औदारिक अङ्गोपाङ्ग, (९) वज्रऋषभनाराचसंहनन और (१०) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य।

प्रश्न ५९—देशविरतमें इन १० प्रकृतियोंका संवर क्यों हो जाता है ?

उत्तर—देशसंयम (संयमासंयम) का भाव होनेपर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कषायें नहीं रह सकतीं। देशविरत परिणाम सम्यक्त्व होनेपर ही मनुष्य तिर्यंच के होता है। सो इनके सम्यक्त्व होनेके कारण आयु बन्धती है तो देवायु ही बन्धती है, अतः देशविरत देवगति सिवाय अन्य भवोंमें जाता नहीं है, अतः मनुष्यायुसे सम्बन्ध रखने वाली ६ प्रकृतियोंका भी संवर हो जाता है।

प्रश्न ६०-- सम्यक्त्व तो चौथे गुणस्थानमें भी है, वहां इन ६ प्रकृतियोंका संवर क्यों नहीं है ?

उत्तर—चौथा गुणस्थान तो देव व नारकियोंके भी होता है। सम्यग्दृष्टि देव या नारकी मरणकर देवगतिमें नहीं जा सकते हैं, ऐसा प्राकृतिक नियम है। वे मनुष्यगतिमें ही उत्पन्न होते हैं। अतः चौथे गुणस्थानमें इन ६ प्रकृतियोंका संवर नहीं कहा। विशेष अपेक्षासे तो चौथे गुणस्थानके मनुष्य तिर्यञ्चोंके आयु न बंधी हो तो सम्यक्त्व होनेके कारण उनके भी देवायु ही बंधती है और इस तरह उस चतुर्थगुणस्थानवर्ती मनुष्यतिर्यञ्चके भी इन ६ प्रकृतियोंका संवर होता है।

प्रश्न ६१— प्रमत्तविरत गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर—प्रमत्तविरत गुणस्थानमें ५५ प्रकृतियोंका संवर होता है। इनमें ५१ तो पूर्व संवृत हैं और चार ये हैं– (१) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, (२) प्रत्याख्यानावरण मान, (३) प्रत्याख्यानावरण माया, (४) प्रत्याख्यानावरण लोभ।

प्रश्न ६२— प्रमत्तविरतमें इन ४ प्रकृतियोंका संवर क्यों होता है ?

उत्तर— प्रमत्तविरत गुणस्थानमें सकलसंयम प्रकट हैं। सकलसंयमका परिणाम प्रकट होनेपर सकलसंयमके प्रतिपक्षी इन ४ प्रकृतियोंका आस्रव हो नहीं सकता।

प्रश्न ६३— अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर— अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें ६१ प्रकृतियोंका संवर होता है। इनमें ५५ प्रकृतियां तो पूर्वसंवृत हैं और ६ प्रकृतियां ये हैं—(१) असातावेदनीय, (२) अरतिमोहनीय, (३) शोकवेदनीय, (४) अशुभनामकर्म, (५) अस्थिरनामकर्म और (६) अयशःकीर्तिनामकर्म।

प्रश्न ६४—अप्रमत्तविरतमें इन ६ प्रकृतियोंका संवर क्यों हो जाता है ?

उत्तर—अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें संज्वलनकषायका उदय मन्द हो जानेसे प्रमाद नहीं रहा। अप्रमत्तविरत अवस्थामें इन छः प्रकृतियोंका आस्रव हो नहीं सकता।

प्रश्न ६५—अपूर्वकरणमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर—अपूर्वकरण गुणस्थानमें ६२ प्रकृतियोंका संवर होता है। इनमेंसे ६१ प्रकृ-

तियां तो पूर्व संवृत हैं और एक प्रकृति देवायु है।

प्रश्न ६६—आठवें गुणस्थानमें देवायुका संवर क्यों होता है ?

उत्तर—श्रेणीके परिणाम इतने निर्मल होते हैं कि उनके कारण श्रेणियोंमें किसी भी आयुका आस्रव नहीं होता। अन्य आयुकर्मोंका तो संवर पहले, दूसरे व ५वें गुणस्थानमें बता दिया था, शेष रही देवायुका यहां सम्वर हो जाता है।

प्रश्न ६७—अनिवृत्तिकरणमें कितनी प्रकृतियोंका सम्वर होता है ?

उत्तर—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें ६८ प्रकृतियोंका सम्वर होता है। इनमें ६२ प्रकृतियां तो पूर्वसंवृत हैं और ३६ प्रकृतियां ये हैं– (१) निद्रा, (२) प्रचला, (३) हास्य, (४) रति, (५) भय, (६) जुगुप्सा, (७) देवगति, (८) पंचेन्द्रियजाति, (९) वैक्रियक शरीर, (१०) वैक्रियक अंगोपांग, (११) आहारक शरीर, (१२) आहारकांगोपांग, (१३) औदारिक शरीर, (१४) औदारिकांगोपांग, (१५) निर्माण, (१६) समचतुरस्रसंस्थान, (१७) स्पर्श, (१८) रस, (१९) गंध, (२०) वर्णनामकर्म, (२१) देवगत्यानुपूर्व्य, (२२) अगुरुलघु, (२३) उपघात, (२४) परघात, (२५) उच्छ्वास, (२६) प्रशस्तविहायोगति, (२७) प्रत्येकशरीर, (२८) त्रस, (२९) वादर, (३०) पर्याप्ति, (३१) शुभ, (३२) सुभग, (३३) सुस्वर, (३४) स्थिर, (३५) आदेयनामकर्म, (३६) तीर्थङ्करनामकर्म।

प्रश्न ६८—नवमे गुणस्थानमें ३६ प्रकृतियोंका क्यों संवर है ?

उत्तर—उपशमक अथवा क्षपक अनिवृत्तिकरण परिणामोंकी विशेषताके कारण उक्त प्रकृतियोंका संवर है। अपूर्वकरण परिणामोंमें भी उत्तरोत्तर विशेषता थी, जिसके कारण अपूर्वकरण गुणस्थानमें ही कुछ समय पश्चात् उक्त ३६ प्रकृतियोंमें से २ और कुछ समय पश्चात् ३० प्रकृतियोंका संवर हो गया था।

प्रश्न ६९—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर होता है ?

उत्तर– दसवें गुणस्थानमें १०३ प्रकृतियोंका संवर होता है। इनमें ९८ प्रकृतियां तो पूर्व संवृत हैं व ५ प्रकृतियां ये हैं– (१) संज्वलन क्रोध, (२) संज्वलन मान, (३) संज्वलन माया, (४) संज्वलन लोभ, (५) पुरुषवेद।

प्रश्न ७०– दसवें गुणस्थानमें इन ५ प्रकृतियोंका सम्वर क्यों है ?

उत्तर– सूक्ष्मलोभके अतिरिक्त सर्वकषायोंके अभावसे मोहनीयकर्मकी अवशिष्ट, इन ५ प्रकृतियोंका सम्वर होता है। अनिवृत्तिकरण परिणामोंकी विशेषतासे भी उक्त ५ प्रकृतियों में से अनिवृत्तिकरणके दूसरे भागमें पुरुषवेद, तीसरे भागमें संज्वलनक्रोध, चौथे भागमें संज्वलन मान, पांचवें भागमें संज्वलन माया नामक मोहनीयकर्मका सम्वर हो गया था।

प्रश्न ७१—उपशान्तमोहमें कितनी प्रकृतियोंका सम्वर है ?

उत्तर—उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें ११६ प्रकृतियोंका सम्वर होता है। इनमें १०३ प्रकृतियां तो पूर्वसंवृत हैं, शेष १६ प्रकृतियां ये हैं– (१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण, (४) मनःपर्ययज्ञानावरण, (५) केवलज्ञानावरण, (६) चक्षुर्दर्शनावरण, (७) अचक्षुर्दर्शनावरण, (८) अवधिज्ञानावरण, (९) केवलदर्शनावरण, (१०) यशःकीर्तिनामकर्म, (११) उच्चगोत्रकर्म, (१२) दानान्तराय, (१३) लाभान्तराय, (१४) भोगान्तराय, (१५) उपभोगान्तराय और (१६) वीर्यान्तराय।

प्रश्न ७२—उपशान्तमोहमें उक्त १६ प्रकृसियोंका संवर क्यों होता है ?

उत्तर– समस्त मोहके अभावसे होने वाली वीतरागताके कारण केवल सातावेदनीय को छोड़कर सर्वप्रकृतियोंका सम्वर हो जाता है।

प्रश्न ७३– यहां सातावेदनीयका सम्वर क्यों नहीं होता ?

उत्तर—यद्यपि वीतरागता हो गई, किन्तु योगका सद्भाव है। कारण याने योगोंके सद्भावसे सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव होता है।

प्रश्न ७४—उपशान्तमोहमें सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव क्यों है ?

उत्तर—साम्परायिक आस्रव कषाय होनेपर ही होता है। योगसे आस्रव तो होता है, किन्तु आकर तुरन्त खिर जाता है। कषाय न होनेसे स्थितिबंध नहीं होता। अतः उपशान्त-मोहमें केवल सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव है।

प्रश्न ७५– क्षीणमोहमें कितनी प्रकृतियोंका सम्वर होता है ?

उत्तर– क्षीणमोह गुणस्थानमें भी उक्त प्रकारसे ११६ प्रकृतियोंका सम्वर होता है।

प्रश्न ७६– सयोगकेवलीमें कितनी प्रकृतियोंका सम्वर होता है ?

उत्तर– सयोगकेवली गुणस्थानमें भी उक्त ११६ प्रकृतियोंका सम्वर है।

प्रश्न ७७—अयोगकेवली गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सम्वर है ?

उत्तर—अयोगकेवली गुणस्थानमें १२० प्रकृतियोंका संवर होता है। इनमें ११६ तो पूर्व संवृत हैं और एक सातावेदनीयका भी संवर होता है।

प्रश्न ७८-- यहाँ सातावेदनीयका संवर क्यों हो जाता है ?

उत्तर—योगका अभाव रहनेसे यहां अवशिष्ट सातावेदनीयका संवर होता है।

प्रश्न ७९—शेष २८ प्रकृतियोंका कहां संवर होता है ?

उत्तर—शेष २८ प्रकृतियोंमें २ तो दर्शनमोहनीय हैं– (१) सम्यग्मिथ्यात्व और (२) सम्यक्प्रकृति। ५ बन्धननामकर्म हैं, ५ संघातनामकर्म हैं, ६ स्पर्शादि सम्बन्धी हैं। इनमें से सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिका तो आस्रव ही नहीं होता, इसलिये उनके सम्वरका वहां प्रश्न ही नहीं है। ५ बन्धन, ५ संघातनामकर्मोंका शरीरमें अन्तर्भाव किया है, सो जहां

शरीरनामकर्मोंका संवर होता है नहीं उसी नाम वाले बन्धन व संघातनामकर्मोंका संवर होता है।

स्पर्शादि नामकर्म २० हैं, उन्हें मूल नामसे ४ मानकर ४ का संवर बताया है। इस तरह १६ नम्बर कम रहते थे, सो जहाँ (नवमे गुणस्थानमें) इन ४ का संवर बताया सो २० का ही संवर समझना।

प्रश्न ८०—अतीतगुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका संवर है ?

उत्तर—अतीतगुणस्थानमें (सिद्ध भगवान) में समस्त कर्म प्रकृतियोंका सदाके लिये संवर रहता है। क्योंकि अत्यन्त निर्मल, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे मुक्त सर्वथा शुद्ध वहाँ शुद्धोपयोग बर्तता रहता है।

प्रश्न ८१—संवरकी विशेषतामें क्या उपयोगकी विशेषता कारण नहीं है ?

उत्तर—उपयोगकी विशेषताका भी कारण मोहका भाव व अभाव है। संवरप्रदर्शक उपयोगके प्रकारसे भी मोहका तारतम्य व अभाव समझना चाहिये।

प्रश्न ८२—उपयोगके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर— उपयोगके ३ प्रकार हैं— (१) अशुभोपयोग, (२) शुभोपयोग और (३) शुद्धोपयोग।

प्रश्न ८३—अशुभोपयोग किन गुणस्थानोंमें है ?

उत्तर—मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व और मिश्रसम्यक्त्व, इन तीन गुणस्थानोंमें ऊपर ऊपर मन्द मन्द रूपसे होता हुआ अशुभोपयोग है।

प्रश्न ८४— शुभोपयोग किन गुणस्थानोंमें है ?

उत्तर— अविरतसम्यक्त्व, देशविरत और प्रमत्तविरत, इन तीन गुणस्थानोंमें ऊपर ऊपर शुद्धोपयोगकी साधकताके विशेषसे होता हुआ शुभोपयोग है।

प्रश्न ८५— शुद्धोपयोग किन गुणस्थानोंमें है ?

उत्तर—शुद्धोपयोग दो प्रकारोंमें होता है— (१) एकदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग, (२) सर्वदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग। इनमेंसे एकदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग अप्रमत्तविरत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान तक ऊपर ऊपर बढ़ती हुई निर्मलताको लिये हुए होता है।

प्रश्न ८६— इसे एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग क्यों कहते हैं ?

उत्तर— इस शुद्धोपयोगमें शुद्ध चैतन्यस्वभावस्वरूप निज आत्मा ध्येय रहता है और इसका आलम्बन भी होता है। इस कारण यह उपयोग शुद्धोपयोग तो है, किन्तु केवल ज्ञानरूप शुद्धोपयोगकी तरह शुद्ध नहीं है, अतः इसे एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग कहते हैं।

प्रश्न ८७— सर्वदेशनिरावरण अथवा शुद्धोपयोग किन गुणस्थानोंमें से होता है ?

उत्तर— सर्वदेशनिरावरण अथवा पूर्ण शुद्धोपयोग सयोगकेवली व अयोगकेवली, इन दो गुणस्थानोंमें तथा अतीत गुणस्थानमें पूर्ण शुद्धोपयोग होता है। इस पूर्ण शुद्धोपयोगका कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग है।

प्रश्न ८८— पूर्णशुद्धोपयोगका कारण एकदेशशुद्धोपयोग क्यों है ?

उत्तर— अशुद्धपर्याय वाले आत्माको शुद्ध होना है। अशुद्धके अवलम्बनसे अशुद्धता और शुद्धके अवलम्बनसे शुद्धता प्रकट होती है। यह आत्मा अभी तो शुद्ध है नहीं, फिर किस के अवलम्बनसे शुद्धता प्रकट हो ? तथ्य यहाँ यह है कि आत्मा स्वभावदृष्टि या द्रव्यदृष्टिसे एक स्वरूप चैतन्यमात्र जाना जाता है। वह स्वभाव न सकषाय है, न अकषाय है, ऐसा स्वभावमात्र शुद्ध है। इस शुद्ध आत्मतत्त्वका जो उपयोग है यह पुरुषार्थ उत्तरोत्तर दृढ़तासे शुद्ध का उपयोग करता हुआ स्वयं शुद्ध उपयोग हो जाता है। वह शुद्ध तत्त्वका उपयोग पूर्ण शुद्धोपयोग तो है नहीं और अशुद्धोपयोग भी नहीं, किन्तु शुद्ध तत्त्वका भाव, आलम्बन शुद्धताके के यथायोग्य परिणमनके कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग कहा जाता है।

प्रश्न ८९—मुक्तिका कारण कौनसा उपयोग है ?

उत्तर— मुक्तिका कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग है, क्योंकि पूर्ण शुद्धोपयोग तो मुक्तिरूप ही है और अशुभोपयोगरूप मोक्षका कारण नहीं हो सकता तथा मिथ्यात्वके साथ रहने वाला शुभोपयोग भी शुद्धोपयोगका कारण हो नहीं सकता। अतः एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ही मुक्तिका कारण है।

प्रश्न ९०—शुद्धोपयोग साधक शुभोपयोग जो कि चौथे गुणस्थानसे छठे गुणस्थान तक कहा गया है वह मुक्तिका कारण है कि नहीं ?

उत्तर—इस शुभोपयोगमें शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्रतीति तो निरन्तर है और शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना व अवलम्बन भी यथासमय अल्प समयको होती रहती है। अतः यहाँ भी एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग पाया जाता है, किन्तु यहाँ शुद्ध आत्मतत्त्वके अवलम्बनकी स्थिति कदाचित् होनेसे शुभोपयोगकी मुख्यता है। वस्तुतः तो यहां भी रहने वाला एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग और शुद्धात्मतत्त्वकी प्रतीतिरूप शुद्धोपयोग मुक्तिका कारण है।

प्रश्न ९१— साक्षात् मुक्तिका कारण कौनसा उपयोग है ?

उत्तर—उत्कृष्ट एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग मुक्तिका कारण है। उससे पहिलेके समस्त एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग परम्परया मुक्तिके कारण हैं अथवा उनके पश्चात् ही उत्तरसमय में होने वाली एकदेश मुक्तिके कारण हैं।

प्रश्न ९२— तब तो एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ही उपादेय व ध्येय होना चाहिये ?

उत्तर—एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग क्षायोपशमिक भाव है, वह स्वयं शुद्ध भाव नहीं है, किन्तु शुद्धाशुद्धरूप है, अपूर्ण है। यह ध्येय अथवा उपादेय नहीं है। एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोगका विषयभूत अखण्ड, सहजनिरावरण परमात्मस्वरूप ध्येय और उपादेय है, खण्डज्ञानरूप यह एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ध्येय व उपादेय नहीं है। इस अपूर्ण शुद्धोपयोगके ध्यान से यह एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग होता भी नहीं है।

प्रश्न ६३—इस उक्त समस्त वर्णनसे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयके विषयभूत अखण्ड निजस्वभावकी दृष्टि करके अपने आपकी इस प्रकार स्वरूपाचरण सहित भावना होनी चाहिये– मैं सर्व अन्य पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा हूं, अपने ही गुणोंमें तन्मय हूं, त्रैकालिक चैतन्यस्वभावमय हूं, स्वतःसिद्ध हूँ, अनादि शुद्ध हूं, सहजसिद्ध हूं, निरंजन हूं, ज्ञानानन्दस्वरूप हूं इत्यादि।

प्रश्न ६४– आत्माके शुद्धस्वरूपकी भावनाका क्या फल है ?

उत्तर– शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना, आश्रयसे निर्मल पर्याय प्रकट होता है जो कि सहज आनन्दका पुञ्ज है।

प्रश्न ६५– संसार-अवस्थामें आत्मा शुद्ध तो है नहीं, फिर असत्यकी भावना मोक्षमार्ग कैसे हो सकता ?

उत्तर– सामान्य स्वभाव, द्रव्यदृष्टिसे परखा गया स्वभाव आत्मामें अन्तः सदा प्रकाशमान है। वह तो अन्योपयोगसे तिरोभूत हुआ था, किन्तु इस ही के उपयोगमें यह स्वभाव प्रत्यक्ष हो जाता है।

इस प्रकार संवरके लक्षणोंका वर्णन करके भावसंवरके कारणरूप भावसंवरके भेदों को कहते हैं–

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं वहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

अन्वय– वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहापरीसहजओ य चारित्तं वहुभेया भावसंवर विसेसा णायव्वा।

अर्थ– व्रत समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र बहुत भेद वाले ये सब भावसंवरके विशेष जानना चाहिये।

प्रश्न १– व्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—शुद्ध चैतन्यस्वभावमय निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनासे शुभ अशुभ समस्त रागादि विकल्पोंकी निवृत्ति हो जाना व्रत है।

प्रश्न २– इस व्रतकी साधनाके उपाय क्या हैं ?

उत्तर— व्रतसाधनके उपायभूत व्यवहारव्रत ५ प्रकारके हैं—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अचौर्य, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह।

प्रश्न ३—अहिंसाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने व परप्राणियोंके प्राणोंका घात नहीं करना, पीड़ा नहीं पहुंचाना तथा संक्लेश व दुर्भाव नहीं करना, सो अहिंसाव्रत है।

प्रश्न ४—सत्यव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वपरके अहित करने वाले विपरीत वचन नहीं बोलना और न ऐसे वचन बोलनेका भाव करना, सो सत्यव्रत है।

प्रश्न ५—अचौर्यव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर— किसीकी अधिकृत वस्तुको उसकी हार्दिक स्वीकृतिके बिना न लेने और किसी भी परपदार्थको अपना न समझनेको अचौर्यव्रत कहते हैं।

प्रश्न ६— ब्रह्मचर्यव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर—मैथुनके परित्याग करने व तद्विषयक सभी प्रकारकी वाञ्छावोंके न करनेको ब्रह्मचर्यव्रत कहते हैं।

प्रश्न ७—अपरिग्रहव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर— हिंसाके परिहारके लिये कोमल पीछी, शुद्धिके लिये कमण्डल व ज्ञानवृद्धिके लिये २-१ पुस्तकके अतिरिक्त किसी भी प्रकारकी वस्तु न रखने और समस्त परपदार्थोंमें मूर्च्छा (ममत्व) न करनेको अपरिग्रहव्रत कहते हैं।

प्रश्न ८— ये ५ प्रकारके व्रत भावसंवरके विशेष क्यों हैं ?

उत्तर— इन पांच प्रकारके व्रतोंके आचरणसे शुद्धोपयोगकी साधना सुगम है, अतः ये भावसंवरके विशेष हैं। यदि व्रतोंके पालनके विकल्प तक ही परिणाम हों तो वह भावसंवर नहीं हैं, किन्तु शुभ आस्रव हैं।

प्रश्न ९— समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर—चैतन्यस्वभावमय निज परमात्मतत्वमें सम् सम्यक् भले प्रकारसे अर्थात् रागादिनिरोधपूर्वक स्वभावलीनतासे पहुंचनेको समिति कहते हैं।

प्रश्न १०— इस समितिके साधनाके अर्थ व्यावहारिक कर्तव्य क्या हैं ?

उत्तर— समितिसाधनके उपायभूत व्यवहारसमति ५ हैं– (१) ईर्यासमिति, (२) भाषासमिति, (३) ऐषणासमिति, (४) आदाननिक्षेपणसमिति और (५) प्रतिष्ठापनासमिति।

प्रश्न ११— ईर्यासमिति किसे कहते हैं ?

उत्तर—साधूचित कर्मके लिये सूर्यप्रकाशमें चार हाथ आगे जमीन देखते हुए उत्तम भावसहित चलनेको ईर्यासमिति कहते हैं।

प्रश्न १२– भाषासमिति किसे कहते हैं ?

उत्तर—हित मित प्रिय वचन बोलनेको भाषासमिति कहते हैं।

प्रश्न १३—ऐषणासमिति किसे कहते हैं ?

उत्तर-- आत्मचर्याकी साधनाका भाव रखने वाले साधुकी ४६ दोषरहित व १४ मलरहित एवं अधःकर्म और दोषरहित तथा ३२ अन्तराय टालकर निर्दोष आहार करनेकी चर्याको ऐषणासमिति कहते हैं।

प्रश्न १४– आहारसम्बन्धी ४६ दोष कौन-कौन होते हैं।

उत्तर—उद्गमदोष १६, उत्पादनदोष १६, अशनदोष १०, मुक्तिदोष ४, इस प्रकार ४६ दोष आहारसम्बन्धी होते हैं।

प्रश्न १५– उद्गमदोष कौन-कौन हैं ?

उत्तर—(१) उद्दिष्ट, (२) साधिक, (३) पूति, (४) मिश्र, (५) प्राभृत, (६) बलि, (७) न्यस्त, (८) प्रादुष्कृत, (९) क्रीत, (१०) प्रामित्य, (११) परिवर्तित, (१२) निषिद्ध, (१३) अभिहृत, (१४) उद्भिन्न, (१५) आच्छेद्य, (१६) आरोह-- ये १६ उद्गमदोष हैं।

प्रश्न १६– उद्दिष्टदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– किसी भी वेश वाले गृहस्थों, सर्व पाखण्डियों, सर्वपार्श्वस्थों या सर्वसाधुवोंके उद्देश्यसे बनाये हुए भोजनको उद्दिष्ट कहते हैं।

प्रश्न १७—उद्दिष्टमें क्या दोष हो जांता है ?

उत्तर– श्रावककी प्रवृत्ति अतिथिसंविभागकी होती है। श्रावक अपने आहारको स्वयं इस प्रकार बनाता है कि वह एक पात्रको दान देकर भोजन किया करे। मुनि इस प्रकार श्रावकके लिये बने हुए भोजनका अधिकारी हो सकता है। इसके विपरीत बने हुए भोजनमें आरम्भ विशेष होनेसे उस उद्दिष्ट भोजनके आहारमें सावद्यका दोष हो जाता है।

प्रश्न १८– साधिक दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– यदि दाता अपने लिये पकते हुये भोजनमें मुनियोंको दान देनेके अभिप्रायसे और अन्नादि डाल देनेको साधिक दोष कहते हैं अथवा भोजन तैयार होनेमें देर हो तो पूजा या धर्मादिक प्रश्नके छलसे साधुके रोक लेनेको साधिक दोष कहते हैं।

प्रश्न १९–साधिकमें क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर– इस आरम्भमें भी साधुका निमित्त हो जानेका दोष हो जाता है।

प्रश्न २०—पूति दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर-- पूति दोषके दो प्रकार हैं-- (१) अप्रासुमिश्रण, (२) पूतिकर्मकल्पना। प्रासुक वस्तुमें अप्रासुक वस्तु मिला देनेको अप्रासुमिश्रण कहते हैं और ऐसी कल्पना करनेको "कि इस बर्तन द्वारा अथवा इस बर्तनमें पके हुए भोजनका या अमुक भोजनका दान जब तक साधुवों को न हो जाय तब तक इसका उपयोग नहीं किया जाय" पूतिकर्मकल्पना दोष कहते हैं। इसी तरह चक्की, ओखली, जूता आदिके सम्बन्धमें भी कल्पना करनेको भी पूतिकर्मकल्पना दोष कहते हैं।

प्रश्न २१– पूतिमें क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर—इसमें अप्रासुमिश्रणमें तो हिंसाका दोष तथा पूतिकर्मकल्पनामें साधुके निमित्त के सम्बन्धका दोष हो जाता है।

प्रश्न २२—मिश्रदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– प्रासुक भी आहार हो तो भी यदि पाखंडियों और गृहस्थोंके साथ-साथ साधुवों को देनेकी बुद्धिसे बनाया हुआ भोजन हो तो उसे मिश्रदोष सहित कहते हैं।

प्रश्न २३—इस मिश्रमें क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर—इसमें असंयमियोंसे स्पर्श, दीनता व अनादर आदि होनेका दोष हो जाता है।

प्रश्न २४—प्राभृत दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्राभृत दोष दो प्रकारके होते हैं– एक तो वादरप्राभृत और दूसरा सूक्ष्मप्राभृत।

ऐसा संकल्प करके कि मैं अमुक माह आदिकी अमुक तिथिको अतिथिसंविभागव्रत पालूंगा, फिर उस तिथिके बदले पहिले या बादमें दान देना, सो वादरप्राभृत दोष है।

ऐसा संकल्प करके कि दिनके पूर्वभागमें उत्तरभागमें पात्र दान करूंगा, फिर उस समयके बाद या पहिले पात्र दान करना सूक्ष्मप्राभृत दोष है।

प्रश्न २५—प्राभृतदोषमें क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर– इस वृद्धि हानिसे परिणामोंकी संक्लेशता उत्पन्न हो जाती है।

प्रश्न २६– बलिदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– यक्ष पित्रादि देवताके लिये बनाये हुये आहारमें से बचा हुआ आहार यतियों को देना बलिदोष है तथा बचे हुये अर्घ्य जलादिकसे यतियोंकी पूजा करना बलिदोष है।

प्रश्न २७—बलिदोषमें किस दोषकी सिद्धि है।

उत्तर– इसमें सावद्य दोषकी सिद्धि है।

प्रश्न २८—न्यस्त दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस बर्तनमें भोजन बनाया गया हो, उसमेंसे निकालकर कटोरी आदिमें

रखकर अपने घर या परगृह कहीं रख देनेको न्यस्त दोष कहते हैं।

प्रश्न २९– न्यस्तमें क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर– इसमें दो दोष हो जाते हैं-- एक तो नया आरम्भ हुआ और फिर उसमें से यदि कोई दूसरा दातार उसको दे तो उसमें गड़बड़ी भी हो सकती है।

प्रश्न ३०– प्रादुष्कृत दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रादुष्कृत दोष दो प्रकारसे होता है– (१) संक्रम, (२) प्रकाश। साधुके घर आ जानेपर भोजनके पात्र आदिको एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना, सो संक्रम प्रादुष्कृत है।

साधुके घर आ जानेपर किवाड़ मंडप आदि दूर करना, भस्म या जलादिकसे बर्तनादिको साफ करना, दीपक जलाना आदि प्रकाश दोष है।

प्रश्न ३१– प्रादुष्कृतमें दोष किस कारणसे है ?

उत्तर—इसमें नैमित्तिक आरम्भ व ईर्यापथादिकमें हानिका दोष आता है।

प्रश्त ३२—क्रीत दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– जब साधु भिक्षाके अर्थ घर आवे तब गौ आदिक सचित्त द्रव्य या सुवर्ण चाँदी आदि अचित्त द्रव्य देकर भोजन लाया जावे, उसे क्रीत दोष कहते हैं।

प्रश्न ३३—क्रीत दोषमें क्या हानि होती है ?

उत्तर– इसमें नैमित्तिक आरम्भ व विकल्पोंका बाहुल्य होता है।

प्रश्न ३४– प्रामित्य दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– प्रामित्य दोष दो प्रकारका होता है– (१) वृद्धिमत् और (२) अवृद्धिमत्। ब्याजपर उधार लाये हुये अन्नको वृद्धिमत् प्रामित्य कहते हैं और बिना ब्याजके उधार लाये अन्नको अवृद्धिमत् प्रामित्य कहते हैं। इन दोनों प्रकारके प्रामित्यके आहार देनेको प्रामित्य दोष कहते हैं।

प्रश्न ३५– प्रामित्यके आहारमें क्या दोष हुआ ?

उत्तर–उधार लाने और उसके चुकानेमें दाताको अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं, ऐसा कष्टसाध्य आहार मधुरकी वृत्ति वाले साधुके अयोग्य है। ऐसा आहार करनेमें अदयाका दोष उत्पन्न होता है।

प्रश्न ३६-- परिवर्तित दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– भिक्षार्थ साधुके आनेपर किसीसे किसी भोज्य पदार्थके बदलेमें कोई अन्य भोज्य पदार्थ लेनेको परिवर्तित दोष कहते हैं।

प्रश्न ३७– परिवर्तित आहारमें क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर—इसमें भी दाताको संक्लेश होता है, अतः उस आहारमें भी अदयाका दोष उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न ३८—निषिद्ध दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—कोई चीज किसीके मना करनेपर भी साधुवोंको आहारके लिये दी जावे तो उसे निषिद्ध दोष कहते हैं। निषेधकोंके भेदसे इसके ६ भेद हो जाते हैं। निषेधक ६ प्रकारके ये हैं– (१) व्यक्त ईश्वर, (२) अव्यक्त ईश्वर, (३) उभय ईश्वर, (४) व्यक्त अनीश्वर, (५) अव्यक्त अनीश्वर, (६) उभय अनीश्वर। निरपेक्ष अधिकारीको व्यक्तईश्वर व सापेक्ष अधिकारीको अव्यक्तईश्वर व सापेक्ष निरपेक्ष अधिकारोंको या संयुक्त व्यक्तियोंको उभयईश्वर कहते हैं। इसी प्रकार अनीश्वर (अनधिकारी) याने नौकर आदिमें भी लगाना।

प्रश्न ३९—निषिद्धमें क्या दोष आता है ?

उत्तर– दीनता, अशिष्टता आदि अनेक दोष आते हैं।

प्रश्न ४०-- अभिहृत दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– लाइनमें स्थित सात मकानोंको (एक दाताका व तीन एक ओरके व तीन दूसरी ओरके) छोड़कर बाकी अन्य किसी 'स्थानसे चाहे मौहल्ला हो या गाँव हो या परगाँव या परदेश, आये भोज्य पदार्थोंको अभिहृत कहते हैं। अभिहृत पदार्थोंके आहारको अभिहृत दोष कहते हैं।

प्रश्न ४१-- अभिहृत आहारमें क्या दोष आता है ?

उत्तर-- इसमें ईर्यापथशुद्धि नहीं हो सकती है, अतः जीवहिंसाका दोष आता है।

प्रश्न ४२-- उद्भिन्न दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर-- घी, गुड़, किशमिश आदि कोई वस्तु किसी डिब्बे आदिमें पैक हो, डिब्बेका मुख मिट्टी आदिसे बन्द हो या सील, मोहर लगी हो उसे खोलकर उस चीजके देनेको उद्भिन्न दोष कहते हैं।

प्रश्न ४३-- उद्भिन्न आहारमें क्या दोष है ?

उत्तर-- इसमें जीवदयाकी सावधानी नहीं हो सकती व तुरन्त खोलकर देनेमें उस वस्तुका शोधन भी ठीक नहीं हो सकता, चींटी आदिका प्रवेश हो तो उसका वारण कठिन है।

प्रश्न ४४– आच्छेद्य दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– राजा, मंत्री आदि बड़े पुरुषोंके भयसे श्रावक आहारदान करे तो उसे आच्छेद्य दोष कहते।

प्रश्न ४५-- आच्छेद्यमें क्या दोष होता है ?

उत्तर– जबरदस्ती बिना अनुरागका भोजन लिये जानेका दोष आता है, यह गृहस्थके

संक्लेशका कारण है।

प्रश्न ४६—मालारोहण दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—सीढ़ी अथवा नसैनी पर चढ़कर अटारी वगैरह ऊपरके खण्डसे भोज्य पदार्थ लाकर साधुओंको देनेको मालारोहण दोष कहते हैं।

प्रश्न ४७— मालारोहणमें क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर— इसमें ईर्यापथशुद्धि नहीं रहती व गृहस्थके विक्षेप होता है, उसके गिरने तक की भी संभावना रहती है। इसमें अदयाका दोष होता है।

प्रश्न ४८— उक्त १६ उद्गमदोष किसकी चेष्टाके निमित्तसे होते हैं ?

उत्तर— उक्त १६ उद्गमदोष दातार श्रावककी चेष्टाके निमित्तसे होते हैं। दातार श्रावकको चाहिये कि ये १६ उद्गमदोषको टालकर साधुको आहार देवे। यदि साधुको मालूम हो जावे कि दातारने इन १६ उद्गमदोषोंमें से कोई दोष किया है तो साधु उस आहारको नहीं लेते हैं।

प्रश्न ४९— उद्गम शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—उत् = उन्मार्ग, गम = गमन कराये याने ले जाये, जो उन्मार्गकी ओर ले जाय उसे उद्गम कहते हैं। तात्पर्य— जिन क्रियाओंके द्वारा भोज्य द्रव्य उन्मार्ग अर्थात् आगमकी आज्ञाके विरुद्ध याने रत्नत्रयका घातक सिद्ध हो, ऐसी दाताकी क्रियाओंको उद्गमदोष कहते हैं।

प्रश्न ५०— उत्पादन दोष १६ कौन कौनसे हैं ?

उत्तर— उत्पादन दोष ये हैं— (१) धात्रीदोष, (२) दूतदोष, (३) निमित्तदोष, (४) वनीपकवचनदोष, (५) आजीवदोष, (६) क्रोधदोष, (७) मानदोष, (८) मायादोष, (९) लोभदोष, (१०) पूर्वस्तुतिदोष, (११) पश्चात्स्तुतिदोष, (१२) वैद्यकदोष, (१३) विद्या-दोष, (१४) मंत्रदोष, (१५) चूर्णदोष, (१६) वशदोष।

प्रश्न ५१— धात्रीदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—पाँच प्रकारकी धात्रियोंमें से किसी भी धात्री जैसा गृहस्थके बालकके प्रति प्रयोग करके या प्रयोग कराकर अथवा उपदेश देकर इस कारणसे अनुरक्त गृहस्थके द्वारा दिये हुये भोजनको ग्रहण करना धात्रीदोष है।

प्रश्न ५२—धात्रीदोषमें दोष क्या आया ?

उत्तर—इसमें साधुका यह अभिप्राय रहता है कि इस रीतिसे गृहस्थ भोजन देनेको अथवा उत्तम भोजन देनेको उत्साहित होगा। यह अभिप्राय साधुतामें बड़ा दोषरूप है।

प्रश्न ५३— पाँच प्रकारकी धात्री कौन-कौन हैं ?

उत्तर– धात्रीके पाँच भेद ये हैं—(१) मार्जनधात्री, (२) क्रीडनधात्री, (३) मंडनधात्री, (४) क्षीरधात्री, (५) स्वापनधात्री, ।

प्रश्न ५४—मार्जनधात्री, किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो बालकको स्नान करानेका कार्य करके बालकका पोषण करे उसे मार्जनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५५– क्रीडनधात्री किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो बालकको नाना प्रकारसे क्रीडा करावे उसे क्रीडनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५६– मंडनधात्री किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो बालकको यथोचित भूषण आभूषण द्वारा अलंकृत करे उसे मंडनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५७—क्षीरधात्री किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो बालकको दूध पिलाकर पुष्ट करे उसे क्षीरधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५८– स्वापनधात्री किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो बालकको सुलानेकी सेवा करे उसे स्वापनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५९– दूतदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्बन्धी पुरुषोंका सन्देश ले जाकर, कहकर संतुष्ट किये गये दाताके द्वारा दिये हुये भोजनका लेना सो दूतदोष है ।

प्रश्न ६०—इसमें क्या दोष आता है ?

उत्तर—इस दूतदोष नामका दूसरे उत्पादन दोषमें साधुके इस उपायसे भोजन उपार्जन करनेका भाव रहता है व जिनशासनमें दूषण लगता है ।

प्रश्न ६१– निमित्तदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—अष्टांगनिमित्तके ज्ञानको बताकर व उसके फलको बताकर संतुष्ट किये गये दाताके द्वारा दिये गये आहारके करनेको निमित्तदोष कहते हैं ।

प्रश्न ६२– भविष्यफलके निर्देशक निमित्तके आठ अङ्ग कौनसे हैं ?

उत्तर—भविष्यफलके निर्देशक निमित्तके आठ अंग ये हैं—(१) व्यञ्जन, (२) अंग, (३) स्वर, (४) छिन्न, (५) भौम, (६) अन्तरिक्ष, (७) लक्षण और (८) स्वप्न ।

प्रश्न ६३—व्यञ्जन निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीरके किसी अंगमें तिल, मस्सा, लहसन आदि व्यंजन देखकर उससे शुभ तथा अशुभ फल जाननेको व्यंजन निमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ६४—अंगनामक निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर— मस्तक, गला, हाथ, पैर, पेट, अंगुली आदि शरीरके अंगोंको देखकर मनुष्य का शुभ अशुभ जाननेको अंगनिमित्त कहते हैं।

प्रश्न ६५-- स्वरनिमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मनुष्य, तिर्यञ्च या अचेतनवस्तुके शब्द सुनकर त्रिकाल सम्बन्धी शुभ अशुभ जाननेको स्वरनिमित्त कहते हैं।

प्रश्न ६६— भौमनिमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर-- भूमिका रूखापन, चिकनापन आदि देखकर भूमिके अन्दर पानी निधि आदि को जान लेने व शुभ, अशुभ, जीत, हार जान लेनेको भौमनिमित्त कहते हैं।

प्रश्न ६७— अन्तरिक्षनिमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—सूर्य चन्द्र आदिके ग्रहण व ग्रहोंके उदय, अस्त व उल्कापात आदि देखकर त्रिकाल सम्बन्धी शुभ अशुभके जाननेको अन्तरिक्षनिमित्त कहते हैं।

प्रश्न ६८— लक्षणनिमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर— हथेली आदि शरीरके अवयवोंमें कमल, चक्र, मीन, कलश आदि चिन्होंको देखकर शुभ अशुभ जाननेको लक्षणनिमित्त कहते हैं।

प्रश्न ६९—स्वप्ननिमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर— शुभ अशुभ स्वप्नोंके अनुसार शुभ अशुभ फल जाननेको स्वप्ननिमित्त कहते हैं।

प्रश्न ७०—निमित्तदोषमें क्या दोष आता है ?

उत्तर—निमित्त नामक उपादान दोषमें रसास्वादन, दीनता आदि दोष हैं।

प्रश्न ७१— वनीपकवचनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—भोजनादि ग्रहण करनेके अभिप्रायसे वनीपक (याचक) की तरह दाताके अनुकूल वचन बोलकर आहार ग्रहण करनेको वनीपकवचनदोष कहते हैं। जैसे कोई दाता पूछे कि कुत्ता, कौवा, मांसभोगी ब्राह्मण इत्यादिको दान देनेमें पुण्य है या नहीं, तब उत्तर देना "हाँ है" आदि।

प्रश्न ७२— वनीपकवचनदोषमें क्या दोष आता है ?

उत्तर— वनीपकवचनमें दीनताका दोष आता है।

प्रश्न ७३—आजीव दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर— अपनी जाति, कुलकी शुद्धता प्रकट करके अपनी कला, चतुरता प्रकट करके यन्त्र-मन्त्र करके लोकोंके द्वारा आहार उपार्जित करनेको आजीव दोष कहते हैं।

प्रश्न ७४—आजीवकर्ममें क्या दोष आता है ?

उत्तर—इसमें दीनता, लिप्सा, कल्याणमार्गमें प्रमाद आदि दोष आते हैं।

प्रश्न ७५– क्रोधदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—क्रुद्ध होकर भोजनादि प्रबन्ध कराने व ग्रहण करनेको क्रोधदोष कहते हैं।

प्रश्न ७६– इसमें क्या दोष आता है ?

उत्तर-- संयमकी हानि, उन्मार्गका प्रसार आदि दोष आते हैं।

प्रश्न ७७– मानदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– अभिमानके वश होकर आहार ग्रहण करनेको मानदोष कहते हैं।

प्रश्न ७८-- इसमें क्या दोष आता है ?

उत्तर—रसगौरव, संयमहानि, उन्मार्ग आदि दोष आते हैं।

प्रश्न ७९-- मायादोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– मायाचार, छल, कपट सहित भोजनादि ग्रहण करनेको मायादोष कहते हैं।

प्रश्न ८०-- इसमें क्या दोष आता है ?

उत्तर-- सम्यक्त्वहानि, संयमहानिके दोष मायादोषमें उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रश्न ८१-- लोभदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– क्षुब्ध परिणामोंसे आहारादि ग्रहण करनेको लोभदोष कहते हैं।

प्रश्न ८२-- इस दोषसे क्या अनर्थ होता है ?

उत्तर-- लोभदोषसे मूल गुणमें हानि, स्वभावदृष्टिकी अयोग्यता हो जानेके अनर्थ हो जाते हैं।

प्रश्न ८३-- पूर्वस्तुतिदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—दातारकी पहिले प्रशंसा करके अपनी ओर आकर्षित कर दातारसे भोजनादि ग्रहण करनेको पूर्वस्तुतिदोष कहते हैं।

प्रश्न ८४-- इस दोषसे क्या अनर्थ होता है ?

उत्तर-- इसमें परमुखापेक्षा, कृपणता, आत्मगौरवनाश आदि अनर्थ होते हैं।

प्रश्न ८५-- पश्चात्स्तुतिदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर-- आहार ग्रहण करनेके बाद दाताकी प्रशंसा स्तुति करना, सो पश्चात्स्तुति नामक दोष है।

प्रश्न ८६-- इस दोषसे क्या अनर्थ है ?

उत्तर-- आगे भी भोजन प्रबन्ध हमारा अच्छा रहे, इस अभिप्रायसे यह दोष होता है। इससे निदान, कृपणता, आत्मगौरवनाश आदि अनर्थ होते हैं।

प्रश्न ८७-- चिकित्सादोष किसे कहते हैं ?

उत्तर-- आठ प्रकारकी चिकित्सामें से एक या अनेक चिकित्साके द्वारा उपकार करके या उनका उपदेश करके आहारादि लेनेको चिकित्सादोष कहते हैं। चिकित्सायें ८ ये हैं-- (१) बालचिकित्सा, (२) अङ्गचिकित्सा, (३) रसायनचिकित्सा, (४) विषचिकित्सा, (५) भूतापनदन, (६) क्षारतन्त्र (७) शलाकाचिकित्सा, (८) शल्यचिकित्सा।

प्रश्न ८८—चिकित्साकर्ममें क्या दोष होता है ?

उत्तर— चिकित्सावों करि भोजन करनेमें सावद्यादि अनेक दोष होते हैं।

प्रश्न ८९-- विद्यादोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– होम जप आदि द्वारा साधित विद्यावोंको बुलाकर उनसे प्राप्त हुई आहार औषधि ग्रहण करनेको अथवा दातारको विद्या देनेकी आशा देकर आहारादि ग्रहण करनेको विद्योत्पादन दोष कहते हैं।

प्रश्न ९०—इसमें क्या दोष आता है ?

उत्तर-- विद्यादोषमें स्वरूपकी असावधानी, आत्मविश्वासका अभाव आदि दोष आते हैं।

प्रश्न ९१—मन्त्रदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुरुमुखसे अध्ययन किये हुये और सिद्ध हुये मन्त्रसे देवताका आमन्त्रण करके उनसे सम्पन्न हुए आहार ग्रहण करनेको अथवा सुखदायक मन्त्रकी आशा देकर दातारसे आहार ग्रहण करनेको मन्त्रदोष कहते हैं।

प्रश्न ९२-- इसमें क्या दोष है ?

उत्तर-- विद्यादोषकी तरह इसमें भी अनेक दोष हैं।

प्रश्न ९३-- चूर्णदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर-- दातारके लिये भूषाचूर्ण व अञ्जनचूर्णको सम्पादित करके उसके यहां आहार ग्रहण करनेको चूर्णदोष कहते हैं।

प्रश्न ९४– इसमें क्या दोष होता है ?

उत्तर– आजीविकावत् आरम्भका दोष इसमें होता है।

प्रश्न ९५-- वशदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जो जिसके वशमें न हो उसे वशमें करनेका उपाय बताकर या वैसी योजना कर या परस्पर वियुक्त हुये स्त्री पुरुषोंका मेल कराकर या उपाय बताकर भोजन ग्रहण करनेको वशदोष कहते हैं।

प्रश्न ९६– इस दोषमें क्या अनर्थ है ?

उत्तर– निर्दयता, पीडोत्पादन, रागवृद्धि, लज्जाकर्म, ब्रह्मचर्यके अतिचार आदि अनेक

अनर्थ इस दोषसे उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न ९७– उत्पादनदोषका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर– जिनमार्ग विरुद्ध क्रियावों द्वारा भोजन उत्पन्न कराया जाय उन क्रियाओंको उत्पादनदोष कहते हैं।

प्रश्न ९८— उत्पादनदोष किसके आश्रित होते हैं ?

उत्तर—उत्पादनदोष साधु पात्रके आश्रित होते हैं, क्योंकि ये दोष साधुके शिथिल भाव और क्रियाओंसे उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न ९९-- अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—भोज्य पदार्थसे सम्बन्ध रखने वाले दोषोंको अशनदोष कहते हैं।

प्रश्न १००— अशनदोषके भेद कौन-कौन हैं ?

उत्तर—शङ्कित, पिहित, म्रक्षित, निक्षिप्त, छोटित, अपरिणत, व्यवहरण, दायक, लिप्त और विमिश्र, ये दस दोष अशनसम्बन्धी हैं।

प्रश्न १०१– शङ्कितदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– चार प्रकारके अशनमें कोई ऐसी शंका उत्पन्न हो जाय कि वह आहार आगममें लेने योग्य बताया या नहीं अथवा यह आहार शुद्ध भक्ष्य है या नहीं, ऐसे शंकासहित भोजनके करनेको शङ्कितदोष कहते हैं।

प्रश्न १०२– पिहितदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– अप्रासुक वस्तु या वजनदार प्रासुक वस्तुसे ढके हुए जिस भोजनको उघाड़ कर दिया जावे उस भोजनके ग्रहण करनेको पिहितदोष कहते हैं।

प्रश्न १०३—म्रक्षितदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—घी, तेल आदिके द्वारा सचिक्कण हुए हाथ या चम्मच कटोरी आदिसे दिये गये आहारके ग्रहण करनेको म्रक्षितदोष कहते हैं।

प्रश्न १०४—निक्षिप्त नामक अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो भोजन वस्तु सचित्तत पृथ्वी, जल, अग्नि, बीजरहित और त्रस जीवपर रखी हो उस पदार्थके ग्रहण करनेको निक्षिप्तदोष कहते हैं।

प्रश्न १०५– छोटित नामक अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—कुछ भोज्यसामग्रीको गिराकर कुछके ग्रहण करनेको, अनिष्ट आहार छोड़कर इष्ट आहारके ग्रहण करनेको, जिससे भोज्यसामग्री टपकती रहे, ऐसे हाथसे आहारके ग्रहण करनेको छोटितदोष कहते हैं।

प्रश्न १०६—अपरिणत नामक अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसका वर्ण, गन्ध, रस न पलटा हो, ऐसे चूर्णमिश्रित जलको चने, चावल आदिके धोवनके जलको ग्रहण करना, सो अपरिणत दोष है ।

प्रश्न १०७—व्यवहरण नामक अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर— दातार अपने लटके हुये वस्त्रको यत्नाचाररहित खींचकर व बर्तन, चौकी आदिको घसीटकर और भी यत्नाचार रहित होकर आहार देवे उस आहारके ग्रहण करनेको व्यवहरणदोष कहते हैं ।

प्रश्न १०८—दायकदोष नामक अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनका दिया हुआ आहार साधुको ग्रहण करना योग्य नहीं उनके दिये हुए आहारके ग्रहण करनेको दायकदोष कहते हैं । अयोग्य दायक ये हैं—मद्यपायी, रोगपीड़ित, पिशाचमूर्च्छित, रजस्वला, बच्चेका प्रसव करने वाली (४० दिन तक), वमन करके आया हुआ, शरीरमें तेल लगा रखने वाला, भींतकी आड़में स्थित, पात्रके स्थानसे नीचे या ऊँचे प्रदेशपर स्थित, नपुंसक, जातिच्युत, पतित, मूत्रक्षेपण करके आया हो, नग्न, वेश्या, संन्यास-लिंगधारण करने वाली, अति बाला (८ वर्षसे कम), वृद्धा, गर्भिणी (५ माससे ऊपर गर्भ वाली), खाती हुई, अन्धा, बैठी हुई, अग्नि जलाने वाला, अग्नि बुझाने वाला, अग्निको भस्म से ढांकने वाला, अग्नि घिट्टने वाला, मकान लीपने वाला, एक वस्त्रधारी, दूध पीते बच्चेको छोड़कर आने वाली, बच्चोंको नहलाने वाली आदि दातार पात्रदानके अयोग्य हैं ।

उक्त दातारोंमें कोई विशेषण तो केवल स्त्रियोंमें घटित होते हैं, कोई विशेषण स्त्री-पुरुष दोनोंमें घटित होते हैं, इसलिये शब्दलिंगपर ध्यान देकर यथासंभव स्त्री-पुरुषोंमें विशेषण लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न १०९—लिप्त नामक अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—गेरु, खड़िया, आटा, हरित, अप्रासुक जल आदिसे भीगे हुए हाथ या बर्तन द्वारा भोजनके ग्रहण करनेको लिप्तदोष कहते हैं ।

प्रश्न ११०— विमिश्रदोष नामक अशनदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस भोजनमें सचित्त पृथ्वी, जल, बीज, हरित और जीवित त्रस मिले हुए हों उस भोजनको विमिश्रदोषसे दूषित कहा है ।

प्रश्न १११— भुक्तिदोष ४ कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—(१) अंगार, (२) धूम्र, (३) संयोजना और (४) अनिमात्र, ये चार महा-दोष हैं ।

प्रश्न ११२— अंगार नामक भुक्तिदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर— यह वस्तु अच्छी है, स्वादिष्ट है, कुछ और मिले, इस प्रकार अत्यासक्ति

भावपूर्वक भोजन करनेको अंगारदोष कहते हैं।

प्रश्न ११३—धूमदोष नामक भुक्तिदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—यह वस्तु अच्छी नहीं बनी, अनिष्ट है, इस प्रकार ग्लानि करते हुए भोजन करनेको धूमदोष कहते हैं।

प्रश्न ११४—संयोजना नामक भुक्तिदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—गर्म और ठंडा, चिकना और रूखा अथवा आयुर्वेदमें बताये गये परस्पर विरुद्ध पदार्थोंको मिलाकर खाना सो संयोजना नामक दोष है।

प्रश्न ११५—अतिमात्र नामक भुक्तिदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—भोजनका जो परिमाण बताया गया है उसका उल्लंघन करके उस परिमाण से अधिक आहार करनेको अतिमात्र नामक भुक्तिदोष कहते हैं।

प्रश्न ११६—आहारका परिमाण क्या है ?

उत्तर— उदरके दो भाग याने भूखके २ भाग अर्थात् आधे भागको भोजनसे पूर्ण करना चाहिये और एक भागको जलसे पूर्ण करना चाहिये और एक भागको खाली रखना चाहिये।

प्रश्न ११७— मलदोष किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिनसे छू जानेपर, मिल जानेपर आहार ग्रहण करनेके योग्य न रहे उसे मल कहते हैं और मलके दोषको मलदोष कहते हैं।

प्रश्न ११८—मल कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर-- (१) पूय याने पीव, (२) रुधिर, (३) मांस, (४) हड्डी, (५) चर्म, (६) नख, (७) केश, (८) मृतविकलत्रय याने मरा हुआ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव, (९) सूरण आदि कन्द, (१०) जिसमें अंकुर होने वाला हो ऐसा बीज, (११) मूली, अदरख आदि मूल, (१२) बेर आदि तुच्छ फल, (१३) कण और (१४) भीतर कच्चा व बाहर पक्का ऐसा चावल आदि कुण्ड।

प्रश्न ११९-- उक्त १४ मलोंमें से किस मलस्पर्शसे कितना दोष होता है ?

उत्तर— पीव, रुधिर, मांस, हड्डी और चर्म, इनसे संसक्त आहार जब प्रतीत हो तब आहार तो छोड़ ही देवे और विधिवत् प्रायश्चित भी ग्रहण करे।

नखसे संसक्त आहार हो तो आहारको छोड़ देवे तथा किंचित् प्रायश्चित भी करे।

यदि केश या मृत विकलत्रयसे संसक्त आहार हो तो उस आहारको छोड़ देवे।

यदि कन्द, बीज, मूल, फल, कण और इनसे संस्पृष्ट आहार हो तो इन्हें निकालकर दूर कर देवे। कदाचित् इनका अलग करना अशक्य हो तो उस आहारको छोड़ देना चाहिये।

प्रश्न १२०—भोजन सम्बन्धी अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिनके निमित्तसे साधुजन आहारका त्याग कर देते हैं उन्हें अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १२१-- अन्तराय कौन-कौन हैं ?

उत्तर—(१) काक, (२) अमेध्य, (३) छर्दि, (४) रोधन, (५) रुधिर, (६) अश्रुपात, (७) जान्वध:परामर्श, (८) जानूपरिव्यतिक्रम, (९) नाभ्यधोनिर्गमन, (१०) प्रत्याख्यात सेवन, (११) जन्तुबध, (१२) काकादिपिण्डहरण, (१३) पाणिपिण्डपतन, (१४) पाणिजन्तुबध, (१५) मांसादिदर्शन, (१६) उपसर्ग, (१७) पादान्तरापञ्चेन्द्रियागमन, (१८) भाजनसंपात, (१९) उच्चार, (२०) प्रस्रवण, (२१) अभोज्यगृहप्रवेश, (२२) पतन, (२३) उपवेशन, (२४) संदंश, (२५) भूमिस्पर्श, (२६) निष्ठीवन, (२७) उदरक्रिमिनिर्गम, (२८) अदत्तग्रहण, (२९) प्रहार, (३०) ग्रामदाह, (३१) पादग्रहण, (३२) करग्रहण।

प्रश्न १२२—काक नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– आहारार्थ चर्यामें या आहारके समय साधुके शरीरपर कोई कौवा, कुत्ता आदि जानवर मलोत्सर्ग कर दे तो काक नामक अन्तराय हो जाता है।

प्रश्न १२३—अमेध्य अंतराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—आहारार्थ जाते हुए अथवा खड़े हुए साधुके यदि किसी प्रकार पैर, घुटने, जांघों आदि किसी भी अङ्गमें विष्टा आदि अशुचि पदार्थका स्पर्श हो जावे तो अमेध्य नामक अन्तराय होता है।

प्रश्न १२४— छर्दि नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—यदि किसी कारण साधुको स्वयं वमन हो जाय तो उसे छर्दि नामक अंतराय कहते हैं।

प्रश्न १२५— रोधन नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—आज भोजन मत करना, इस प्रकार किसीके रोक देनेको रोधन अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १२६— रुधिर नामक अन्तराय कब होता है ?

उत्तर—अपने या परके शरीरसे चार अंगुल या और अधिक तक रुधिर, पीव आदि साधु देख ले तब रुधिर नामक अन्तराय होता है।

प्रश्न १२७—अश्रुपात अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– शोकसे अपने अश्रु बह जानेको या किसीके मरने आदिके कारणसे किसीका आक्रन्दन (जोरका रोना) सुनाई पड़नेको अश्रुपात अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १२८—जान्वधःपरामर्श अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– सिद्ध भक्तिके अनन्तर अपनी जानु (घुटने) के नीचे भागका हाथसे स्पर्श हो जानेको जान्वधःपात अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १२९—जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय कब होता है ?

उत्तर– घुटने तक ऊंचे या इससे अधिक ऊंचे पर लगे हुए अर्गल, पाषाण आदिको लाँघकर जानेमें जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय होता है ।

प्रश्न १३०—नाभ्यधोनिर्गम अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– यदि अपने शरीरको नाभिसे नीचे करके किसी द्वार आदिसे निकलना पड़े तो उसे नाभ्यधोनिर्गम अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३१– प्रत्याख्यातसेवन नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– त्याग किया हुआ पदार्थ यदि खानेमें आ जाय तो उसे प्रत्याख्यातसेवन नामक अन्तराय कहते हैं ?

प्रश्न १३२—जन्तुवधनामक अन्तराय क्या है ?

उत्तर—यदि अपने ही (साधुके) सन्मुख कोई चूहे, बिल्ली, कुत्ते आदि जीवोंका घात करे तो उसे जन्तुबध नामक अन्तराय कहते हैं ?

प्रश्न १३३–काकादिपिण्डहरण अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—काक, चील आदि जानवरके द्वारा हाथपरसे ग्रासके ले जानेको या छूनेको काकादिपिण्डहरण अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३४– पाणिपिण्डपतन अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– भोजन करते हुए साधुके हाथसे ग्रासके गिर जानेको पाणिपिण्डपतन अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३५– पाणिजन्तुबध अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—भोजन करते हुए साधुके हाथपर कोई जीव स्वयं आकर मर जावे तो उसे पाणिजन्तुबध अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३६– मांसदर्शनादि अन्तराय कब होता है ?

उत्तर—भोजन करते हुये साधुको मांस, मद्य आदि दिख जावें तो मांसदर्शनादि नामक अन्तराय होता है ।

प्रश्न १३७– उपसर्ग नामक अन्तराय क्या होता है ?

उत्तर—भोजन करते समय यदि देव, मनुष्य या तिर्यञ्च किसीके द्वारा उत्पात हो तो वह उपसर्ग नामक अन्तराय होता है ।

प्रश्न १३८—पादान्तरपञ्चेन्द्रियागम अन्तराय क्या है ?

उत्तर– भोजनार्थ चलते समय या आहारके समय यदि चरणोंके अन्तरालमें कोई पञ्चेन्द्रिय जीव आ जावे तो वह पादान्तरपञ्चेन्द्रियागम अन्तराय है।

प्रश्न १३९—भाजनसंपात अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– साधुको आहार देने वालेके हाथसे कोई कटोरा आदि पात्र गिर पड़े तो उसे भाजनसंपात अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४०– उच्चार अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—भोजनार्थ जाते हुए या आहार करते हुये साधुके विष्टा मल निकल आवे तो उसे उच्चार नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४१—प्रस्रवण अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—साधुके मूत्रका स्राव हो जानेको प्रस्रवण अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४२– अभोज्यगृह-प्रवेश अन्तराय क्या है ?

उत्तर-- भिक्षार्थ चर्या करते हुए यदि साधुका चाण्डाल आदि अस्पृश्य जीवोंके घर प्रवेश हो जाय तो उसे अभोज्यगृह-प्रवेश अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४३– पतन नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर – साधुके मूर्च्छा, भ्रम, श्रम, रोग आदिके कारण भूमिपर गिर जानेको पतन नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४४—उपवेशन नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– अशक्ति आदि कारणवश साधुके भूमिपर बैठ जानेको उपवेशन नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४५– संदंश नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– भिक्षार्थ पर्यटनमें या आहारके समय कुत्ता, बिल्ली आदि कोई जानवर साधुको काट ले तो उसे संदंश नामक अंतराय कहते हैं।

प्रश्न १४६– भूमिस्पर्श अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– सिद्धभक्ति किये बाद साधुको हाथकरि भूमिस्पर्श हो जाय तो उसे भूमिस्पर्श नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४७—निष्ठीवन नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—आहार करते हुए साधुके कफ, थूक, नाक आदिके निकल जानेको निष्ठीवन नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १४८– उदरक्रिमिनिर्गमन अन्तराय क्या है ?

उत्तर– मुखद्वारसे अथवा गुदा द्वारसे साधुके पेटकी क्रिमि (कीड़े) का निकलना, सो उदरक्रिमिनिर्गमन अन्तराय है।

प्रश्न १४९– अदत्तग्रहण नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर– दातारके दिये बिना ही भोजन औषधि ग्रहण कर ली जाय या संकेत करके भोजनादि ग्रहण किया जाय तो उसे अदत्तग्रहण नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १५०—प्रहार नामक अन्तराय कब होता है ?

उत्तर– अपना (साधुका) या निकटवर्ती किसी अन्यका खड्ग बरछी आदि द्वारा प्रहार करनेपर प्रहार अन्तराय होता है।

प्रश्न १५१– ग्रामदाह अन्तराय कब होता है ?

उत्तर—जिसके निकट स्वयंका निवास हो रहा हो, ऐसे ग्राममें अग्निके लग जानेपर ग्रामदाह नामक अन्तराय हो जाता है।

प्रश्न १५२—पादग्रहण अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी भी वस्तुको पैरसे उठाकर ग्रहण करनेको पादग्रहण अंतराय कहते हैं।

प्रश्न १५३—हस्तग्रहण अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी वस्तुको भूमि परसे हाथ द्वारा उठाकर ग्रहण करनेको हस्तग्रहण अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १५४-- ये किस समयसे किस समय तक बीचमें माने जाते हैं ?

उत्तर– साधु जब भिक्षार्थ जाता है उससे पहिले भुक्तिचर्याके लिये सिद्धभक्ति करता है। किसी श्रावकके द्वारा पडिगाहे जानेपर भोजनशालामें स्थित होकर दुबारा सिद्धभक्ति पढ़ता है। उक्त अन्तरायोंमें से कुछ अन्तराय पहिली सिद्धभक्तिसे लेकर आहार-समाप्ति तकके बीचमें माने जाते हैं और कुछ अंतराय द्वितीय सिद्धभक्तिसे आहार-समाप्ति तक माने जाते हैं। उन्हें यथागम लगा लेना चाहिये।

प्रश्न १५५– एषणा समितिका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर– एषणाका अर्थ खोजना है। उक्त सब प्रकारोंसे निर्दोष आहार खोजनेके लिये तथा आहार करनेके लिये जो सावधानी होती है उसे एषणा समिति कहते हैं।

प्रश्न १५६– आदाननिक्षेपणसमिति किसे कहते हैं ?

उत्तर– कमण्डल, पुस्तक आदि योग्य वस्तुको देख-भालकर जिसमें जीव बाधा न हो, धरने-उठानेको आदाननिक्षेपणसमिति कहते हैं।

प्रश्न १५७—प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर—निर्जन्तु एवं योग्य भूमिपर जहाँ पुरुषादिके बैठने उठनेका प्रायः नियत स्थान

न हो, समिति याने सावधानी सहित मल-मूत्र, कफ, थूक, नाक आदि क्षेपण करना प्रतिष्ठापन समिति कहलाती है।

प्रश्न १५८—गुप्ति नामक भावसंवरविशेष किसे कहते हैं ?

उत्तर—संसारके कारणभूत रागादिसे बचनेके लिये अपनी आत्माको निज सहज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना, उपयोगमें सुरक्षित रखने, लीन करनेको गुप्ति कहते हैं।

प्रश्न १५९—गुप्तिरूप भावसंवरकी साधनाके उपाय क्या हैं ?

उत्तर—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, ये तीन गुप्तिरूप भावसंवरके उपाय अथवा विवेष हैं।

प्रश्न १६०—मनोगुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—रागादि भावोंके त्यागको अथवा समीचीन ध्यान करनेको अथवा मनको वश में करनेको मनोगुप्ति कहते हैं।

प्रश्न १६१—वचनगुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—कठोर वचनादिके त्यागको अथवा मौन धारण कर लेनेको वचनगुप्ति कहते हैं।

प्रश्न १६२—कायगुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर— समस्त पापोंसे दूर रहनेको व शरीरकी चेष्टाओंकी निवृत्तिको कायगुप्ति कहते हैं।

प्रश्न १६३— धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—क्रोधादि कषायोंका उद्भव कर देने वाले कारणोंका प्रसंग उपस्थित होनेपर भी इच्छा और कलुषताओंके उत्पन्न न होनेको और स्वभावकी स्वच्छता बनी रहनेको धर्म कहते हैं।

प्रश्न १६४—धर्म शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर-- धरतीति धर्मः = जो जघन्यपदसे हटाकर उत्तम पदमें धारण करावे उसे धर्म कहते हैं।

प्रश्न १६५ - जघन्य और उत्कृष्ट पद क्या हैं ?

उत्तर-- मिथ्यात्व, राग, द्वेषसे आत्माका कलुषित रहना तो जघन्यपद है और परम-पारिणामिक रूप निजचैतन्यस्वभावके अवलम्बनके बलसे स्वभावका स्वच्छ विकास होना उत्कृष्ट पद है।

प्रश्न १६६— धर्मके अङ्ग कितने हैं ?

उत्तर-- धर्मके १० अङ्ग हैं—(१) क्षमा, (२) मार्दव, (३) आर्जव, (४) शौच,

(५) सत्य, (६) संयम, (७) तप, (८) त्याग, (९) आकिंचन्य और (१०) ब्रह्मचर्य।

प्रश्न १६७-- क्षमा नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—क्रोधका कारण उपस्थित होनेपर भी व स्वयं समर्थ होकर भी दूसरेको क्षमा कर देने तथा निज ध्रुवस्वभावके उपयोगके बलसे संसार-भ्रमणके कारणभूत मोहादि भावोंको शान्त कर अपनेको क्षमा कर देनेको क्षमा कहते हैं।

प्रश्न १६८—मार्दव नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर— जाति, कुल, विद्या, वैभव आदि विशिष्ट होनेपर भी दूसरोंको तुच्छ न मानने व स्वयं अहङ्कारभाव न करने तथा निज सहज स्वभावके उपयोगके बलसे, अपूर्ण विकासमें अहङ्कारता समाप्त करके अपनी मृदुता प्रकट कर लेनेको मार्दवधर्म कहते हैं।

प्रश्न १६९—आर्जव नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसीके प्रति छल कपटका व्यवहार व भाव न करने तथा निज सरल चैतन्यस्वभावके उपयोगसे स्वभावविरुद्ध भावोंको नष्ट करके अपनी यथार्थ सरलता प्रकट कर लेनेको आर्जवधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७०— शौच नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर— किसी भी वस्तुकी तृष्णा या लालच न करने तथा निज स्वत:सिद्ध चैतन्य-स्वभावके उपयोगके बलसे परोपयोग नष्ट करके नि:सङ्ग, स्वच्छ अनुभव करनेको शौचधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७१—सत्य नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिस वचन और क्रियाके निमित्तसे निज सत् स्वरूप याने आत्मस्वरूपकी ओर उन्मुखता हो उसे सत्यधर्म कहते हैं, तथा निज अखण्ड सत्के उपयोगसे निजस्वरूपके त्रैकालिक तत्त्वका अनुभवन हो, उसे सत्यधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७२—संयमनामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर— इन्द्रियसंयम व प्राणसंयम द्वारा स्वपरहिंसासे निवृत्त होने तथा निज नियत चैतन्यस्वभावके उपयोगसे पर्यायदृष्टियोंको समाप्त कर निजस्वरूपमें लीन होनेको संयमधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७३—तप नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—रागादिके अभावके लिये विविध कायक्लेश और मनके या इच्छाके निरोध करनेको तथा नित्य अन्त:प्रकाशमान निज ब्रह्मस्वभावके उपयोगसे, विभावसे निवृत्त होकर स्वभावमें तपनेको तपधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७४—त्याग नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर— ज्ञानादि दान करने व आभ्यन्तर एवं बाह्य परिग्रहका त्याग करनेको तथा परनिरपेक्ष निज चैतन्यस्वभावके उपयोगके बलसे समस्त विकल्पोंका त्याग करके सहजज्ञान और आनन्दके अनुभवन करने को त्यागधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७५— आकिञ्चन्यधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— रागादिभाव, शरीर, कर्म, संपत्ति आदि समस्त परभावोंके प्रति ये समस्त मेरे कुछ नहीं हैं, ऐसा अनुभव करने तथा केवल चिन्मात्र निजस्वभावके उपयोगके बलसे निर्विकल्प अनुभवन करनेको आकिञ्चन्यधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७६— ब्रह्मचर्य नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—मैथुनसम्बन्धी सूक्ष्म विकल्पसे भी निवृत्ति होकर गुरुके आदेशानुसार चर्या करने व आत्मस्वरूपमें प्रवृत्ति करनेको तथा परमब्रह्मरूप निज चैतन्यस्वभावके उपयोगसे सर्व परभावोंसे निवृत्त होकर निजब्रह्ममें स्थित होनेको ब्रह्मचर्यधर्म कहते हैं।

प्रश्न १७७— अनुप्रेक्षा नामक भावसंवरविशेष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस प्रकार यह आत्मा अपने स्वरूपकी उपलब्धि करे उसके अनुसार प्रेक्षण अर्थात् बार-बार विचार एवं अनुभव करनेको अनुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न १७८—अनुप्रेक्षा कितने प्रकारकी है ?

उत्तर— अनुप्रेक्षा १२ प्रकारकी है— (१) अनित्यानुप्रेक्षा, (२) अशरणानुप्रेक्षा, (३) संसारानुप्रेक्षा, (४) एकत्वानुप्रेक्षा, (५) अन्यत्वानुप्रेक्षा, (६) अशुचित्वाच्यनुप्रेक्षा, (७) आस्रवानुप्रेक्षा, (८) संवरानुप्रेक्षा, (९) निर्जरानुप्रेक्षा, (१०) लोकानुप्रेक्षा, (११) बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा और (१२) धर्मानुप्रेक्षा।

प्रश्न १७९— अनित्यानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—धन, परिवार, शरीर, कर्म और रागद्वेषादिक भाव— ये सब अनित्य हैं, ऐसी भावना करनेको अनित्यानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न १८०— इस अनित्यभावनासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर— उक्त अनित्यभावना भाने वाले पुरुषको इन पदार्थोंका संयोग व वियोग होने पर भी ममत्व नहीं होता है और ममत्व न होनेसे त्रैकालिक नित्य ज्ञायकस्वरूप निजपरमात्माकी भावना होती है, जिससे यह अन्तरात्मा परमआनन्दमय अवस्थाको प्राप्त होता है।

प्रश्न १८१— धन, परिवार आदिके साथ आत्माका क्या कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर— परमार्थसे धन, परिवार, शरीर, कर्म और रागादिविभावके साथ आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न १८२— फिर इनमें सम्बन्धकी कल्पना किस अभिप्रायसे हुई ?

उत्तर– धन, परिवारका सम्बन्ध तो उपचरित असद्भूतव्यवहारसे है; शरीर, कर्मका सम्बन्ध अनुपचरितग्रसद्भूतव्यवहारसे है और रागादि विभावका सम्बन्ध मात्र अशुद्धनिश्चय नयसे जीवके साथ है। असद्भूतका तो आत्मामें अत्यन्ताभाव है और अशुद्धपर्याय औपाधिक व क्षणिक परिणमन है।

प्रश्न १८३– अशरणानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—देव, सुभट, मित्र, पुत्रादि व मणि, मन्त्र, तन्त्र, आशीर्वाद, औषधादिक कुछ भी इस जीवकी मरणसमयमें तथा वेदना आदि समस्त परिणमनोंके समयमें शरण नहीं है, ऐसी भावना करनेको अशरणानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न १८४—इस अशरणभावनासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर– बाह्य पदार्थोंकी शरण माननेका अभिप्राय मिट जानेसे जीव शाश्वत शरणभूत निज शुद्ध आत्माका शरण प्राप्त कर लेता है, जिससे यह अन्तरआत्मा भय और निदान बाधारहित सहज आनन्दका अनुभव करता है।

प्रश्न १८५– संसारानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर– यह जीव अनादिकालसे द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन व भावपरिवर्तन—इन पाँच प्रकारके संसारों याने परिभ्रमणोंमें नाना प्रकारके भयंकर दुखमात्र अज्ञानसे भोगता चला आया है। इस प्रकारके चिन्तवनको संसारानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न १८६—द्रव्यपरिवर्तन या द्रव्यसंसार क्या है ?

उत्तर—परिवर्तन नाम परिभ्रमणका है। इन परिवर्तनोंमें मुख्य बात यह ही जानने की है कि जीवका परिभ्रमणमें इतना काल व्यतीत हो गया है। इन परिवर्तनोंके वर्णनसे भ्रमणके समयका परिचय कराया गया है। द्रव्यपरिवर्तन दो प्रकारसे वर्णित है-- नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन, (२) कर्मद्रव्यपरिवर्तन। जिसमें से नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप पहिले समझ लेना चाहिये।

प्रश्न १८७– नोकर्मद्रव्यपरिवर्तका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– नोकर्मका अर्थ है शरीर। जैसे किसी जीवने यथासम्भव तीव्र मन्द मध्यम भाव वाले स्पर्श रस गंध वर्णयुक्त नोकर्मवर्गणाओंको शरीररूपसे ग्रहण किया। पश्चात् द्वितीयादि समयमें वे खिर गये, किन्तु अनेक अगृहीत नोकर्मवर्गणाओंको ग्रहण किया। इसी तरह अनन्त बार अगृहीत नोकर्मवर्गणावोंको ग्रहण कर चुकनेपर एक बार मिश्रवर्गणावोंको ग्रहण किया। अनन्त बार अगृहीत वर्गणाओंको ग्रहण करनेपर एक बार मिश्र (जिनमें कुछ गृहीत व कुछ अगृहीतवर्गणायें हों) वर्गणावोंको ग्रहण किया। इसी रीतिसे जब अनन्त बार मिश्रवर्गणाओंका ग्रहण हो चुके तब एक बार गृहीतवर्गणाओंको ग्रहण किया। अगृहीत--मिश्र-

ग्रहणकी रीति पूर्वक गृहीतवर्गणाओंको फिर ग्रहण किया, इसी रीतिसे होते-होते जब अनंत-बार गृहीतवर्गणाओंका ग्रहण हो चुका तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके ४ भागोंमें से एक भाग हो चुकता है। इस भागका नाम है अगृहीतमिश्रगृहीतक्रमग्रहण।

फिर उस जीवने मिश्रवर्गणाओंको ग्रहण किया। अनन्त बार मिश्रग्रहण होनेपर एक बार अगृहीतवर्गणाओंको ग्रहण किया। पश्चात् अनन्त मिश्रग्रहण होनेपर अगृहीतवर्गणावोंको ग्रहण किया। इस रीतिसे अनन्त बार अगृहीतवर्गणाओंको ग्रहण कर चुकनेपर एक बार गृहीतवर्गणाओंको ग्रहण किया। मिश्रअगृहीतग्रहण क्रमपूर्वक गृहीतवर्गणावोंका जब अनन्त बार ग्रहण हो चुकता है तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके दो भाग समाप्त हो चुकते हैं। इस द्वितीय भागका नाम मिश्रअगृहीतगृहीतकर्म ग्रहण है।

फिर उस जीवने मिश्रवर्गणाओंको ग्रहण किया, अनन्त बार मिश्रवर्गणाओंके ग्रहण करनेपर एक बार गृहीतवर्गणाओंको ग्रहण किया। फिर अनन्त बार मिश्रग्रहणके बाद एक बार गृहीतवर्गणाओंको ग्रहण किया। इस रीतिसे मिश्रगृहीत ग्रहणपूर्वक अनंत बार गृहीतवर्गणावोंका ग्रहण हो चुकनेपर एक बार अगृहीतवर्गणाओंका ग्रहण किया। इसी रीतिके होते होते जब अनन्त बार अगृहीतवर्गणाओंको ग्रहण कर चुकता है तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके ३ भाग समाप्त हो जाते हैं। इस तृतीय भागका नाम मिश्रगृहीत अगृहीतकर्मग्रहण है।

फिर उस जीवने गृहीतनोकर्मवर्गणावोंको ग्रहण किया, अनन्त बार गृहीतवर्गणाओंको ग्रहण कर चुकनेपर एक बार मिश्रवर्गणाओंको ग्रहण किया। अनन्त बार गृहीत-वर्गणाओंको ग्रहण कर चुकनेपर फिर एक बार मिश्रवर्गणाओंको ग्रहण किया। इस रीतिसे अनन्त बार मिश्रवर्गणाओंके ग्रहण हो चुकनेपर एक बार अगृहीतवर्गणाओंको ग्रहण किया। इसी प्रकार गृहीत-मिश्र-अगृहीतग्रहणपूर्वक जब अनन्त बार अगृहीतनोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण हो चुकता है तब नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका चौथा भाग समाप्त हो जाता है। इस भागका नाम गृहीतमिश्रअगृहीतकर्मग्रहण है।

इसके पश्चात् इस नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके प्रारंभके प्रथम समयमें जिस भाव वाले स्पर्श रस गंध वर्ण युक्त नोकर्मवर्गणाओंको ग्रहण किया वह शुद्ध गृहीतनोकर्मद्रव्य जब इस जीवके ग्रहणमें आ जाय तब एक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन पूरा होता है। इस एक परिवर्तनमें प्रारम्भसे लेकर अन्त तक जितना काल लगता है उतना काल व्यतीत हो जाता है। इस क्रमके विरुद्ध बीचमें अनन्तों बार यथा तथा वर्गणावोंका ग्रहण होता रहता है वह सब अलग है। ऐसे-ऐसे अनन्त नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन भी इस जीवके हो गये हैं।

प्रश्न १८८-- कर्मद्रव्यपरिवर्तनका समय कितना है ?

उत्तर-- नोकर्मवर्गणाओंके स्थानपर कर्मवर्गणावोंका कहकर कर्मद्रव्य परिवर्तनका

विवरण भी नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनकी तरह करना चाहिये। इस प्रकार ४ भागों पूर्वक कर्मद्रव्यपरिवर्तनके पूरा होनेमें जितना समय लगता है उतना समय कर्मद्रव्यपरिवर्तनका है। ऐसे-ऐसे अनन्त कर्मद्रव्यपरिवर्तन भी इस जीवके हो गये हैं।

प्रश्न १८६—क्षेत्रपरिवर्तनका काल किस प्रकार जाना जाता है?

उत्तर—क्षेत्रपरिवर्तनका काल दो प्रकारोंसे जाना जाता है—(१) स्वक्षेत्रपरिवर्तन और (२) परक्षेत्रपरिवर्तन।

प्रश्न १९०—स्वक्षेत्रपरिवर्तनका क्या स्वरूप है?

उत्तर—स्वका अर्थ यहाँ जीव है, सो इस परिवर्तनका स्वरूप जीवके निजक्षेत्र याने प्रदेश अथवा शरीरकी अवगाहनासे जाना जाता है। जीवकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। उतनी अवगाहना लेकर जीवने देह धारण किया, फिर इस अवगाहनामें जितने प्रदेश हैं उतनी बार इतनी ही अवगाहना वाला शरीर धारण करे। पश्चात् एक-एक प्रदेश अधिक-अधिककी अवगाहनाओंको क्रमसे धारण करते-करते महामत्स्यकी उत्कृष्ट (१००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा, २५० योजन ऊँचा) अवगाहना पर्यन्त समस्त अवगाहनोंको धारण कर ले, इसे स्वक्षेत्रपरिवर्तन कहते हैं। इसमें जितना काल व्यतीत होता है उतना स्वक्षेत्रपरिवर्तनकाल है। बीचमें अनन्तों बार क्रमविरुद्ध अवगाहनायें प्राप्त होती रहती हैं वे सब अलग हैं। ऐसे-ऐसे क्षेत्रपरिवर्तन अनन्त हो चुके हैं।

प्रश्न १९१—जिन जीवोंने निगोद शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण नहीं किया उनके स्वक्षेत्रपरिवर्तन कैसे हो सकता है?

उत्तर—जिन जीवोंने निगोदपर्यायको अब तक छोड़ा भी नहीं उन जीवोंके स्वक्षेत्रपरिवर्तन तो नहीं होता, किन्तु अन्य जीवोंके अनन्त स्वक्षेत्रपरिवर्तन होनेमें जितना काल व्यतीत हुआ है उतना याने अनन्तकाल निगोद जीवोंका भी संसार-भ्रमणमें व्यतीत हुआ है।

प्रश्न १९२—परक्षेत्रपरिवर्तनका क्या स्वरूप है?

उत्तर—परक्षेत्रका अर्थ है आकाशक्षेत्र। कोई जीव जघन्य (घनांगुलके असंख्यातभाग प्रमाण) अवगाहना धारण कर लोक या लोकाकाशके आठ मध्यप्रदेशोंको अपने शरीरके मध्यके आठ प्रदेशोंसे व्यापकर उत्पन्न हुआ। पश्चात् इस अवगाहनामें जितने प्रदेश हैं उतनी बार इतनी ही अवगाहना लेकर इसी स्थानपर इसी रीतिसे उस जीवने जन्म धारण किया। पीछे लोकके एक-एक प्रदेशके अधिक क्रमसे समस्त लोकमें जन्म धारण कर ले, इस परिवर्तनको परक्षेत्रपरिवर्तन कहते हैं। इसमें जितना काल लगता है उतना परक्षेत्रपरिवर्तनका काल जानना। बीचमें कहीं भी अनंतों बार उत्पन्न होता रहता है वह सब अलग है, इसकी गिनती में नहीं आता। ऐसे-ऐसे अनन्त परक्षेत्रपरिवर्तन इस जीवने किये हैं।

प्रश्न १९३—अनादि नित्यनिगोदोंके क्या यह परक्षेत्रपरिवर्तन हो सकता है ?

उत्तर– अनादिनित्यनिगोद जीवोंके भी यह परक्षेत्रपरिवर्तन होता है, क्योंकि इसमें लोकके एक एक प्रदेशपर क्रमसे उत्पन्न होनेकी बात है। शरीरकी अवगाहनाका इसमें क्रम नहीं है।

प्रश्न—१९४—कालपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—कोई जीव उत्सर्पिणीकालके प्रथम समयमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् अन्य उत्सर्पिणीकालके दूसरे समयमें उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार अन्य-अन्य उत्सर्पिणीकालके तीसरे, चौथे आदि समयोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल व अवसर्पिणीकालके बीस कोड़ाकोड़ीसागरके जितने समय हैं उन सबमें इस क्रमसे उत्पन्न हुआ और मरणको प्राप्त हुआ। इस बीच अनन्तों बार अन्य-अन्य समयोंमें उत्पन्न हुआ वह सब अलग है, उसकी इसमें गिनती नहीं। इसमें जितना काल लगता है उतना काल परिवर्तनका है, ऐसे-ऐसे अनंत कालपरिवर्तन इस जीवने किये हैं।

प्रश्न १९५– भवपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– भव नाम गतिका है। चारों गतियोंमें विशिष्ट क्रम लेकर परिभ्रमण करना भवपरिवर्तन है। जैसे कोई जीव तिर्यग्भवकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त लेकर उत्पन्न हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्तमें जितने समय हैं उतनी बार इसी आयुके साथ उत्पन्न हुआ। पश्चात् क्रमसे एक-एक समय अधिक आयु लेकर तिर्यग्भवमें उत्पन्न होकर तीन पल्यकी आयु पूर्ण कर ली। यह तिर्यग्भव परिवर्तन है। इस बीच अनन्तों बार क्रम विरुद्ध आयु लेकर उत्पन्न होता रहता है, वह इस गिनतीमें नहीं है।

कोई जीव नरकभवकी जघन्यस्थिति दस हजार वर्षकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ। पश्चात् दस हजार वर्षके जितने समय हैं उतनी बार दस हजार वर्षकी जघन्य आयु लेकर उत्पन्न हो। पश्चात् क्रमसे एक-एक समय अधिककी नरकायु लेकर उत्पन्न हो होकर उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर प्रमाण आयुको पूर्ण कर ले। इस बीच अन्य भव तो लेने ही पड़ते, क्योंकि नरकभवके बाद ही वह जीव नारकी नहीं होता, मनुष्य या तिर्यञ्च होता है तथा अनेक बार क्रमविरुद्ध नरककी आयु लेकर उत्पन्न होता है, वह सब इस गिनतीमें नहीं है। यह नरकभवपरिवर्तनकी तरह है, क्योंकि मनुष्यआयु भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्यकी होती है।

देवभवपरिवर्तन नरकभवपरिवर्तनकी तरह लगाना, किन्तु उत्कृष्ट आयुमें ३१ सागर तक ही कहना, क्योंकि इससे बड़ी स्थितिकी देवायु सम्यग्दृष्टिको ही मिलती है।

इस प्रकार इन चारों भवपरिवर्तनोंमें जितना समय लगता है उतना काल भवपरि-

वर्तनका है। ऐसे-ऐसे अनन्त भवपरिवर्तनकाल जीवके व्यतीत हो गये हैं।

प्रश्न १९६—अनादिनित्यनिगोदके यह परिवर्तन कैसे संभव हो सकता ?

उत्तर—अनादिनित्यनिगोदके यह भवपरिवर्तन तो नहीं होता, किन्तु अन्य जीवके अनन्त भवपरिवर्तनोंमें जितना काल व्यतीत हुआ उतना काल इसके भी व्यतीत हो गया है।

प्रश्न १९७—भावपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—कर्मोंकी यथासम्भव जघन्यस्थितिसे लेकर उत्कृष्टस्थितिके बन्धके कारणभूत भावोंका क्रमिक परिवर्तन भावपरिवर्तन है। वह इस प्रकार होता है—कर्मोंकी एक स्थिति-बन्धस्थान होनेके लिये या बढ़नेके लिये असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात कषायाध्यवसायस्थान हो जाते हैं। एक कषायाध्वसायस्थान होनेके लिये असंख्यातलोकप्रमाण, असंख्यात अनुभाग-बन्धाध्यवसायस्थान हो जाते हैं। एक अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होनेके लिये श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात योगस्थान हो जाते हैं।

अब प्रकृत क्रमपरिवर्तन देखें— जैसे एक जीवके ज्ञानावरणकर्मकी जघन्यस्थितिका बन्ध हुआ। इसके योग्य जघन्य योगस्थान, जघन्य अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान व जघन्य कषायाध्यवसायस्थान हुए। इसके आगे असंख्यान योगस्थान होनेपर एक अनुभागबन्धावसाय-स्थान बढ़ा व इस रीतिसे असंख्यात अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होनेपर एक कषायाध्यवसाय-स्थान बढ़ा और इसी रीतिसे असंख्यात कषायाध्यवसायस्थान होनेपर ज्ञानावरणकर्मका आगेका एक स्थितिबंधस्थान हुआ। इसी प्रकार योगस्थान अनुभागबंधाध्यवस्थान-कषायाध्यवसायस्थान क्रमसे बढ़ाकर स्थितिस्थान बढ़ाया। जब ज्ञानावरणको उत्कृष्ट स्थितिका बन्धस्थान बंध गया तब ज्ञानावरणसम्बन्धी स्थितिस्थानोंका विवरण हुआ, इसी प्रकार यथासम्भव सब कर्मोंकी जघन्यस्थितिसे लेकर उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त ले जायें। इस सबको एक भावपरिवर्तन कहते हैं। इसमें जितना काल लगता है वह भावपरिवर्तनका काल है। ऐसे-ऐसे अनन्त भावपरिवर्तन-काल जीवके हुए हैं।

प्रश्न १९८—अनादिनित्यनिगोद जीवके भावपरिवर्तन कैसे सम्भव है ?

उत्तर—कर्मोंकी यथासंभव उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय व संज्ञीपंचेन्द्रियका भव प्राप्त न होनेसे सब स्थितिस्थान न हो सकनेसे इन निगोद जीवोंके यद्यपि यह भावपरिवर्तन नही होता है तथापि अन्य जीवोंका इसमें जितना काल व्यतीत हुआ है उतना काल निगोद जीवोंका भी व्यतीत हुआ है।

प्रश्न १९९— इन पाँच प्रकारके संसारोंका काल क्या एकसा है या हीनाधिक ?

उत्तर—द्रव्यपरिवर्तनसे अनन्तगुणा काल क्षेत्रपरिवर्तनका है। क्षेत्रपरिवर्तनसे अनन्त गुणा काल कालपरिवर्तनका है, कालपरिवर्तनसे अनन्तगुणा काल भवपरिवर्तनका है और भव-परिवर्तनसे अनन्तगुणा काल भावपरिवर्तनका है।

प्रश्न २००— इस संसारानुप्रेक्षासे क्या लाभ है ?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनाके बिना अज्ञानसे यह जीव इस प्रकार नाना देहोंको धारण कर नाना क्षेत्रोंमें भव धारण कर, चारों गतियोंमें भटककर, नामकर्मोंको बांधता हुआ भयंकर दुःख भोगता चला आया है। अब यदि दुःख भोगना इष्ट नहीं है तो संसार-विपत्तिका विनाश करने वाली निज शुद्धात्माकी भावना करनी चाहिये। इस हित कर्तव्यकी प्रेरणा संसारानुप्रेक्षासे मिलती है।

प्रश्न २०१—एकत्वानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर— सुख, दुःख, जीवन, मरण सब अवस्थावोंमें मैं अकेला ही हूं, संसार-मार्गका मैं अकेला कर्ता हूं और मोक्षमार्गका मैं अकेला कर्ता हूं—इस प्रकार चिन्तवन करने एवं द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मसे रहित ज्ञायकत्वस्वरूप एक निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनेको एकत्वानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न २०२— इस भावनासे क्या लाभ है ?

उत्तर—एकत्वभावनासे दुःखोंकी शान्ति होकर सहज आनन्द प्रकट होता है। क्योंकि दुःख विकल्पोंसे उत्पन्न होता है और किसी न किसी परपदार्थके सम्बन्धसे, उपयोगसे होता है, अतः सहज ज्ञान, आनन्द स्वरूप निज आत्माके एकत्वमें उपयोग होनेपर निर्विकार अनाकुलतारूप अनुपम आनन्द प्रकट होता ही है।

प्रश्न २०३—अन्यत्वानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—देह, परिवार, वैभव, इन्द्रियसुख आदि समस्त परभाव मुझसे भिन्न हैं, अतः हेय हैं, इस प्रकारकी भावनाको अन्यत्वानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न २०४—इन्द्रियसुख मुझसे कैसे भिन्न हैं ?

उत्तर—मैं निर्विकार ध्रुव चैतन्यचमत्कार मात्र कारणसमयसार हूं और ये इन्द्रियसुख कर्माधीन एवं स्वभावविरुद्ध होनेसे विकार हैं व विनश्वर हैं। अतः मैं इन्द्रियसुखसे भी भिन्न हूं।

प्रश्न २०५— अन्यत्वानुप्रेक्षासे क्या लाभ है ?

उत्तर—परभावोंकी भिन्नता जाननेसे आत्माकी परवस्तुवोंमें हितबुद्धि नहीं होती और परमहितकारी निज शुद्ध आत्मतत्त्वमें भावना जागृत होती है।

प्रश्न २०६—एकत्वानुप्रेक्षा और अन्यत्वानुप्रेक्षा दोनोंका विषय एकत्वकी भावना है तब दोनोंमें अन्तर क्या रहा ?

उत्तर—एकत्व भावनामें तो विधिरूपसे निज आत्मतत्त्वका उपयोग किया जाता है और अन्यत्वभावनामें अन्यके निषेधरूप निज आत्मतत्त्वका उपयोग किया जाता है, यह इन

दोनों भावनाओंमें अन्तर है ।

प्रश्न २०७--अशुचित्वानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—रजवीर्यमलसे उत्पन्न, मलको ही उत्पन्न करने वाले, मलसे ही भरे देहकी अशुचिता चिन्तवन करने और अशुचि देहसे विरक्त होकर सहज शुचि चैतन्यस्वभावकी भावना करनेको अशुचित्वानुप्रेक्षा कहते हैं ?

प्रश्न २०८–अशुचित्वानुप्रेक्षासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर– देहकी अशुचिताकी भावनासे देहसे विरक्ति होती है और देहसे विरक्ति होनेके कारण देहसंयोग भी यथा शीघ्र समाप्त हो जाता है तब परमपवित्र निज ब्रह्ममें स्थित होकर यह अन्तरात्मा दुःखोंसे मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न २०९—आस्रवानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—मिथ्यात्व, कषाय आदि विभावोंके कारण ही आस्रव होता है, आस्रव ही संसार व समस्त दुःखोंका मूल है–इस प्रकार मिथ्यात्व कषायरूप आस्रवोंमें होने वाले दोषोंके चिन्तवन करने व निरास्रव निजपरमात्मतत्त्वकी भावना करनेको आस्रवानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २१०—आस्रवानुप्रेक्षासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—आस्रवके दोषोंके परिज्ञान और उससे दूर होनेके चिन्तवनके फलस्वरूप यह आत्मा निरास्रव निज परमात्मतत्त्वके उपयोगके बलसे आस्रवोंसे निवृत्त हो जाता है और अनन्तसुखादि अनन्तगुणोंसे परिपूर्ण सिद्धावस्थाका अधिकारी हो जाता है ।

प्रश्न २११–संवरानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर– जैसे जहाजके छिद्रके बन्द हो जानेपर पानीका आना बन्द हो जाता है, जिससे जहाज किनारेके नगरको प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार शुद्धात्मसंवेदनके बलसे आस्रवका छिद्र बन्द हो जानेपर कर्मका प्रवेश बन्द हो जाता है, जिससे आत्मा अनन्तज्ञानादिपूर्ण मुक्तिनगरको प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार संवरके गुणोंका चिन्तवन करने और परमसंवर-स्वरूप निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनेको संवरानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २१२—संवरानुप्रेक्षासे क्या लाभ है ?

उत्तर—परमसंवरस्वरूप निजशुद्ध कारणपरमात्माकी भावनासे आस्रवकी निवृत्ति होती है । संवरतत्त्व मोक्षमार्गका मूल है, इसकी सिद्धिसे मोक्ष प्राप्त होता है ।

प्रश्न २१३– निर्जरानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—"जैसे अजीर्ण होनेसे मलसञ्चय होने पर आहारको त्याग कर औषधि लेनेसे मल निर्जरित हो जाता है याने दूर हो जाता है, इसी तरह अज्ञान होनेसे कर्मसञ्चय होने पर आत्मा मिथ्यात्वरागादिको छोड़कर सुख दुःखमें समतारूप परमऔषधिको ग्रहण करता

है, जिससे कर्ममल निर्जरित करके याने दूर करके परमसुखी हो जाता है'' इस प्रकार निर्जरा तत्त्वके चिन्तवन करने व स्वभावतः परममुक्त निजचैतन्यस्वभावकी भावना करनेको निर्जरानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न २१४—निर्जरानुप्रेक्षासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—शुद्धोपयोगरूप निर्जरा परिणामोंके बलसे एक देश मुक्त हो-होकर सर्वदेश कर्मोंसे मुक्त हो जाता है। इस रहस्यके ज्ञातावोंको निर्जरानुप्रेक्षासे कल्याणमार्गकी इस प्रगति के लिये अन्तःप्रेरणा मिलती है।

प्रश्न २१५—लोकानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—लोककी रचनाओंका विचार करते हुए लोकके ऐसे-ऐसे स्थानोंमें यह जीव मोहभाववश अनन्त बार उत्पन्न हुआ, ऐसे चिन्तवन करने और स्वभावतः अजन्मा एवं अनादिसिद्ध चैतन्यस्वरूप निज निश्चय लोककी भावना करनेको लोकानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न २१६—लोकको किसने बनाया ?

उत्तर—लोक समस्त द्रव्योंके समूहको कहते हैं। समस्त द्रव्य जितने आकाशमें देखे जाते हैं, पाये जाते हैं उतने आकाशमें रहने वाले द्रव्यसमूहके पिण्डको लोक कहते हैं। समस्त द्रव्य स्वतःसिद्ध हैं, अतः लोक भी स्वतःसिद्ध है। इसे किसीने नहीं बनाया अथवा सर्वद्रव्य अपना-अपना परिणमन करते रहते हैं, सो सभी द्रव्योंने लोक बनाया।

प्रश्न २१७—लोकका आकार क्या है ?

उत्तर—सात पुरुष एकके पीछे एक-एक खड़े होकर पैर पसारे हुये और कमरपर हाथ रखे हुये स्थित हों उन जैसा आकार इस लोकका है। केवल मुख जितना आकार छोड़ दिया जावे।

प्रश्न २१८—लोकका बिस्तार क्षेत्र कितना है ?

उत्तर—लोकका विस्तार ३४३ घनराजू है। एक राजू असंख्यात योजनोंका होता है। एक योजन दो हजार कोशका होता है। एक कोश करीब ढाई मीलका होता है। लोकका विस्तार लोकके तीन भागोंमें बांटकर समझना चाहिये।

प्रश्न २१९—लोकके तीन भाग कौन-कौन हैं ?

उत्तर—लोकके तीन भाग ये हैं—(१) अधोलोक, (२) मध्यलोक, (३) ऊर्ध्वलोक।

प्रश्न २२०—अधोलोक कितने भागको कहते हैं ?

उत्तर—जैसे दृष्टान्तमें मनुष्यकी नाभिसे नीचेका जितना विस्तार है, ऐसे ही लोकके ठीक मध्यसे नीचेका जितना विस्तार है उतने भागको अधोलोक कहते हैं।

प्रश्न २२१—अधोलोकका कितना विस्तार है ?

उत्तर-- अधोलोकका उत्सेध ऊपरसे नीचे ७ राजू है। बिल्कुल नीचे पूर्वसे पश्चिम तक आयाम ७ राजू है और ऊपर क्रमसे घट-घटकर एक राजू रह जाता है। दक्षिणसे उत्तर में सर्वत्र विष्कम्भ ७-७ राजू है। अतः भूमि ७ में मुख १ जोड़नेसे ८ हुये, इसके आधे ४ राजू, यह चौड़ाईका एवरेज हुआ। इसमें लम्बाई ७ राजूका गुणा करनेसे ४ × ७ = २८हुआ, इसमें ७ राजू विष्कम्भका (दक्षिण उत्तर वालाका) गुणा करनेसे २८ × ७ = १९६ घन राजू अधोलोकका विस्तार है।

प्रश्न २२२-- मध्यलोकका विस्तार कितना है ?

उत्तर-- लोकके मध्यभागसे ऊपर एक लाख ४० योजन ऊँचे तक न तिर्यग्रूपमें चारों ओर असंख्यात योजनों तक याने पूर्वसे पश्चिम एक राजू व उत्तरसे दक्षिण तक सात राजू प्रमाण मध्यलोक है।

प्रश्न २२३-- ऊर्ध्वलोकका कितना विस्तार है ?

उत्तर-- ऊर्ध्वलोकका उत्सेध ७ राजू है। मध्यलोकके ऊपर एक राजू आयाम है व ऊपर ३॥ राजू जाकर ५ राजू आयाम है तथा ३॥ राजू और ऊपर जाकर एक राजू आयाम है। विष्कम्भ सर्वत्र ७-७ राजू है। यहाँ उत्सेधका अर्थ ऊँचाई है। आयामका अर्थ पूर्व पश्चिमका विस्तार है। विष्कम्भका अर्थ दक्षिण उसका विस्तार है। इसका क्षेत्रफल यह है— ५ + १ = ६ ÷ २ = ३ × ३॥ = १०॥ × ७ = ७३॥ + ७३॥ = १४७ घनराजू ऊर्ध्वलोक विस्तार है।

प्रश्न २२४-- तीनों लोकोंका सम्मिलित विचार कितना हुआ ?

उत्तर--अधोलोकका घनराजू १९६ व ऊर्ध्वलोकका घनराजू १४७, दोनोंको मिलाकर ३४३ घनराजू विस्तार हुआ। यही तीनों लोकोंका सम्मिलित विस्तार है।

प्रश्न २२५-- मध्यलोकका विस्तार क्यों नहीं जोड़ा गया है ?

उत्तर-- मध्यलोकका उत्सेध राजूके मुकाबले न कुछ है, इसलिये इसे पृथक्से गिनती में नहीं लिया जा सकता है। यह न कुछ जैसा अंश ऊर्ध्वलोकके बताये गये मापमें सबसे नीचे का अंश है।

प्रश्न २२६-- अधोलोकमें कैसी रचनायें हैं ?

उत्तर-- दक्षिण व उत्तरमें तीन-तीन राजू क्षेत्र छोड़कर लोकके मध्यमें १४ राजू उत्सेधकी एक त्रसनाली है, अधोलोककी त्रसनालीके भागमें ७ नरकोंकी रचना है। नरक ७ पृथ्वियोंमें हैं।

प्रश्न २२७-- नरककी ७ पृथ्वियाँ किस क्रमसे व्यवस्थित हैं ?

उत्तर-- इनमें सबसे ऊपर मेरुपर्वतकी आधारभूत रत्नप्रभा नामकी पृथ्वी है। इसका

बाहुल्य (मोटाई) एक लाख अस्सी हजार योजन है। इसके भी खरभाग, पंकभाग, अब्बहुल-भाग, ये तीन भाग हैं। जिनमें खरभाग व पंकभागमें तो भवनबासी व व्यन्तर देवोंके आवास हैं, नीचेके अब्बहुलभागके बिलोंमें नारक जीव हैं। इससे नीचे एक राजू आकाश जाकर नीचे शर्कराप्रभा नामकी दूसरी पृथ्वी ३२ हजार योजन मोटी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर इसके नीचे बालुकाप्रभा नामकी तीसरी पृथ्वी २८ हजार योजन मोटी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर पंकप्रभा नामकी १४ हजार योजन मोटी चौथी पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर २० हजार योजन मोटी धूमप्रभा नामकी पाँचवीं पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर १६ हजार योजन मोटी तमःप्रभा नामकी छठवीं पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर ८ हजार योजन मोटी महातमःनामकी ७वीं पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू प्रमाण आकाश है।

प्रश्न २२८– क्या पृथ्वीका माप ७ राजू क्षेत्रसे अतिरिक्त है ?

उत्तर—पृथ्वी राजूसे अतिरिक्त क्षेत्र नहीं है, किन्तु राजूके सामने पृथ्वीका बाहुल्य न कुछसा है, इसलिये नीचे एक-एक राजू आकाशका वर्णन किया है।

प्रश्न २२९– इन पृथ्वियोंके बिल किस प्रकार हैं ?

उत्तर– इन पृथ्वियोंके इस प्रकार पटल (बिलरचना भाग) हैं—पहिलीमें १३, दूसरीमें ११, तीसरीमें ९, चौथीमें ७, पाँचवींमें ५, छठीमें ३, सातवींमें १। प्रत्येक पटलमें बिल हैं। पृथ्वीके भीतर ही भीतर यह क्षेत्र हैं। इन स्थानोंका कहीं भी मुख नहीं है, जो पृथ्वीके ऊपर हो। इसलिये इन्हें बिल कहते हैं।

प्रश्न २३०– ये बिल कितने बड़े हैं ?

उत्तर—कोई बिल संख्यात हजार योजनका है और कोई बिल असंख्यात हजार योजनका है।

प्रश्न २३१– किस पृथ्वीमें कितने बिल हैं ?

उत्तर– पहिलीमें ३० लाख बिल हैं। दूसरीमें २५ लाख, तीसरीमें १५ लाख, चौथीमें १० लाख, पाँचवींमें ३ लाख, छठीमें ९९९९५ व सातवींमें केवल ५ बिल हैं। इन सबका वर्णन धर्मग्रन्थोंसे देख लेना चाहिये। विस्तार भयसे यहाँ नहीं लिखते हैं।

प्रश्न २३२– इन बिलोंमें रहने वाले नारकी कैसे जीव होते हैं ?

उत्तर– जो जीव जीवहिंसक, चुगल, दगाबाज, चोर, डाकू, व्यभिचारी और अधिक तृष्णा वाले होते हैं वे मरकर नरकगतिमें जन्म लेते हैं। इन नारकियोंको शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदिकी तीव्र वेदना रहती है। वेदना मेटनेका वहाँ जरा भी साधन नहीं है। इनकी खोटी देह होती है। ये परस्पर लड़ते, काटते, छेदते रहते हैं। इनका शरीर ही हथियार बन

जाता है, ऐसी खोटी विक्रिया है। इनकी आयु कमसे कम दस हजार वर्ष और अधिकसे अधिक ३३ सागरकी होती है। लड़ते-लड़ते शरीरके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं और पारेकी तरह फिर मिल जाते हैं। इनकी बीचमें मृत्यु भी नहीं होती।

प्रश्न २३३-- जीव जिस कर्मके उदयसे नारकी होता है ?

उत्तर-- नरकायु, नरकगति आदि कर्मोंके उदयसे जीव नारकी होता हैं। इन कर्मोंका बंध निजस्वभावके श्रद्धानसे च्युत रहकर विषयोंकी लम्पटताके परिणामके निमित्तसे होता है।

प्रश्न २३४-- नरकभवके दुःखोंसे बचनेका क्या उपाय है ?

उत्तर-- निज स्वभावकी प्रतीति करना नरकभवसे मुक्त होनेका उपाय है।

प्रश्न २३५– मध्यलोककी क्या-क्या रचनायें हैं ?

उत्तर– मध्यलोक एक राजू तिर्यग्विस्तार वाला है इसके ठीक बीचमें सुदर्शन नामक मेरूपर्वत है। यह जम्बूद्वीपके ठीक बीचमें है। जिस द्वीपमें हम रहते हैं यह वही जम्बूद्वीप है, इसका विस्तार एक लाख योजनका है। इस द्वीपकी दक्षिण दिशामें किनारेपर जम्बूद्वीपके १/१९० भागमें भरतक्षेत्र है। इस भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें हम रहते हैं। इसके उत्तरकी ओर २/१९० विस्तारमें हिमवान पर्वत है। ४/१९० विस्तारमें हैमवत्क्षेत्र है, इसमें सदा जघन्य-भोगभूमि रहती है। ८/१९० विस्तारमें महाहिमवान पर्वत है। १६/१९० विस्तारमें हरिक्षेत्र है, यहाँ सदा मध्यम भोगभूमि रहती है। ३२/१९० विस्तारमें निषध पर्वत है। ६४/१९० विस्तारमें विदेहक्षेत्र है। इसके थोड़ेसे देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रको छोड़कर जिसमें कि सदा उत्तमभोगभूमि रहती है, समस्त विदेह क्षेत्रसे सदा मुक्तिका मार्ग चलता रहता है तथा अनेक भव्य जीव मुक्त होते रहते हैं। यहाँ तीर्थंकर भी सदा पाये जाते हैं। इसके पश्चात् उत्तरकी ही ओर ३२/१९० विस्तारमें नील पर्वत है। १६/१९० विस्तारमें रम्यक्क्षेत्र है। यहाँ सदा मध्यमभोगभूमि रहती है। ८/१९० विस्तारमें रुक्मि पर्वत है। ४/१९० विस्तारमें हैरण्यवत्क्षेत्र है, इसमें सदा मध्यमभोगभूमि रहती है। २/१९० विस्तारमें शिखरी पर्वत है। १/१९० विस्तारमें ऐरावत क्षेत्र है, इसमें भरतक्षेत्रवत् रचना रहती है। भरत ऐरावत क्षेत्रोंमें बीचमें विजयार्द्ध पर्वत भी है। विदेहमें निषध व नीलसे मेरूके समीप तक दो-दो गजदन्त पर्वत हैं। कुलाचल आदि पर्वतोंपर अकृत्रिम जिनभवन व जिनचैत्यालय हैं।

प्रश्न २३६– जम्बूद्वीपसे आगे क्या है ?

उत्तर-- जम्बूद्वीपसे आगे चारों ओर लवणसमुद्र है। इसके दोनों तरफ वेदिका है। इस समुद्रका विस्तार एक ओर दो लाख योजन है। यह चूड़ीके आकारका गोल याने वृत्त है।

प्रश्न २३७– लवण समुद्रके आगे क्या है ?

उत्तर—लवणसमुद्रसे आगे चारों ओर धातकी खण्ड नामका द्वीप है। इसमें दक्षिण और उत्तरमें वेदिकासे वेदिका तक एक-एक इष्वाकार पर्वत है, जिससे दो भाग इस द्वीपके हो जाते हैं। प्रत्येक भाग ७ क्षेत्र, ६ कुलाचल, १ मेरुपर्वत है। इस तरह धातकी खण्डमें १४ क्षेत्र, १२ कुलाचल, २ मेरु हैं। इनमें व्यवहारका वर्णन भरतके क्षेत्रोंकी तरह जानना। इस द्वीपका विस्तार एक ओर ४ लाख योजन है। यह भी चूड़ीके आकारका वृत्त है व आगे सभी द्वीप समुद्र इसी प्रकार गोल एक दूसरेको घेरे हुये हैं।

प्रश्न २३८— धातकी खण्ड द्वीपसे आगे क्या है ?

उत्तर— धातकी खण्ड द्वीपसे आगे चारों ओर कालोद समुद्र है। इसके दोनों ओर दो वेदिकायें हैं। इसका विस्तार एक ओर ८ लाख योजन हैं।

प्रश्न २३९—कालोद समुद्रसे आगे क्या है ?

उत्तर—कालोद समुद्रसे आगे पुष्करवर द्वीप है। इसका एक ओर विस्तार १६ लाख योजन है। इसके बीच चारों ओर गोल मानुषोत्तनामा पर्वत है। इस पूर्वार्द्धमें धातकी खण्ड द्वीप जैसी रचना है। यहाँ तक ही मनुष्यलोक है। इससे परे उत्तरार्द्धमें तथा आगे आगे द्वीप और समुद्र असंख्यात हैं। उनमेंसे अन्तिम द्वीप व समुद्रको छोड़कर सबमें कुभोगभूमि जैसा व्यवहार है।

प्रश्न २४०—अन्तिम द्वीपमें व सागरमें क्या रचना है ?

उत्तर—स्वयंभूरमण नामक अन्तिम द्वीप और स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्रमें कर्मभूमि जैसी रचना है, किन्तु उसमें हैं तिर्यञ्च ही। इसी द्वीप व समुद्रमें बहुत बड़ी अवगाहना वाले भ्रमर, बिच्छू, मत्स्य आदि पाये जाते हैं।

मध्यलोकका वर्णन भी बहुत बड़ा है, इसे धर्मग्रन्थोंसे देख लेना चाहिये। विस्तारभय से यहां नहीं लिखा है।

प्रश्न २४१—मध्यलोकके वर्णनसे हमें क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर—विदेहकी रचनासे यह बोध हुआ कि साक्षात् मोक्षमार्ग सदा खुला हुआ है। मध्यलोकमें ढाई द्वीपमें, नन्दीश्वरद्वीपमें व तेरहवें द्वीपमें व अन्यत्र अकृत्रिम चैत्यभवन हैं। उनके बोधसे भक्ति उमड़ती है। तथा सर्वसारकी बात यह है कि यदि निज शुद्ध आत्मतत्त्व का श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप समाधिभाव हो गया तो संसारके दुःखोंसे मुक्त हुआ जा सकता है अन्यथा मध्यलोकमें भी अनेक प्रकारके कुमानुष व तिर्यञ्च भव धारण करके भी संसार ही बढ़ेगा। यह मनुष्यजन्म अनुपम जन्म है, इसे पाकर भेदरत्नत्रय व यथायोग्य अभेदरत्नत्रय की भावनासे अपना निज निश्चयलोक सफल करो।

प्रश्न २४२— ऊर्ध्वलोककी क्या-क्या रचनायें हैं ?

उत्तर— मेरुकी चूलिकासे ऊपर लोकके अन्त तक ऊर्ध्वलोक कहलाता है। जिसकी ७ राजू त्रसनालीमें देवोंके विमान हैं और कई सर्वोपरि सिद्धलोक हैं। ऊर्ध्वलोककी त्रसनाली में पहिले ऊपर ऊपर ८ कल्पोंमें १६ स्वर्ग हैं। इसके ऊपर ग्रैवेयकविमान हैं, इसके ऊपर अनुदिश विमान हैं, इसके ऊपर अनुत्तरविमान हैं, इसके ऊपर सिद्धशिला है और इसके आगे ऊपर सिद्धलोक है।

प्रश्न २४३— प्रथमकल्पमें कैसी रचना है ?

उत्तर—सुदर्शन मेरुकी चूलिकाके ऊपर १॥ राजू तक प्रथम कल्प है। इस कल्पमें ३१ पटल हैं अर्थात् ऊपर ऊपर ३१ जगह विमानोंकी अवस्थिति है। जैसे पहिले पटलमें मध्यमें ऋतुनामक इन्द्रक विमान है, यह विमान मेरु चूलिकाके ऊपर बालकी मोटाई प्रमाण अन्तर छोड़कर अवस्थित है। इसकी चारों दिशाओंमें ६३-६३ विमान हैं, विदिशाओंमें ६२-६२ विमान हैं, मध्यमें अनेक विमान हैं। ये विमान कई संख्यात योजन विस्तार वाले हैं और कई असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। इसी तरह ऊपरके पटलोंमें रचना जानना, केवल दिशावोंमें व विदिशावोंमें १-१ विमान कम होते गये हैं। प्रकीर्णक विमानोंकी भी संख्या यथासम्भव कम होती गई है।

उक्त ३१ पटलोंमें उत्तरदिशा, आग्नेयदिशा, वायव्यदिशाकी पंक्तिके विमानों व आग्नेय उत्तरके बीच व वायव्य उत्तर दिशाके मध्यके प्रकीर्णक विमानोंका अधिपति ईशान इन्द्र है और शेष सब विमानोंका याने दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैऋत—इन पाँच दिशाओं की पंक्तिके विमानों व छहों अन्तरालोंके प्रकीर्णक विमानोंका अधिपति सौधर्म इन्द्र है। सौधर्म इन्द्र दक्षिणेन्द्र कहलाता है और ईशानइन्द्र उत्तरेन्द्र कहलाता है। दक्षिणेन्द्रके विमान अधिक होते हैं, उत्तरेन्द्रके विमान कम होते हैं। इन सब विमानोंमें देव देवियां रहती हैं। इन देवोंकी आयु प्रायः दो सागर तककी होती है। देवियोंकी आयु अनेक पल्य प्रमाण होती है। ऊपरके स्वर्गों आदिके देवोंकी आयु बढ़ती जाती है। देवियां ८ कल्पों तक ही होती हैं और उनकी आयु पल्यों प्रमाण ही बढ़कर भी रहती है। सब देवियोंकी उत्पत्ति पहिले कल्पमें ही होती है। सब विमानोंमें अकृत्रिम जिनचैत्यभवन भी हैं।

प्रश्न २४४—द्वितीय कल्पमें कैसी रचना है ?

उत्तर—प्रथम कल्पसे ऊपर १॥ राजू पर्यन्त रहने वाले द्वितीय कल्पमें ७ पटल हैं। इनमें दक्षिणेन्द्र सनत्कुमार इन्द्र है और उत्तरेन्द्र महेन्द्र इन्द्र है। दक्षिण विभागका नाम सानत्कुमार स्वर्ग है और उत्तर विभागका नाम माहेन्द्र स्वर्ग है।

प्रश्न २४५— तृतीय कल्पमें क्या रचना है ?

उत्तर —तृतीय कल्पमें ४ पटल हैं—दक्षिण विभागका नाम ब्रह्म स्वर्ग है और उत्तर

विभागका नाम ब्रह्मोत्तर स्वर्ग है। यह कल्प द्वितीय कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त अवस्थित है। इस कल्पका ब्रह्म नामक एक ही इन्द्र है।

प्रश्न २४६– चतुर्थ कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर– तृतीय कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमें चतुर्थ कल्प है। इसमें दो पटल हैं। इनके दक्षिणविभागका नाम लान्तव स्वर्ग है व उत्तर विभागका नाम कापिष्ठ स्वर्ग है। इस कल्पका इन्द्र लान्तव नामक एक ही है।

प्रश्न २४७– पञ्चम कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर—चतुर्थ कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमें पञ्चम कल्प है। इसमें पटल एक है। इसके दक्षिण विभागका नाम शुक्र स्वर्ग है और उत्तर विभागका नाम महाशुक्र स्वर्ग है। इसमें शुक्र नामक एक ही इन्द्र है।

प्रश्न २४८– छठे कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर– पञ्चम कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमें छठा कल्प है। इसमें भी पटल एक है। इसके दक्षिण विभागका नाम शतार स्वर्ग है और उत्तर विभागका नाम सह-स्रार स्वर्ग है। इस कल्पमें शतार नामक एक ही इन्द्र है।

प्रश्न २४९—सातवें कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर—छठे कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमें सातवां कल्प है। इसमें ३ पटल हैं। जिनके दक्षिण विभागका नाम आनत स्वर्ग है और अधिपति आनतनामक इन्द्र है। उत्तर विभागका नाम प्राणत स्वर्ग है और अधिपति प्राणत इन्द्र है।

प्रश्न २५०—आठवें कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर– सातवें कल्पके ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमें आठवां कल्प है। इसमें ३ पटल हैं। जिनके दक्षिण विभागका नाम आरण स्वर्ग है और अधिपति आरणनामक इन्द्र है। उत्तर विभागका नाम अच्युत स्वर्ग है और अधिपति अच्युत इन्द्र है।

प्रश्न २५१– ग्रैवेयकविमानोंकी कैसी रचना है ?

उत्तर– आठवें कल्पके ऊपर १ राजू पर्यन्त आकाशमें ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तर व सिद्धशिला एवं सिद्धलोक हैं। जिसमें ग्रैवेयककी रचना इस प्रकार है–ग्रैवेयकमें पटल ९ हैं। भव्यमिथ्यादृष्टि जीव व अभव्य भी ग्रैवेयकों तकके देवोंमें ही जन्म ले सकते हैं। किन्तु अभव्य जीव दक्षिणेन्द्र, लोकान्तिक देव, लोकपाल व प्रधान दिक्पाल नहीं हो सकते हैं। ग्रैवेयकोंमें उत्पत्ति मुनिलिङ्ग धारण करने वाले तपस्वी साधुवोंकी ही हो सकती है, चाहे वे द्रव्यलिङ्गी हों या भावलिङ्गी। ग्रैवेयकवासी देव सब अहमिन्द्र हैं।

प्रश्न २५२—अनुदिश विमानोंकी कैसी रचना है ?

उत्तर– ग्रैवेयकसे ऊपर अनुदिश है। इसमें १ पटल है व कुल विमान ९ हैं— १ मध्यमें और ८ दिशाओंमें। इन विमानोंमें सम्यग्दृष्टि मुनि ही उत्पन्न हो सकता है। ये सब अहमिन्द्र होते हैं। इनकी आयु जघन्य ३१ सागर व उत्कृष्ट ३२ सागरकी होती है।

प्रश्न २५३– अनुत्तर विमानोंकी कैसी रचना है ?

उत्तर– अनुदिशसे ऊपर अनुत्तर है। इसमें १ पटल है व विमान केवल ५ हैं। मध्यमें तो सर्वार्थसिद्ध नामक विमान है, पूर्वमें विजय, दक्षिणमें वैजयन्त, पश्चिममें जयन्त और उत्तरमें अपराजित विमान है। सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी आयु ३३ सागर है। ये १ भव मनुष्यका धारण कर मोक्षको प्राप्त होते हैं। विजयादिक ४ विमानोंके वासी देवोंकी आयु जघन्य ३२ सागर व उत्कृष्ट ३३ सागरकी होती है। ये दो भवावतारी होते हैं। ये सब अहमिन्द्र हैं।

प्रश्न २५४—सिद्धशिला कहाँपर और कैसी है ?

उत्तर—सर्वार्थसिद्धि विमानकी चोटीसे १२ योजन ऊपर सिद्धशिला है। यह मनुष्य लोकके सीधमें ऊपर है और ४५ लाख योजनकी विस्तार वाली है, इसकी मोटाई ८ योजन है। इसका आकार छत्रकी तरह है। इसपर सिद्धभगवान तो विराजमान नहीं हैं, किन्तु इसके कुछ ऊपर इस सिद्धशिलाके विस्तार प्रमाण क्षेत्रमें सिद्धभगवान विराजमान हैं। बीचमें वातवलयोंके सिवाय अन्य कोई रचना नहीं है, अतः इसे सिद्धशिला कहते हैं।

प्रश्न २५५—सिद्धलोकका संक्षिप्त विवरण क्या है ?

उत्तर—सिद्धशिलाके ऊपर योजन बाहुल्य वाला घनोदधि वातवलय है। इसके ऊपर योजन बाहुल्य वाला घनवातवलय है, इसके ऊपर बाहुल्य प्रमाण तनुवातवलय है। इस तनुवातवलयके अन्तमें सिद्धभगवान विराजमान हैं। जो साधु मनुष्यलोकमें जिस स्थानसे कर्ममुक्त हुए हैं उसकी सीधमें ऊपर एक समयमें ही आकर लोकके अंत तक यहाँ स्थित हैं। यहीं लोकका भी अन्त हो जाता है।

प्रश्न २५६—यह ३४३ घनराजूप्रमाण लोक किसके आधारपर स्थित है ?

उत्तर—इस लोकके सब ओर घनोदधिवातवलय है। उसके बाद घनवातवलय है, उसके बाद तनुवातवलय है। इन वातवलयोंके आधारपर सब लोक अवस्थित हैं। ये वातवलय भी लोकमें ही शामिल हैं। वातवलय वायुस्वरूप होनेसे ये किसीके आधारपर नहीं हैं, मात्र आकाश ही उनका आधार है।

प्रश्न २५७—इस लोकानुप्रेक्षासे विशेष लाभ क्या है ?

उत्तर– लोकके आकार रचनाओंके बोधरूप विशेष परिचयसे उत्कृष्ट वैराग्य होता है

और इसको संस्थानका विचय होनेसे संस्थानविचय नामका उत्कृष्ट धर्मध्यान होता है।

प्रश्न २५८—बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर— निज शुद्धआत्मतत्त्वका श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप बोधिका पाना अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्राप्त हो रही बोधिकी वृद्धि और दृढ़ता करना चाहिये, ऐसे चिन्तवन करने और समाधिकी ओर उन्मुख होनेको बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न २५९—बोधि अत्यन्त दुर्लभ कैसे है ?

उत्तर— इस जीवने अनादिकालसे तो एकेन्द्रिय (साधारणवनस्पति) में ही रहकर अनन्त काल व्यतीत किया, उसके पश्चात् सुयोग हुआ तो उत्तरोत्तर दुर्लभ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, संज्ञी, मनुष्य, उत्तम देश, उत्तम कुल, इन्द्रियोंका सामर्थ्य, दीर्घआयु, प्रतिभा, धर्मश्रवण, धर्मग्रहण, धर्मश्रद्धान, विषयसुखोंकी निवृत्ति, कषायोंकी निवृत्ति व रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है। अतः आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान व आत्माचरण रूप बोधिदुर्लभ है।

प्रश्न २६०— इस जीवने निम्न दशाओंमें रहकर अनन्त परिवर्तन क्यों किये ?

उत्तर— मिथ्यात्व, विषयासक्ति, कषाय आदि परिणामोंके कारण इस जीवकी निम्न दशा हुई।

प्रश्न २६१—बोधि प्राप्त करके यदि प्रमाद रहा तो क्या हानि होगी ?

उत्तर—अत्यन्त दुर्लभ रत्नत्रयरूप बोधिको पाकर यदि प्रमाद किया तो संसाररूपी भयानक बनमें दीन होकर चिरकाल तक भ्रमणकर दुःख भोगना पड़ेगा।

प्रश्न २६२—बोधि और समाधिमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—जिस जीवके सम्यग्दर्शन नहीं है उस जीवको सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी प्राप्ति होना सो तो बोधि है और रत्नत्रय बनाये रहना, वृद्धि करना तथा भवान्तरमें ले जाना सो समाधि है। निर्वाण प्राप्त कर लेना यह परमसमाधि है।

प्रश्न २६३—धर्मानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्मके बिना ही यह जीव सहजसुखसे दूर रह कर इन्द्रियाभिलाषाजनित दुःखोंको सहता हुआ ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करता हुआ चला आया है। जब इस जीव को धर्मका शरण हो जाता है तब राजाधिराज चक्रवर्ती देवेन्द्र जैसे उत्कृष्ट पदोंके सुख, भोगा कर अभेद रत्नत्रयभावनारूप परमधर्मके प्रसादसे अरहन्त होकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होत है। इत्यादि धर्मकी उत्कृष्टताके चिन्तवन करने और धर्माचरणको धर्मानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न २६४—धर्मका क्या स्वरूप है ?

उत्तर— धर्मके स्वरूपका कई प्रकारोंसे वर्णन है, उन्हें क्रमसे लिखते हैं। उनमें प्रायः

उत्तरोत्तर पहिलेकी अपेक्षा आगेको व्यवहार या बहिरङ्गरूप लक्षण जानने चाहियें:—

(१) अखण्ड चैतन्यस्वभावको धर्म कहते हैं।

(२) अखण्ड चैतन्यस्वभावके पूर्ण अनुरूप परिणमनको धर्म कहते हैं।

(३) मोह, क्षोभसे सर्वथा मुक्त आत्मपरिणमनको धर्म कहते हैं।

(४) रागद्वेषकी बाधारहित परमअहिंसाको धर्म कहते हैं।

(५) निज शुद्धात्माके श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप अभेदरत्नत्रयको धर्म कहते हैं।

(६) शुद्धात्माके संवेदनको धर्म कहते हैं।

(७) शुद्धात्माके अवलम्बनको धर्म कहते हैं।

(८) शुद्धात्मतत्त्वके उपयोगको धर्म कहते हैं।

(९) शुद्धात्मतत्त्वकी भावनाको धर्म कहते हैं।

(१०) शुद्धात्मतत्त्वकी प्रतीति, दृष्टिको धर्म कहते हैं।

(११) उत्तम क्षमादि दस विशुद्ध भावोंको धर्म कहते हैं।

(१२) जीवादि तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धान, यथार्थ ज्ञान और अव्रतत्यागरूप भेदरत्नत्रयको धर्म कहते हैं।

(१३) जो दुःखोंसे छुटाकर उत्तम सुखमें ले जावे उसे धर्म कहते हैं।

(१४) समता, वन्दनादिक साधुके षट् आवश्यकोंके पालन करनेको धर्म कहते हैं।

(१५) देवपूजा गुरूपास्ति आदिक श्रावकके ६ कर्तव्योंके पालन करनेको धर्म कहते हैं।

(१६) जीवदया करनेको धर्म कहते हैं।

प्रश्न २६५– परीषहजय नामक भावसम्वर विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर—अनेक परीषहों, वेदनाओंका तीव्र उदय होनेपर भी सुख-दुःख, लाभ, अलाभ आदिमें समतापरिणामके द्वारा जो कि सम्वर और निर्जराका कारण है, निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्दसे चलित नहीं होनेको परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २६६– परीषहजय कितने प्रकारके हैं?

उत्तर– परीषहजय २२ प्रकारके हैं—(१) क्षुधापरीषहजय, (२) तृषापरीषहजय, (३) शीतपरीषहजय, (४) उष्णपरीषहजय, (५) दंशमशकपरीषहजय, (६) नाग्न्यपरीषहजय, (७) अरतिपरीषहजय, (८) स्त्रीपरीषहजय, (९) चर्यापरीषहजय, (१०) निषद्यापरीषहजय, (११) शय्यापरीषहजय, (१२) आक्रोशपरीषहजय, (१३) बधपरीषहजय, (१४) याचनापरीषहजय, (१५) अलाभपरीषहजय, (१६) रोगपरीषहजय, (१७) तृणस्पर्शपरीषहजय, (१८) मलपरीषहजय, (१९) सत्कारपुरस्कारपरीषहजय, (२०) प्रज्ञापरीषहजय, (२१) अज्ञानपरीषहजय, (२२) अदर्शनपरीषहजय।

प्रश्न २६७— क्षुधापरीषहजयका क्या स्वरूप है ?

उत्तर— मास दो मास, चार मास, छः मास तकके उपवास होनेपर भी अथवा एक वर्ष तक आहार न करनेपर भी अथवा अनेक प्रकारकी तपस्याओंसे शरीर कृश होनेपर भी क्षुधावेदनाके कारण अपने विशुद्ध ध्यानसे च्युत न होना और मोक्षमार्गमें विशेष उत्साहसे लगना सो क्षुधापरीषहजय है। ये साधु ऐसे समय ऐसा भी चिन्तवन करते हैं कि परतन्त्र होकर नरकगतिमें सागरों पर्यन्त क्षुधा सही। तिर्यंच पर्यायमें परके वश होकर मनुष्य पर्यायमें जेलखाने आदिमें रहकर अनेक क्षुधावेदनायें सहीं। यहां तो यह वेदना क्या है जब कि मैं आत्माधीन, स्वतन्त्र हूं आदि।

प्रश्न २६८—तृषापरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर— प्रतिदिन भ्रमण करते रहनेपर भी कड़ुवा, तीखा आदि यथाप्राप्त भोजन करने पर भी आतापनयोग आदि अनेक तपस्या करनेपर भी स्नान, परिसेचन आदिका परित्याग करने वाले साधुके आत्मध्यानसे विचलित न होने और संतोषजलसे तृप्त रहनेको तृषापरीषह-जय कहते हैं।

प्रश्न २६९—शीतपरीषहजयका क्या स्वरूप है ?

उत्तर— तीव्र शीत ऋतुमें हवा, तुषारके बीच मैदानमें, बनमें आत्मसाधनाके अर्थ आवास करने पर भी पूर्वके आरामोंका स्मरण न करते हुए नरकादिकी शीतवेदनाओंका परिज्ञान रखने वाले साधुके शीतवेदनाके कारण आत्मसाधनासे चलित न होनेको शीतपरी-षहजय कहते हैं।

प्रश्न २७०— उष्णपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- तीव्र ग्रीष्मकालमें तप्त मार्ग पर विहार करने पर भी, जलते हुये बनके बीच रहने पर भी एवं अन्य ऐसे अनेक प्रसङ्ग होने पर भी भेदविज्ञानके बलसे समतापरिणाममें स्थिर रहनेको उष्णपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २७१— दंशमशकपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर— डांस, मच्छर, बिच्छू, चींटी आदि कीटोंके काटनेसे उत्पन्न हुई वेदनाको आत्मीय आनन्दके अनुरागवश समतासे सहन करनेको दंशमशकपरीषजय कहते हैं।

प्रश्न २७२— नाग्न्यपरीषह जय किसे कहते हैं ?

उत्तर—कामिनी निरीक्षण आदि चित्तको मलिन करने वाले अनेक कारणोंके मिलने पर भी सहजस्वरूपके साधक नग्नस्वरूप रहनेकी प्रतिज्ञामें स्थिर रहने और निर्विकार रहनेको नाग्न्यपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २७३--अरतिपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनिष्ट पदार्थोंका समागम हो जाने पर भी पूर्व रतिका स्मरण न करते हुये अरति याने विरोध, ग्लानि न करने और आत्मसाधनामें बने रहनेको अरतिपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २७४– स्त्रीपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर– रूपयौवनगर्वोन्मत्त युवतीके द्वारा एकान्तमें नाना अनुकूल प्रयत्न करने पर भी निर्विकार रहनेको स्त्रीपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २७५– चर्यापरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुरुजनोंकी चिरकाल तक सेवा करनेसे जिनका ज्ञान, ब्रह्मचर्य और वैराग्य दृढ़ हो गया, ऐसे साधुके गुरु आज्ञासे एकाकी विहार करते हुये पैरमें कांटा, कंकड़ आदि तीक्ष्ण नुकीली चीजके छिद जानेपर भी पूर्वानुभूत सवारीके आरामका स्मरण न करते हुये समतासे वेदनाके सहन कर लेने और आत्मचर्यामें उद्यत रहनेको चर्यापरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २७६—निषद्यापरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—भयङ्कर बनमें, कङ्करीले व स्थंडिल प्रदेशपर ध्यान करते समय व्याधि, उपसर्ग आदिकी बाधाओंको समतासे सहकर आसनसे, कायोत्सर्गसे चलायमान न होने और अपने आपमें स्थित होनेको निषद्यापरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २७७– शय्यापरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वाध्याय आदि आवश्यक कर्तव्योंके करनेसे हुये शारीरिक थकानके निराकरणार्थ तिकोने, गठीले, कंकरीले आदि भूमि पर एक करवट, दण्डवत् आदिसे शयन करते हुये खेद न माननेको शय्यापरीषहजय कहते हैं। साधु इस समय कोई आकुलता नहीं करते हैं। जैसे– यह बन हिंसक जन्तुओंसे व्याप्त है, जल्दी निकल जाना चाहिये अथवा कब रात खत्म होती है आदि।

प्रश्न २७८– आक्रोशपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसीके द्वारा बाणोंकी तरह मर्मभेदी दुर्वचन, गाली आदिके प्रयोग किये जाने पर भी प्रतीकारमें समर्थ होकर भी उन्हें क्षमा कर देने और अपनेमें विकार उत्पन्न न होने देनेको आक्रोशपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २७९—वधपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर– किसी चोर, डाकू, बैरी आदिके द्वारा मारे पीटे व प्राणघात किये जानेपर भी अबध्य शुद्धात्मद्रव्यके अनुभवमें स्थिर रहनेको वधपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८०– याचनापरिषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—कितनी ही व्याधि अथवा क्षुधादिकी वेदना होने पर भी औषधि आहार

आदिकी याचना व इशारा आदि न करने और अपने चैतन्यस्वभाव वैभवकी दृष्टिसे संतुष्ट रहनेको याचनापरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८१– अलाभपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—कितनी ही वेदनाका प्रसङ्ग होनेपर भी आहार, औषधि आदिका अलाभ होने पर, लाभसे अलाभको श्रेयस्कर समझकर धैर्यसे विचलित न होने और आत्मलाभसे तृप्त रहने को अलाभपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८२– रोगपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—कष्ट आदि अनेक दुःख रोगोंके होनेपर उनके निवारण करनेका ऋद्धि बलसे सामर्थ्य होनेपर भी निर्विकल्पसमाधिकी रुचिके कारण प्रतीकार न करने, समतासे उसे सहने और निरामय आत्मस्वरूपके लक्ष्यसे चलित न होनेको रोगपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८३– तृणस्पर्शपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर– नुकीला तृण, कंकरीली भूमि, पत्थरकी शिला आदिपर विहार व्याधि आदि के कारण हुए देहजश्रमके निवारणार्थ शयन आसन करते हुये खेद न मानने और स्वरूपस्पर्श की ओर ध्यान बनाये रहनेको तृणस्पर्शपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८४– मलपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर– पसीनेके मलसे दाद, खाज, छाजन आदि तककी वेदनायें हो जानेपर भी पीड़ा की ओर लक्ष्य न देने, जीवदयाके भावसे रगड़ना, उबटन आदि न करने और कर्ममल दूर करने वाले स्वानुभवके तपमें लीन रहनेको मलपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८५—सत्कारपुरस्कारपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर– दूसरोंके द्वारा प्रशंसा, सम्मान किये जानेपर प्रसन्न न होने व निन्दा अपमान किये जानेपर रुष्ट न होने तथा अनेक चातुर्य तप होनेपर भी कोई मेरी मान्यता नहीं करता, ऐसा भाव न लाने और निज चैतन्यस्वभावकी महिमामें लगे रहनेको सत्कारपुरस्कारपरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८६– प्रज्ञापरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—मिथ्याप्रवादियोंपर विजय प्राप्त करनेपर भी, अनेक विद्यावोंके पारगामी होने पर भी गर्व न करने और निज विज्ञानघनस्वभावमें उपयुक्त रहनेको प्रज्ञापरीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८७—अज्ञानपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनेक तपोंको चिरकालसे करते रहनेपर भी मुझे अवधिज्ञान आदि कोई प्रकृष्ट ज्ञान नहीं हुआ, बल्कि मुझे लोग मंदबुद्धि, मूर्ख आदि कहते हैं, इस प्रकारके अज्ञान-जनित खेद न करने और ज्ञानसामान्य स्वभावकी दृष्टि द्वारा प्रसन्न रहनेको अज्ञानपरीषहजय

कहते हैं।

प्रश्न २८८— अदर्शनपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर— महोपवासादि अनेक तपस्यावोंके करने पर भी अब तक कोई अतिशय या प्रातिहार्य प्रकट नहीं हुआ। मालूम होता है कि जो यह शास्त्रोंमें वर्णित है कि महोपवासादि तपके माहात्म्यसे प्रातिहार्य या ज्ञानातिशय हो जाते हैं यह मिथ्या है, तप करना व्यर्थ है ऐसे दुर्भाव न होने व सत्यश्रद्धानसे चलित न होकर आत्मदर्शनकी ओर बने रहनेको अदर्शन-परीषहजय कहते हैं।

प्रश्न २८९— साधुके एक समयमें अधिकसे अधिक कितनी परीषहोंका विजय हो जाता है ?

उत्तर—साधुके एक समयमें अधिकसे अधिक १९ परीषहोंका विजय हो जाता है। तीन परीषहें इसलिये कम हो जाती हैं कि एक समयमें शीत, उष्णसे एक ही होगा व निषद्या, चर्या, शय्यामें से एक ही होगा।

प्रश्न २९०—परीषहजयसे क्या क्या लाभ है ?

उत्तर— परीषहजयके लाभ इस प्रकार हैं—

(१) बिना दुःखके अभ्यास किया हुआ ज्ञान दुःख उपस्थित होने पर भ्रष्ट हो सकता है, किन्तु दुःखोंमें धैर्य बनाने वाले परीषहजयके अभ्यासीका ज्ञान भ्रष्ट नहीं हो सकता, अतः परीषहजयसे ज्ञानकी दृढ़ताका लाभ है।

(२) कर्मोंका उदय निष्फल टल जाना।

(३) पूर्वस्थित कर्मोंकी निर्जरा होना।

(४) नवीन अशुभ कर्मोंका व यथोचित शुभ कर्मोंका संवर होना।

(५) सदा निःशङ्क रहना।

(६) आगामी भयसे मुक्त रहना।

(७) धैर्य, क्षमा, संतोष आदिकी वृद्धिसे इस लोकमें सुखी रहना।

(८) पापप्रकृतियोंका नाश होनेसे परलोकमें नाना अभ्युदय मिलना।

(९) सर्व संसार दुःखोंसे रहित परमानन्दमय मोक्षपद मिलना इत्यादि अनेक लाभ परीषहजयसे होते हैं।

प्रश्न २९१— चारित्रनामक भावसंवरविशेष किसे कहते हैं ?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मस्वरूपमें अवस्थित रहनेको चारित्र कहते हैं।

प्रश्न २९२—चारित्रके कितने भेद हैं ?

उत्तर—चारित्र तो वस्तुतः एक ही प्रकारका होता है, किन्तु उसके अपूर्ण पूर्ण आदि

की विपक्षासे ५ प्रकारके होते हैं– (१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापना, (३) परिहारविशुद्धि। (४) सूक्ष्मसाम्पराय, (५) यथाख्यातचारित्र।

प्रश्न २९३-- सामायिकचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—सर्व जीव चैतन्यसामान्यस्वरूप हैं, सब समान हैं--इस भावनाके द्वारा समता परिणाम होने, स्वरूपानुभवके बलसे शुभ अशुभ सङ्कल्प विकल्प जालसे शून्य समाधिभावके होने, निर्विकार निज चैतन्यस्वरूपके अवलम्बनसे रागद्वेषसे शून्य होने, सुख–दुःख, जीवनमरण लाभ अलाभमें मध्यस्थ होने व विकल्परहित परमनिवृत्तिरूप व्रतके पालनेको सामायिक चारित्र कहते हैं।

प्रश्न २९४– छेदोपस्थापना चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर– सर्वविकल्पपरित्यागरूप सामायिकमें स्थित न रह सकने पर अहिंसा व्रत, सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, अपरिग्रहव्रत—इन पाँच प्रकारके व्रतोंके द्वारा पापोंसे निवृत्त होकर अपने आपको शुद्धात्मतत्त्वकी ओर उन्मुख करनेको छेदोपस्थापनाचारित्र कहते हैं।

अथवा, उक्त पाँच प्रकारके महाव्रतोंमें कोई दोष लगने पर व्यवहार प्रायश्चित व निश्चय प्रायश्चित द्वारा शुद्ध होकर निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी ओर उन्मुख होनेको छेदोपस्थापनाचारित्र कहते हैं?

प्रश्न २९५– परिहारविशुद्धिचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—रागादि विकल्पोंके विशेष पद्धतिसे परिहारके द्वारा आत्माकी ऐसी निर्मलता प्रकट होना जिससे एक ऋद्धिविशेष प्रकट होती है, जिसके कारण विहार करते हुये किसी जीवको रंच भी बाधा न हो, उसे परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं।

प्रश्न २९६—सूक्ष्म साम्परायचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर– सूक्ष्म और स्वानुभवगम्य निज शुद्धात्मतत्त्वके सम्वेदने रूप जिस चारित्रसे अवशिष्ट संज्वलनसूक्ष्मलोभका भी उपवास या क्षय हो उसे सूक्ष्मसाम्परायचारित्र कहते हैं।

प्रश्न २९७—यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—जैसा स्वभावसे सहज शुद्ध, कषायरहित आत्माका स्वरूप है वैसे ख्यात याने प्रकट हो जानेको यथाख्यातचारित्र कहते हैं?

प्रश्न २९८– उक्त भावसंवरविशेषोंके द्वारा क्या पापकर्मका ही संवर होता है या पुण्यकर्मका भी संवर होता है?

उत्तर—निश्चयरत्नत्रयके साधक व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभोपयोगमें हुये भावसंवरविशेष मुख्यतया पापकर्मके संवरके कारण हैं, और व्यवहाररत्नत्रय द्वारा साध्य निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्धोपयोगमें हुये भावसंवरविशेष पाप, पुण्य दोनों कर्मोंके संवर करने वाले होते हैं।

इस प्रकार संवरतत्त्वका वर्णन करके अब निर्जरातत्त्वका वर्णन करते हैं।

जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

अन्वय—जेण भावेण जहकालेण य तवेण भुत्तरसं कम्मपुग्गलं सडदि च तस्सडणं इति विज्जरा दुविहा णेया।

अर्थ— जिस आत्मपरिणामसे समय पाकर या तपस्याके द्वारा भोगा गया है रस जिसका, ऐसा कर्मपुद्गल झड़ता है वह और कर्म पुद्गलोंका झड़ना— इस प्रकार निर्जरा दो प्रकारकी जानना चाहिये।

प्रश्न १—किस आत्मपरिणामसे कर्मपुद्गलकी निर्जरा होती है ?

उत्तर—निर्विकार चैतन्यचमत्कारमात्र निजस्वभावके सम्वेदनसे उत्पन्न सहज आनंद-रसके अनुभव करने वाले परिणामसे कर्म पुद्गलोंकी निर्जरा होती है।

प्रश्न २—अपने समयपर फल देकर झड़ने वाले कर्मोंकी निर्जरामें भी क्या इस शुद्धात्मसम्वेदनपरिणामकी आवश्यकता है ?

उत्तर—आवश्यकता तो नहीं है, किन्तु यथाकाल होने वाली निर्जरा भी यदि शुद्धात्मसंवेदन परिणामके रहते हुये होती है तो वह संवरपूर्वक निर्जरा होनेसे मोक्षमार्ग वाली निर्जरा कहलाती है।

प्रश्न ३— यदि अशुद्ध सम्वेदनाके रहते हुये यथाकाल निर्जरा हो तो क्या वह निर्जरा नहीं है ?

उत्तर— अशुद्ध संवेदनके होते हुये जो यथाकाल निर्जरा होती है वह अज्ञानियोंके होती है। ऐसी निर्जराको उदय शब्दसे कहनेकी प्रधानता है। इसमें थोड़ा कर्मद्रव्य तो झड़ता है और बहुत अधिक कर्मद्रव्य बंध जाता है। यह मोक्षमार्ग सम्बन्धी निर्जरा नहीं है और न इस निर्जराका यह प्रकरण है।

प्रश्न ४— अज्ञानी जीवके बिना कालके, पहिले भी तो निर्जरा हो जाती है, उसे क्या कहेंगे ?

उत्तर— उदयकालसे पहिले इस तरह झड़नेको उदीरणा कहते हैं। यह उदीरणा भी अशुभ प्रकृतियोंकी होती है, क्योंकि अज्ञानी जीवके उदीरणा संक्लेशपरिणामवश होती है और अधिक वेदना उत्पन्न करती हुई होती है।

प्रश्न ५— तपसे कर्म समयसे पहिले क्यों झड़ जाते हैं ?

उत्तर—तप इच्छानिरोधको कहते हैं। जब इच्छा = स्नेहकी चिकनाई या गीलाई नहीं रहती तब कर्मपुञ्ज बालू रेतकी तरह स्वयं झड़ जाते हैं।

प्रश्न ६– क्या कर्मपुञ्ज अटपट झड़ते हैं क्या किसी व्यवस्थासहित झड़ते हैं ?

उत्तर—कर्मद्रव्य श्रेणिनिर्जराके क्रमसे निर्जराको प्राप्त होते हैं। इस श्रेणिनिर्जराका वर्णन लब्धिसार क्षपणसार ग्रंथसे देखना। यहाँ विस्तार भयसे नहीं लिख रहे हैं।

प्रश्न ७– निर्जरा कितने प्रकारकी है ?

उत्तर—निर्जरा दो प्रकारकी है—(१) भावनिर्जरा और (२) द्रव्यनिर्जरा।

प्रश्न ८– भावनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस आत्मपरिणामसे कर्म झड़ते हैं उस आत्मपरिणामको भावनिर्जरा कहते हैं।

प्रश्न ९– द्रव्यनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर– कर्मोंके झड़नेको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं।

प्रश्न १०– संवरपूर्वक निर्जराका मुख्य कारण क्या है ?

उत्तर—संवरपूर्वक निर्जराका मुख्य कारण तप है और जितने परिणाम संवरके कारण हैं वे सब निर्जराके भी कारण हैं।

प्रश्न ११– निर्जरा क्या केवल पापकर्मोंकी होती है या पाप, पुण्य दोनों कर्मोंकी ?

उत्तर– सरागसम्यग्दृष्टि जीवोंके प्रायः पापकर्मोंकी निर्जरा होती है और वीतराग सम्यग्दृष्टियोंके पाप व पुण्य दोनों कर्मोंकी निर्जरा होती है।

प्रश्न १२– सरागसम्यग्दृष्टियोंके पापके निर्जराकी तरह पुण्यकी निर्जराकी तरह पुण्य निर्जरा न होनेसे क्या संसारकी वृद्धि होगी ?

उत्तर—संसारके मूल कारण पाप हैं। उनकी तो विशेषतया निर्जरा सम्यग्दृष्टि करता ही है, अतः संसारकी वृद्धि नहीं होती तथा पापकर्मकी निर्जरा होनेसे कर्मभारसे लघु हुआ यह अन्तरात्मा शीघ्र वीतराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है और तब पाप पुण्यका नाश कर शीघ्र संसारच्छेद कर सकता है।

इस प्रकार निर्जरातत्त्वका वर्णन करके अब मोक्षतत्त्वका वर्णन करते हैं—

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेयो स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुदभावो ॥३७॥

अन्वय—हु अप्पणो जो परिणामो सव्वस्स कम्मणो खयहेदू स भावमोक्खो य कम्मपुदभावो दव्वविमोक्खो णेयो।

अर्थ—निश्चयसे आत्माका जो परिणाम समस्त कर्मके क्षयका कारण है उसे तो भावमोक्ष और कर्मोंके पृथक् हो जानेको द्रव्यमोक्ष जानना चाहिये।

प्रश्न १– आत्माका कौनसा परिणाम कर्मक्षयका कारण है ?

उत्तर—निश्चयरत्नत्रयात्मक कारणसमयसाररूप आत्माका परिणाम कर्मक्षयका कारण है ।

प्रश्न २—कारणसमयसार क्या है ?

उत्तर—कारणसमयसार २ प्रकारसे जानना चाहिये– (१) सामान्यकारणसमयसार, (२) विशेषकारणसमयसार ।

प्रश्न ३—सामान्यकारणसमयसार किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनाद्यनन्त, अखण्ड, अहेतुक चैतन्यस्वभावको सामान्यकारणसमयसार कहते हैं । इसका दूसरा नाम पारिणामिक भाव या परमपारिणामिक भाव है ।

प्रश्न ४– क्या सामान्यकारणसमयसार मोक्षका कारण नहीं है ?

उत्तर– सामान्यकारणसमयसारकी अशुद्ध शुद्ध नाना परिणतियाँ होती रहती हैं, केवल मोक्षका ही कारण हो ऐसा नहीं है अथवा उसका स्वयं स्वरूप पर्याय आदि भेद कल्पनासे रहित है अतः वह मोक्षहेतु नहीं है ।

प्रश्न ५– सामान्यकारणसमयसारकी दृष्टि हुये बिना तो मोक्षमार्गका भी प्रारम्भ नहीं होता, फिर वही मोक्षहेतु कैसे नहीं है ?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसारकी दृष्टि, प्रतीति, आलम्बन, अनुभूति ये सब मोक्षके हेतु हैं, किन्तु सामान्यकारणसमयसार स्वयं न हेतु है और न कार्य है तथा न अन्य कल्पनागत है । यह तो सामान्यस्वरूप है ।

प्रश्न ६ – विशेषकारणसमयसार किसे कहते हैं ?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसारकी दृष्टि, प्रतीति, आलम्बन, भावना, अनुभूति, अनुरूप परिणति ये सब विशेषकारणसमयसार हैं ।

प्रश्न ७– मोक्षका साक्षात् हेतु क्या है ?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसारके अनुरूप परिणमनरूप विशेष कारणसमयसार मोक्षका साक्षात् हेतु है । इसके दूसरे नाम निश्चयरत्नत्रय, अभेदरत्नत्रय, एकत्व वितर्क अवीचार शुक्लध्यान, परमसमाधि, वीतरागभाव आदि हैं ।

प्रश्न ८—तब तो विशेषकारणसमयसारका ही ध्यान करना चाहिये ?

उत्तर—नहीं ध्येय तो सामान्यकारणसमयसार होता है । विशेषकारणसमयसार तो कहीं ध्यानरूप और कहीं ध्यानके फलरूप है ।

प्रश्न ९—भावमोक्ष किस गुणस्थानमें है ?

उत्तर– भावमोक्ष १३ वें गुणस्थानमें है और आत्मद्रव्यकी अपेक्षा भावमोक्ष याने

जीवमोक्ष अतीत गुणस्थान होते ही हो जाता है।

प्रश्न १०– द्रव्यमोक्ष किस गुणस्थानमें होता है ?

उत्तर– घातिया कर्मोंकी अपेक्षासे द्रव्यमोक्ष १३वें गुणस्थानमें है और समस्त कर्मकी मुक्तिकी अपेक्षा द्रव्यमोक्ष अतीत गुणस्थान होते ही हो जाता है।

प्रश्न ११– मुक्तावस्थामें आत्माकी क्या स्थिति है ?

उत्तर– मुक्त परमात्मा केवलज्ञानके द्वारा तीन लोक, तीन कालवर्ती सर्वद्रव्य गुण-पर्यायोंको जानते रहते हैं, केवलदर्शनके द्वारा सर्वज्ञायक आत्माके स्वरूपको निरन्तर चेतते रहते हैं, अनन्त आनन्दके द्वारा पूर्ण निराकुलतारूप सहज परमआनन्दको भोगते रहते हैं। इसी प्रकार समस्त गुणोंके शुद्ध विकासका अनुभव करते रहते हैं।

प्रश्न १२– किन कर्मप्रकृतियोंका किस गुणस्थानमें पूर्ण क्षय हो जाता है ?

उत्तर– जिस मनुष्यभवमें आत्मा मुक्त होता है उसमें नरकायु, देवायु व तिर्यगायुकी तो सत्ता ही नहीं है। अनन्तानुबन्धी ४ व दर्शनमोहकी ३, इन सात प्रकृतियोंका चौथेसे लेकर सातवें तक किसी भी गुणस्थानमें क्षय हो जाता है। नवमे गुणस्थानमें पहिले स्त्यान-गृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला व नामकर्मकी १३ इस तरह १६ का क्षय, पश्चात् अप्रत्या-ख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी ८, पश्चात् नपुंसकवेद, पश्चात् स्त्रीवेद, पश्चात् ६ नोकषाय, पश्चात् पुरुषवेद, पश्चात् संज्वलनक्रोध, पश्चात् संज्वलनमान, पश्चात् संज्व-लन माया, इन ३६ प्रकृतियोंका क्षय होता है। १०वें गुणस्थानमें संज्वलनलोभका क्षय होता है। १२वें गुणस्थानमें ज्ञानावरणकी ५, अन्तरायकी ५, दर्शनावरणकी अवशिष्ट ६— इन १६ प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है। इस तरह ३ + ७ + ३६ + १ + १६ = ६३ तरेसठ प्रकृतियोंका नाश हो जाता है और सकलपरमात्मत्व हो जाता है। पश्चात् शेषकी ८५ प्रकृ-तियोंका क्षय १४वें गुणस्थानमें होता है और गुणस्थानातीत होकर आत्मा निकलपरमात्मा हो जाता है।

इस प्रकार मोक्षतत्त्वके वर्णनके साथ-साथ तत्त्वोंका वर्णन समाप्त हुआ। इन सात तत्त्वोंमें पुण्य और पाप मिलानेसे ९ पदार्थ हो जाते हैं। उन पुण्य और पाप पदार्थोंका कथन इस गाथामें बताते हैं—

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

अन्वय—सुहअसुहभावजुत्ता जीवा खलु पुण्णं पावं हवंति। सादं सुहाउ णादं गोदं पुण्णं, च पराणि पावं।

अर्थ—शुभ व अशुभ भावसे युक्त जीव पुण्य और पाप होते हैं। सातावेदनीय, तिर्य-

गायु, मनुष्यायु, देवायु, नामकर्मकी शुभ प्रकृतियाँ, उच्च गोत्र ये तो पुण्यरूप हैं और बाकी सब पापप्रकृतियां हैं ।

प्रश्न १—क्या जीव स्वभावसे पुण्य, पापरूप है ?

उत्तर—परमार्थसे जीव सहज ज्ञान और आनन्दस्वभाव वाला है इसमें तो बन्धमोक्ष के भी विकल्प नहीं हैं, फिर पुण्य पापकी तो चर्चा ही क्या है ?

प्रश्न २—फिर जीव पुण्यपापरूप कैसे होते हैं ?

उत्तर—अनादिबन्ध परम्परागत कर्मके उदयसे जीव पुण्यरूप व पापरूप होते हैं ।

प्रश्न ३—पुण्यरूप जीवका क्या लक्षण है ?

उत्तर—कषायकी मन्दता होना, आत्मदृष्टि करना, देव गुरुकी भक्ति करना, देव गुरु के वचनोंमें प्रीति करना, व्रत तप संयमका पालन करना, जीवदया करना, परोपकार करना आदि पुण्यरूप जीवके लक्षण हैं ।

प्रश्न ४—पापरूप जीवके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर—कषायकी तीव्रता होना, मोह करना, देव गुरुसे विरोध करना, कुगुरु कुदेव की प्रीति करना, हिंसा करना, झूठ बोलना, चुगली निन्दा करना, चोरी डकैती करना, व्यभिचार करना, परिग्रहकी तृष्णा करना, विषयोंमें आसक्ति करना आदि पापरूप जीवके लक्षण हैं ।

प्रश्न ५—पुण्यके कितने भेद हैं ?

उत्तर—पुण्यके दो भेद हैं—(१) भावपुण्य और (२) द्रव्यपुण्य ।

प्रश्न ६—भावपुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—शुभ भावों करि युक्त जीवको अथवा जीवके शुभ भावोंको भावपुण्य कहते हैं ।

प्रश्न ७—द्रव्यपुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—साता आदि शुभ फल देनेके निमित्तभूत पुद्गल कर्मप्रकृतियोंको द्रव्यपुण्य कहते हैं ।

प्रश्न ८—पुण्य प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर—पुण्य प्रकृतियाँ ६८ हैं—(१) सातावेदनीय, (२) तिर्यगायु, (३) मनुष्यायु, (४) देवायु, (५) मनुष्यगति, (६) देवगति, (७) पंचेन्द्रियजाति, (८–१२) पाँच शरीर, (१३-१७) पाँच बन्धन, (१८–२२) पाँच संघात, (२३–२५) तीन अंगोपांग, (२६) समचतुरस्रसंस्थान, (२७) वज्रऋषभनाराचसंहनन, (२८–३५) आठ शुभ स्पर्श, (३६–४०) पाँच शुभ रस, (४१–४२) दो शुभ गंध, (४३–४७) पाँच शुभ वर्ण, (४८) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, (४९) देवगत्यानुपूर्व्य, (५०) अगुरुलघु, (५१) परघात, (५२) आतप, (५३) उद्योत, (५४) उच्छ्-

वास, (५५) प्रशस्त विहायोगति, (५६) प्रत्येक शरीर, (५७) त्रस, (५८) सुभग, (५९) सुस्वर, (६०) शुभ, (६१) वादर, (६२) पर्याप्ति, (६३) स्थिर, (६४) आदेय, (६५) यशःकीर्ति, (६६) तीर्थंकर, (६७) निर्माणनामकर्म, (६८) उच्चगोत्र।

प्रश्न ९—पापके कितने भेद हैं ?

उत्तर—पापके दो भेद हैं—(१) भावपाप और (२) द्रव्यपाप।

प्रश्न १०— भावपाप किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अशुभ भाव करि युक्त जीवको अथवा जीवके अशुभ भावको भावपाप कहते हैं।

प्रश्न ११— द्रव्यपाप किसे कहते हैं ?

उत्तर-- असाता आदि अशुभ फल देनेके निमित्तभूत पुद्गलकर्मप्रकृतियोंको द्रव्यपाप कहते हैं।

प्रश्न १२-- पापप्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उत्तर— पापप्रकृतियाँ १०० हैं—(१-५) पाँच ज्ञानावरण, (६-१४) नौ दर्शनावरण, (१५-४२) अट्ठाइस मोहनीय, (४३-४७) पाँच अन्तराय, (४८) असातावेदनीय, (४९) नरकायु, (५०) नरकगति, (५१) तिर्यंग्गति, (५२) एकेन्द्रियजाति, (५३) द्वीन्द्रियजाति, (५४) त्रीन्द्रियजाति, (५५) चतुरिन्द्रिय जाति, (५६) न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, (५७) स्वातिसंस्थान, (५८) वामनसंस्थान, (५९) कुब्जकसंस्थान, (६०) हुंडकसंस्थान, (६१) वज्रनाराचसंहनन, (६२) नाराचसंहनन, (६३) अर्द्धनाराचसंहनन, (६४) कीलकसंहनन, (६५) असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, (६६-७३) आठ अशुभस्पर्श, (७४-७८) पाँच अशुभरस, (७९-८०) दो अशुभगंध, (८१-८५) पाँच अशुभवर्ण, (८६) नरकगत्यानुपूर्व्य, (८७) तिर्यंग्गत्यानुपूर्व्य, (८८) उपघात, (८९) अप्रशस्तविहायोगति, (९०) साधारणशरीर, (९१) स्थावर, (९२) दुर्भग, (९३) दुःस्वर, (९४) अशुभ, (९५) सूक्ष्म, (९६) अपर्याप्ति, (९७) अस्थिर, (९८) अनादेय, (९९) अयशःकीर्तिनामकर्म, (१००) नीचगोत्रकर्म।

प्रश्न १३— पुण्यप्रकृति ६८ व पापप्रकृति १००, ये मिलकर १६८ कैसे हो गईं ? प्रकृतियाँ तो कुल १४८ ही हैं।

उत्तर— आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गंध, पांच वर्णनामकर्म, ये २० प्रकृतियाँ पुण्यरूप भी होती हैं और पापरूप भी होती हैं, अतः इन बीसको दोनों जगह गिननेसे १६८ हुई हैं, सामान्य विवक्षा करके बीस निकाल देनेसे १४८ ही सिद्ध हो जाती हैं।

प्रश्न १४— पुण्यप्रकृतियोंमें सबसे विशिष्ट और प्रकृष्ट पुण्यप्रकृति कौन है ?

उत्तर—तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृति समस्त पुण्यप्रकृतियोंमें विशिष्ट और प्रकृष्ट पुण्य-

प्रकृति है।

प्रश्न १५—तीर्थङ्करप्रकृतिका लाभ कैसे होता है ?

उत्तर—दर्शनविशुद्धि आदि १६ भावनाओंके निमित्तसे तीर्थङ्करप्रकृतिका लाभ होता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि समस्त प्रकृतियोंको हेय अथवा अनुपादेय माननेके कारण इसका लक्ष्य नहीं करता है अर्थात् इसे भी उपादेय नहीं समझता है।

प्रश्न १६—पापप्रकृतियोंमें सबसे अधिक निकृष्ट पापप्रकृति कौन है ?

उत्तर—मिथ्यात्वप्रकृति समस्त पापप्रकृतियोंमें निकृष्ट पापप्रकृति है। मिथ्यात्वप्रकृति के उदयसे होने वाले मिथ्यात्व परिणामसे ही संसार व संसार दुःखोंकी वृद्धि है।

प्रश्न १७—मिथ्यात्वप्रकृतिका लाभ कैसे होता है ?

उत्तर—मोह, विषयासक्ति, देव शास्त्र गुरुकी निन्दा, कुगुरु कुदेव कुशास्त्रकी प्रीति आदि खोटे परिणामोंसे मिथ्यात्वप्रकृतिका लाभ होता है।

प्रश्न १८—मिथ्यात्वका अभाव कैसे होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्वका अभावका मूल उपाय भेदविज्ञान है, क्योंकि भेदविज्ञानके न होने से ही मिथ्यात्व हुआ करता है।

प्रश्न १९—भेदविज्ञानका संक्षिप्त आशय क्या है ?

उत्तर—धन, वैभव, परिवार, शरीर, कर्म, रागादि भाव, ज्ञानादिका अपूर्ण विकास, ज्ञानादिका पूर्ण परिणमन—इन सबसे भिन्न स्वरूप वाले चैतन्यमात्र निजशुद्धात्मतत्त्वको पहिचान लेना भेदविज्ञान है।

प्रश्न २०—सम्यग्दृष्टिको तो पुण्यभाव और पापभाव दोनों हेय हैं, फिर पुण्यभाव क्यों करता है ?

उत्तर—जैसे किसीको अपनी स्त्रीसे विशेष राग है। वह स्त्री पितृगृहपर है और उस गाँवसे कोई पुरुष आये हों, तो स्त्रीकी ही वार्तादि जाननेके अर्थ उन पुरुषोंको दान सन्मान आदि करता है, किन्तु उसका लक्ष्य तो निज भामिनीकी ओर ही है। इसी तरह सम्यग्दृष्टि उपादेयरूपसे तो निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावना करता है। जब वह चारित्रमोहके विशिष्ट उदय-वश शुद्धात्मतत्त्वके उपयोग करनेमें असमर्थ होता है तो "हम शुद्धात्मभावनाके विरोधक विषय कषायमें न चले जायें व शीघ्र शुद्धात्मभावना करनेके उन्मुख हो जायें" एदर्थ जिनके शुद्ध स्वभावका विकास हो गया है, जो विकास कर रहे हैं ऐसे परमात्मा गुरुओंकी पूजा, गुण-स्तुति, दान आदिसे भक्ति करता है, किन्तु लक्ष्य शुद्धात्मतत्त्वका ही रहता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टिके पुण्यभाव हो जाता है।

प्रश्न २१—क्या इस पुण्यके फलमें सम्यग्दृष्टियोंका संसार नहीं बढ़ता है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टियोंके भी पुण्यके फलमें मिलता तो संसार ही है, किन्तु संसारकी वृद्धिका कारण नहीं होता। सम्यग्दृष्टि मरण करके इस पुण्यके फलमें देव होता है तो उस पर्यायमें तीर्थङ्करोंके साक्षात् दर्शन कर "ये वही देव हैं, वही समवशरण हैं जिसे पहिले सुना था आदि" भावोंसे धर्म प्रमोद बढ़ाते हैं, और कदाचित् भवोंका अनुभव करने पर भी आसक्ति नहीं करते हैं। पश्चात् स्वर्गसे चयकर मनुष्य होकर यथासंभव तीर्थंकरादि पद प्राप्त कर पुण्यपापरहित इस निज शुद्धात्मतत्त्वके विशेष ध्यानके बलसे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रश्न २२—पुण्य व पाप तत्त्वोंमें क्यों नहीं दिखाये ?

उत्तर—पुण्य व पापका अन्तर्भाव आस्रवतत्त्वमें हो जाता है। आस्रव दो प्रकारके होते हैं—एक पुण्यास्रव दूसरा पापास्रव। अतः सामान्य विवक्षा करके एक आस्रव तत्त्व ही कह दिया है।

प्रश्न २३—यदि आस्रवके ही भेद पुण्य पाप हैं और कोई अन्तर नहीं, तो पदार्थ भी ८ ही कहलायेंगे ९ नहीं ?

उत्तर—आस्रव और पुण्यपापमें कथंचित् अन्तर है—आस्रव तो अकर्मत्वसे कर्मत्व अवस्था प्राप्त होनेको कहते हैं। इसकी तो क्रियापर प्रधानता है और पुण्य पापमें प्रकृतित्वकी प्रधानता है। इसी कारण पदार्थकी संख्या कहते समय पुण्य पाप कहकर भी आस्रवका ग्रहण नहीं हो सकनेसे आस्रवको भी पदार्थमें गिना तब पदार्थ ९ कहना युक्तियुक्त ही है।

इस प्रकार सात तत्त्व और नव पदार्थका व्याख्यान करने वाला यह तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

चतुर्थ अधिकार

सम्मद्‌दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो तत्तियमइयो णिग्रो अप्पा ॥३९॥

अन्वय—ववहारा सम्मद्‌दंसणणाणं चरणं मोक्खस्सकारणं जाणे, णिच्छयदो तत्तियमइग्रो णिग्रो अप्पा ।

अर्थ—व्यवहारनयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको मोक्षका कारण जानो । निश्चयनयसे तत्त्रिकमय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—इन तीनों स्वरूप निज आत्माको मोक्षका कारण जानो ।

प्रश्न १— मोक्षमार्गके दो भेद क्यों कहे गये ?

उत्तर— मोक्षमार्ग तो वास्तबमें एक है, किन्तु उसका साधक जो अन्य भाव है उसे भी बताना आवश्यक है, उसको व्यवहारसे मोक्षमार्ग कहते हैं । इस प्रकार मोक्षमार्ग दो हो जाते हैं— (१) निश्चयमोक्षमार्ग, (२) व्यवहारमोक्षमार्ग ।

प्रश्न २— इन दो प्रकारके मोक्षमार्गोंमें से क्या किसी एकसे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है ?

उत्तर— मोक्ष तो निश्चयमोक्षमार्गसे ही प्राप्त होता है । व्यवहारमोक्षमार्गसे निश्चयमोक्षमार्ग प्राप्त किया जा सकता है । मोक्षमार्ग त्रितयात्मक होनेसे उन तीनोंके भी निश्चय व व्यवहार सम्बन्धी दो-दो भेद हो जाते हैं । इस तरह इस प्रकरणमें ६ तत्त्व ज्ञातव्य हैं—(१) व्यवहारसम्यग्दर्शन, (२) निश्चयसम्यग्दर्शन, (३) व्यवहारसम्यग्ज्ञान, (४) निश्चयसम्यग्ज्ञान, (५) व्यवहारसम्यक्चारित्र, (६) निश्चयसम्यक्चारित्र ।

प्रश्न ३— व्यवहारसम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर— जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल—इन छह द्रव्योंका व जीव, अजीव पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष— इन नव तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान करना व्यवहारसम्यग्दर्शन है ।

प्रश्न ४—निश्चयसम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर— समस्त परद्रव्योंसे भिन्न, रागादि उपाधिसे परे, निरञ्जन, चिच्चमत्कारमात्र निज शुद्धात्मतत्त्वस्वरूप अपनी प्रतीति होनेको निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं ।

प्रश्न ५— व्यवहारसम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पदार्थ जिस रूपसे अवस्थित है उसे उस प्रकारसे जाननेको व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ६-- निश्चयसम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर-- शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्दसे तृप्त होते हुये अपने द्वारा अपना निर्विकल्परूपसे संवेदन करनेको निश्चयसम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ७– व्यवहारसम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिससे अशुभ भावसे निर्वृत्ति व शुभभावमें प्रवृत्ति हो ऐसे तप, व्रत, समिति गुप्ति, आदिके पालन करनेको व्यवहारसम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्रश्न ८– निश्चयसम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर-- रागादि विकल्पोंके परिहारपूर्वक रागद्वेषादि विभावशून्य शुद्ध चैतन्यतत्त्वके उपयोगकी स्थिरताको निश्चयसम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्रश्न ९– क्या व्यवहाररत्नत्रयके पाये बिना निश्चयरत्नत्रय नहीं हो सकता ?

उत्तर-- निश्चयरत्नत्रयके पूर्व व्यवहाररत्नत्रय होता ही है। व्यवहाररत्नत्रय पाये बिना निश्चयरत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं होती। इसी कारण व्यवहाररत्नत्रय साधक है और निश्चयरत्नत्रय साध्य है।

प्रश्न १०-- क्या व्यवहाररत्नत्रय द्वारा निश्चयरत्नत्रयकी प्राप्ति अवश्य होती है ?

उत्तर-- यदि व्यवहाररत्नत्रयको पालता हुआ उस व्यवहारमें ही अपनी एकता जोड़े तो निश्चयरत्नत्रय नहीं हो सकता। यदि व्यवहाररत्नत्रयके पालन द्वारा विषयकषायसे निवृत्ति पाकर निज ज्ञायकस्वभावसे अपनी एकता जोड़े तो निश्चयरत्नत्रय अवश्य होता है।

प्रश्न ११—निश्चयरत्नत्रय व व्यवहाररत्नत्रय दोनों क्या एक साथ रह सकते हैं ?

उत्तर– निश्चय व व्यवहाररूप दोनों रत्नत्रय एक साथ रह सकते हैं।

प्रश्न १२– तब तो व्यवहाररत्नत्रय निश्चयरत्नत्रयके साथ रहे, उसे ही व्यवहार-रत्नत्रय कहना चाहिये ?

उत्तर– जो व्यवहाररत्नत्रय निश्चयरत्नत्रयके साथ रह सकता है वह तो फलित व्यवहाररत्नत्रय है और जो निश्चयरत्नत्रयके पहिले व्यवहाररत्नत्रय रहता है वह निमित्त व्यवहाररत्नत्रय है।

प्रश्न १३—क्या व्यवहाररत्नत्रयके बिना भी निश्चयरत्नत्रय रह सकता है ?

उत्तर—निर्विकल्प चारित्र वाले उच्च गुणस्थानोंमें उक्त व्यवहाररत्नत्रयके बिना निश्चयरत्नत्रय रह सकता है। यही अभेदरत्नत्रय सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र गुणकी परिणति होनेसे व्यवहार कहलाता है।

प्रश्न १४—निश्चयरत्नत्रयको निश्चयरूप तीनोंको न कहकर एक आत्माको ही क्यों कहा ?

उत्तर—निश्चयनय अभेदको ग्रहण करता है, अतः निश्चयरत्नत्रय एक अभेद शुद्ध पर्यायपरिणत आत्मा ही है।

अब इस ही १४वें प्रश्न उत्तरसे सम्बन्धित विषयको स्पष्ट समझनेके लिये ४०वीं गाथा कहते हैं।

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

अन्वय—अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि रयणत्तयं ण वट्टइ। तम्हा हु तत्तियमइओ आदा मोक्खस्स कारणं होदि।

अर्थ—आत्माको छोड़कर अन्य द्रव्यमें रत्नत्रय नहीं रहता है। इस कारणसे रत्नत्रयात्मक आत्मा ही निश्चयसे मोक्षका कारण है।

प्रश्न १— रत्नत्रय अन्य द्रव्यमें क्यों नहीं रह सकता ?

उत्तर—रत्नत्रय याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, ये तीनों पर्यायें हैं। ये जिस गुणकी पर्यायें हैं वे गुण जिसमें रहते हैं उसीमें रत्नत्रय है।

प्रश्न २—सम्यग्दर्शन आत्माके सम्यक्त्व गुणकी पर्याय है। सम्यक्त्व एक निर्मल पर्यायका भी नाम है व सम्यक्त्व गुणका भी नाम है। प्राचीन परम्परामें इसी प्रकार वर्णन है। सम्यक्त्व गुणका पर्यायवाची श्रद्धागुण भी है।

प्रश्न ३—सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके क्या कारण हैं ?

उत्तर— सम्यग्दर्शनका उपादान कारण सम्यग्दर्शनके पूर्वकी पर्यायसे परिणत व इस प्रकारकी विशिष्ट योग्यता वाला आत्मा है। अन्तरंग निमित्त कारण दर्शनमोह व अनन्तानुबन्धी कषायका उपशम, क्षयोपशम या क्षय है। बाह्य निमित्त कारण जिन-सूत्रका उपदेश है। उपचरित बाह्य कारण जिन-सूत्रके जानने वाले वे पुरुष हैं जिनसे यथार्थ उपदेश प्राप्त होता है तथा जिनबिम्बके दर्शन, तपस्वी, ध्यानी साधुवोंके दर्शन आदि हैं।

प्रश्न ४-- सम्यग्ज्ञान किस गुणकी पर्याय है ?

उत्तर— सम्यग्ज्ञान आत्माके ज्ञान गुणकी पर्याय है। ज्ञान पर्याय अपने स्वरूपसे न सम्यक् है और न मिथ्या है, किन्तु दर्शनमोहके उदयके निमित्तसे होने वाले विपरीत अभिप्राय के सम्बन्धसे ज्ञान भी मिथ्या कहलाता है तथा दर्शनमोहके उपशम, क्षयोपशम या क्षयके निमित्तसे होने वाली सम्यक् प्रतीतिके सम्बन्धसे ज्ञान भी सम्यक् कहलाता है।

प्रश्न ५— सम्यक्चारित्र किस गुणकी पर्याय है ?

उत्तर— सम्यक्चारित्र आत्माके चारित्रगुणकी पर्याय है।

प्रश्न ६—सम्यक्त्व, ज्ञान व चारित्र गुण आत्मामें ही क्यों होते हैं ?

उत्तर—ऐसा आत्माका स्वभाव ही है । इन गुणोंका एक पुञ्ज ही आत्मा है । आत्मा तो एक स्वभाववान् है, किन्तु व्यवहारनयसे उस स्वभावको समझने वाली ये शक्तियाँ हैं ।

प्रश्न ७— एक आत्मा त्रितयात्मक कैसे है ?

उत्तर—मैं इस शुद्ध आत्माका अपने आपमें निराकुल सहज आनन्द स्वरूप हूं—ऐसी प्रतीतिके स्वभावसे बर्तना सम्यग्दर्शन है, निराकुल आनन्दके संवेदनसे बर्तना सम्यग्ज्ञान है और ऐसी ही स्थितिका स्थितिकरण होना सम्यक्चारित्र है । ये तीनों अभेदनयसे एक शुद्ध आत्मद्रव्य ही हुआ ।

प्रश्न ८—निराकुल सहज आनन्दके संवेदनका उपाय क्या है ?

उत्तर— अविकार चिच्चमत्कारमात्र निज स्वभावकी भावना सहज आनन्दकी उत्पत्ति का उपाय है ।

प्रश्न ९— निजस्वभावकी दृष्टि बनी रहे एतदर्थ अपनी वृत्ति कैसी बनानी चाहिये ?

उत्तर—निज स्वभावकी दृष्टिकी उपयुक्तताके लिये माया, मिथ्या, निदान—इन तीन शल्योंसे रहित अपनी वृत्ति होनी चाहिये ।

प्रश्न १०— मायाशल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर— मेरे अपध्यानको कोई नहीं जानता है या न जाने, इस अभिप्रायसे बाह्य धर्म का आचरण करके लोकोंका आकर्षण प्राप्त करते हुये चित्तकी मलीनता रखनेको मायाशल्य कहते हैं ।

प्रश्न ११—अपध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर— रागवश परनारी आदिकी अयोग्य इच्छायें करने व द्वेषवश परका बध, बंधन आदि अनिष्ट चिन्तवन करनेको अपध्यान कहते हैं ।

प्रश्न १२— मिथ्याशल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—अविकार निज परमात्मतत्त्वकी रुचि न होनेके कारण बाह्य पदार्थोंका आश्रय करके विपरीत बुद्धि बनानेको मिथ्याशल्य कहते हैं ।

प्रश्न १३— निदानशल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर— पाँच इन्द्रिय और मनके विषयोंमें, भोगोंमें निरन्तर चित्त देनेको निदानशल्य कहते हैं ।

प्रश्न १४— मुक्तिका कारणभूत यह रत्नत्रयभाव ५ भावोंमें से कौनसा है ?

उत्तर— यह रत्नत्रयभाव औदयिक तो है ही नहीं । और पारिणामिक भाव अकारण व अकार्य होता है, अतः यह रत्नत्रयभाव पारिणामिक भी नहीं है, किन्तु यथास्थान यह भाव औपशमिक है, क्षायोपशमिक है और एक देश क्षायिक है । समस्त कर्मोंका क्षय हो जाना तो

मोक्षमार्गफल है, अतः उससे पहिलेका एक देश क्षायिक भाव है।

प्रश्न १५-- तब तो औपशमिक, क्षायोपशमिक व क्षायिकभाव ध्येय मानना चाहिये ?

उत्तर– ध्येय तो परमपारिणामिक भाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप निजकारणपरमात्मत्व है। इस ही के दर्शन, आश्रय, उपयोग द्वारा निर्मल पर्यायका विकास होता है।

इस प्रकार निश्चयमोक्षमार्गका वर्णन करके अब सम्यग्दर्शन विशेषका वर्णन करते हैं—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ।।४१।।

अन्वय– जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं, तं तु अप्पणोरूवं। जह्मि सदि णाणं खु दुरभिणिवेसविमुक्कं सम्मं होदि।

अर्थ-- जीवादि नव तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान करना सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) है। और वह आत्माका स्वाभाविक रूप है। जिसके होने पर ज्ञान निश्चयसे विपरीत अभिप्राय रहित होता हुआ सम्यक् हो जाता है।

प्रश्न १-- सम्यग्दर्शन कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर-- सम्यग्दर्शन स्वरूपसे तो एक प्रकारका ही है और वह अवक्तव्य है, किन्तु सम्बन्ध, निमित्त आदि भेदसे अनेक प्रकारका होता है। जैसे अन्तरङ्ग बाह्य निमित्तकी दृष्टि से ३ प्रकारका है-- (१) औपशमिक सम्यक्त्व, (२) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, (३) क्षायिक सम्यक्त्व। सम्बन्धादि दृष्टिसे १० प्रकारका है-- (१) आज्ञासम्यक्त्व, (२) मार्गसम्यक्त्व, (३) उपदेशसम्यक्त्व, (४) अर्थसम्यक्त्व, (५) बीजसम्यक्त्व, (६) संक्षेपसम्यक्त्व, (७) सूत्रसम्यक्त्व (८) विस्तारसम्यक्त्व, (९) अवगाढ़सम्यक्त्व, (१०) परमावगाढ़सम्यक्त्व।

प्रश्न २-- औपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, व मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति– इन ७ प्रकृतियोंके उपशम होनेपर जो सम्यक्त्व प्रकट होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

विशेष यह है कि जिनके सम्यक्प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना हो चुकी है उन जीवोंके व अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिके बिना शेष ५ प्रकृतियोंके उपशम होने पर औपशमिक सम्यक्त्व होता है, क्योंकि उन जीवोंके इन २ प्रकृतियोंकी सत्ता ही नहीं है।

प्रश्न ३– क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व, इन ६ प्रकृतियोंका

उदयाभावी क्षय व सदवस्था रूप उपशम एवं सम्यक्प्रकृतिका उदय होनेपर जो सम्यक्त्व प्रकट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसका दूसरा नाम वेदकसम्यक्त्व है। द्वितीयोपशम या क्षायिक सम्यक्त्व होनेके प्रति निकट पूर्व क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें, इन प्रकृतियोंकी कुछ और विशिष्ट अवस्था होती है।

प्रश्न ४– क्षायिकसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति, इन सात प्रकृतियोंके क्षय होनेपर जो सम्यक्त्व प्रकट होता है उसे क्षायिकसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ५-- आज्ञासम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– केवल वीतराग देवकी आज्ञाके अनुसार तत्त्वोंमें रुचि होनेको आज्ञासम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ६-- मार्गसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—बाह्याभ्यन्तर परिग्रहसे रहित निर्दोष निर्ग्रन्थ मार्ग देखकर तत्त्वमें रुचि होनेको मार्गसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ७—उपदेशसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– तीर्थंकरादि महापुरुषोंके चरित्र सुनकर अथवा उपदेश सुनकर तत्त्वमें रुचि होनेको उपदेशसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ८—अर्थसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– किसी पदार्थको देखकर या किसी उपदेशके अर्थ या दृष्टान्तादिका अनुभव करके तत्त्वमें रुचि होनेको अर्थसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ९– बीजसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर-- शास्त्रमें प्ररूपित गणित नियमोंको या बीजपदोंके तात्पर्यको जानकर तत्त्वमें रुचि होनेको बीजसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न १०-- संक्षेपसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– पदार्थोंको संक्षेपसे ही जानकर तत्त्वमें रुचि होनेको संक्षेपसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ११—सूत्रसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—साधुवोंकी चारित्रविधि बताने वाले आचारसूत्रको सुनकर तत्त्वमें रुचि होनेको सूत्रसम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न १२—विस्तारसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– समस्त श्रुतको सुनकर तत्त्वमें रुचि होनेको विस्तारसम्यक्त्व कहते हैं ?

प्रश्न १३– अवगाढ़सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर–समस्त द्वादशाङ्गका ज्ञान होनेपर होने वाली तत्त्व-प्रतीतिको अवगाढ़सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न १४– परमावगाढ़ सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर– केवलज्ञान प्रकट हो जानेपर बर्तते हुये सम्यक्त्वको परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न १५— उक्त सम्यक्त्वोंमें क्या सभी सम्यक्त्व निर्दोष हैं ?

उत्तर—औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व व परमावगाढ़सम्यक्त्व—ये तीन तो निर्दोष ही हैं, क्षायोपशमिकसम्यक्त्व (वेदकसम्यक्त्व) चल, मलिन अगाढ़ नामक सूक्ष्म दोष सहित हैं। शेषके सम्यक्त्व यदि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व रूपमें हों तो इन सूक्ष्म दोषोंकर सहित हैं और यदि वे औपशमिक या क्षायिक हैं तो निर्दोष हैं।

प्रश्न १६– सम्यग्दृष्टिकी परिस्थिति कैसी होती है ?

उत्तर– इसका विवरण सम्यक्त्वके अङ्ग और सम्यक्त्वके दोष जाननेसे हो जाता है। अङ्गोंके ज्ञानसे तो यह विदित होता है कि सम्यक्त्वमें ऐसे गुण होते हैं और दोषोंके ज्ञानसे यह विदित होता कि सम्यक्त्व इन दोषोंसे रहित होता है।

प्रश्न १७– सम्यक्त्वके अङ्ग कौन-कौन हैं ?

उत्तर—सम्यक्त्वके अंग ८ हैं—निःशंकित, (२) निःकांक्षित, (३) निर्विचिकित्सित, (४) अमूढ़दृष्टि, (५) उपगूहन, (६) स्थितिकरण, (७) वात्सल्य (८) प्रभावना।

प्रश्न १८—निःशङ्कित अङ्ग क्या है ?

उत्तर—समस्त अंगोंका विवरण व्यवहार और निश्चय दोनों दृष्टियोंसे होता है। अतः निःशङ्कित अङ्गको भी व्यवहारनिःशङ्कित अङ्ग और निश्चयनिःशङ्कित अङ्ग इस प्रकार दोनों प्रकारसे जानना चाहिये।

प्रश्न १९-- व्यवहारनिःशङ्कित अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- वीतराग सर्वज्ञदेवसे प्रणीत हुए तत्त्वमें सन्देह (शंका) नहीं करनेको व्यवहार-निःशङ्कित अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न २०-- यदि वीतरागसर्वज्ञ प्रणीत तत्त्वोंमें कोई असत्य निरूपण हो तो उसे क्यों मान लेना चाहिये ?

उत्तर– वीतराग सर्वज्ञदेवके वचन असत्य कभी नहीं हो सकते, क्योंकि असत्यवचनके दो कारण हुआ करते हैं–(१) रागादिक दोष और (२) अज्ञान, परन्तु वीतराग सर्वज्ञदेवमें न तो रागादि दोष हैं व अज्ञानका अंश भी उनमें नहीं है, अतः वे सर्वज्ञ हैं। यही कारण है कि उनके प्रणीत तत्त्वोंमें असत्यता कभी नहीं हो सकती।

प्रश्न २१– निश्चयनिःशंकित अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- इहलोकभय, परलोकभय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिकभय, इन सात भयोंसे मुक्त होकर घोर उपसर्ग व परीषहका प्रसङ्ग आनेपर भी निज निरञ्जन निर्दोष परमात्मतत्त्वकी प्रतीतिसे चलित न होनेको निश्चयनिःशंकित अङ्ग कहते हैं ।

प्रश्न २२– इहलोकभय किसे कहते हैं ?

उत्तर—इस लोकमें मेरा कैसे जीवन गुजरेगा– धनकी आयका उपाय कम होता जा रहा है, कानून अनेक ऐसे बनते जा रहे हैं जिससे संपत्तिका रहना कठिन है आदि भय होनेको इहलोकभय कहते हैं । यह भय सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, क्योंकि वह चैतन्यतत्त्वको ही लोक समझता है, उसमें परभावका प्रवेश नहीं ।

प्रश्न २३– परलोकभय किसे कहते हैं ?

उत्तर– अगले भवमें कौनसी गति मिलेगी, कहीं खोटी गति न मिल जाय, परलोकमें कष्टोंका सामना न करना पड़े आदि भयको परलोकभय कहते हैं । यह भय सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, क्योंकि वह चैतन्यभावको ही लोक समझता है, उसमें कोई विघ्न नहीं होता ।

प्रश्न २४-- अत्राणभय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मेरा रक्षक, सहाय, मित्र कोई नहीं है, मेरी कैसे रक्षा होगी—इस प्रकारके भयको अत्राणभय कहते हैं । यह भय सम्यग्दृष्टिके नहीं है, क्योंकि वह निजस्वरूपको ही अपना शरण समझता है और वह सदा पास है ।

प्रश्न २५—अगुप्तिभय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मेरे रहनेका स्थान सुरक्षित नहीं है; मकान, किला आदि भी नहीं है, मेरा क्या हाल होगा इत्यादि भयको अगुप्तिभय कहते हैं । यह सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, क्योंकि उसे द्रव्योंकी स्वतन्त्रताकी यथार्थ प्रतीति है । किसी द्रव्यमें किसी अन्य द्रव्यका, अन्य द्रव्य गुण या पर्यायका प्रवेश ही नहीं हो सकता, अतः सर्व द्रव्य स्वयं गुप्त हैं ।

प्रश्न २६-- मरणभय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- मरणका भय माननेको मरणभय कहते हैं । यह भय सम्यग्दृष्टि आत्माके नहीं होता है, क्योंकि उसकी यथार्थ प्रतीति है कि "मेरे प्राण तो ज्ञान और दर्शन हैं, उनका कभी वियोग ही नहीं होता, अतः मेरा मरण होता ही नहीं है ।"

प्रश्न २७-- वेदनाभय किसे कहते हैं ?

उत्तर—मुझे कभी रोग न हो जावे या यह रोग बढ़ न जावे, ऐसा भाव करना अथवा व्याधिकी पीड़ा भोगते हुए भयभीत होना सो वेदनाभय है । यह भय भी सम्यग्दृष्टि

जीवके नहीं होता है, क्योंकि उसके यह प्रतीति है कि मैं सर्वज्ञ ज्ञानका ही वेदन करता हूं, रोग आदिका नहीं।

प्रश्न २८—आकस्मिकभय किसे कहते हैं ?

उत्तर– संभव, असंभव अनेक आकस्मिक आपत्तियोंकी कल्पना करके भयभीत होनेको आकस्मिक भय कहते हैं। यह भय भी सम्यग्दृष्टि जीवोंके नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि को यह प्रतीति है कि मेरी हो पर्याय मेरेमें आ सकती है, अन्य कुछ मेरेमें आ ही नहीं सकता तथा जो कुछ होना है वह होता ही है आकस्मिक कुछ नहीं होता।

प्रश्न २९– व्यवहारनिःकांक्षित अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—भोग वैभवकी आशा व निदानके त्याग सहित निजशुद्धिके ही अर्थ पूजादि धर्मानुष्ठान करनेको व्यवहारनिःकांक्षित अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३०—निश्चयनिःकांक्षित अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर– समस्त भोगविकल्पोंका त्याग करके निज शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्दमें तृप्ति करनेको निश्चयनिःकांक्षित अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३१– व्यवहारनिर्विचिकित्सित अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर– धर्मभूषित भव्य आत्मावोंके मलिन व व्यथित शरीरको देखकर ग्लानि न करने और यथाशक्ति सेवाचिकित्सा करनेको व्यवहारनिर्विचिकित्सित अङ्ग कहते हैं अथवा स्वयंपर आई हुई क्षुधा आदि वेदनाओंमें विषाद न करनेको निर्विचिकित्सित अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३२—निश्चयनिर्विचिकित्सित अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर–रागद्वेषादि विकल्पोंका परित्याग कर निज समयसारके उन्मुख रहनेको निश्चय-निर्विचिकित्सित अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३३– व्यवहारअमूढ़दृष्टि अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर– मोक्षमार्गसे बहिर्भूत कुगुरुवोंके द्वारा प्रणीत क्षुद्रविद्या, व्यन्तरकृत आदि विस्मयकारक चमत्कारोंको देखकर या सुनकर भी मूढ़भावसे या धर्मभावसे उनमें रुचि, भक्ति न करनेको व्यवहारअमूढ़दृष्टि अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३४– निश्चयअमूढ़दृष्टि अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—शरीर, कर्ममिथ्यात्व, राग, द्वेष, संकल्प, विकल्पोंमें इष्टबुद्धि, उपादेयबुद्धि, अहंबुद्धि व ममत्वको छोड़कर निज शुद्ध स्वरूपकी दृष्टि करनेको निश्चयअमूढ़दृष्टि अंग कहते हैं।

प्रश्न ३५—व्यवहारउपगूहन अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर—अज्ञानी या असमर्थ जीवोंके निमित्तसे यदि धर्मका अपवाद होता हो तो

धर्मोपदेशसे, दोषके आच्छादनसे, दण्ड आदि यथोचित उपायसे अपवाद दूर करनेको व्यवहार-उपगूहन अंग कहते हैं।

प्रश्न ३६– निश्चयउपगूहन अङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर– अविकार चैतन्यस्वभावमय निजधर्मके आच्छादन करने वाले, विकारक मिथ्यात्व, रागादि दोषोंको निज शुद्ध अन्तस्तत्त्वके ध्यान द्वारा दूर करनेको निश्चयउपगूहन अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३७—व्यवहारस्थितिकरण अङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—कर्मोदयवश किसी धर्मात्मा जनका धर्मसे चलित हो रहा देखकर उसे धर्मोपदेशसे, आर्थिक सहयोगसे, अन्य सामर्थ्य आदि उपायसे धर्ममें स्थिर कर देनेको व्यवहार-स्थितिकरण अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३८– निश्चयस्थितिकरण अङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर– मोह, राग, द्वेष आदि अधर्मोंको त्यागकर परमसमताके संवेदन द्वारा शुद्धोपयोगरूप धर्ममें स्वके स्थिर करनेको निश्चयस्थितिकरण अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ३९—व्यवहारवात्सल्य अङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—धर्मात्मा जनोंमें निश्छल स्नेह करनेको व्यवहारवात्सल्य अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ४०—निश्चयवात्सल्य अङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—विषय कषायोंसे सर्वथा प्रीति छोड़कर ध्रुव चैतन्यस्वभावमय निजपरमात्मतत्त्वके संवेदनसे उत्पन्न हुए सहज आनन्दमें रुचि करनेको निश्चयवात्सल्य अङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ४१ —व्यवहारप्रभावनाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—दान, पूजा, धर्मोपदेश, तपस्या आदिसे धर्ममार्गकी प्रभावना करनेको व्यवहारप्रभावनांग कहते हैं।

प्रश्न ४२– निश्चयप्रभावनाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर– निजशुद्धस्वरूपके संवेदनके बलसे रागादि परभावोंका प्रभाव नष्ट करके निज चैतन्य तत्त्वका शुद्ध विकास करनेको निश्चयप्रभावनाङ्ग कहते हैं।

प्रश्न ४३– सम्यक्त्वके दोष कितने हैं?

उत्तर– सम्यक्त्वके दोष नहीं होता, किन्तु जिन भावोंके होनेपर सम्यक्त्वमें बाधा आती है, वे सम्यक्त्वके दोष कहे जाते हैं। ये दोष २५ हैं– मल (अङ्गविरोधी) ८, मद ८, अनायतन ६ और मूढ़ता ३।

प्रश्न ४४-- अङ्गविरोधी ८ मल-दोष कौन-कौन हैं?

उत्तर-- मल दोष ८ ये हैं—(१) शंका, (२) कांक्षा, (३) विचिकित्सा, (४) मूढ़दृष्टि, (५) अनुपगूहन, (६) अस्थितिकरण, (८) अवात्सल्य, (८) अप्रभावना।

प्रश्न ४५—शङ्कादोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– भगवत्प्रणीत तत्त्वोंमें संदेह करने व इह लोकादि भय करनेको शङ्कादोष कहते हैं।

प्रश्न ४६—कांक्षादोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—निज स्वभावदृष्टिमें अनुत्साह करके विषयोंमें, धन-वैभव सन्मान प्रतिष्ठामें रुचि करनेको कांक्षादोष कहते हैं।

प्रश्न ४७– विचिकित्सा दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्मात्मावोंके मलिन शरीरको देखकर ग्लानि करने व अपने क्षुधा आदि वेदनावोंके होनेपर खिन्न रहनेको विचिकित्सा दोष कहते हैं।

प्रश्न ४८—मूढ़दृष्टि दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– कुमार्ग व कुमार्गस्थ जीवोंकी भक्ति, रुचि प्रशंसा करनेको मूढ़दृष्टि दोष कहते हैं।

प्रश्न ४९– अनुपगूहन दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—अज्ञानी अशक्त जीवों द्वारा होने वाले धर्मके अपवादको दूर करना व अपने गुण प्रकट करना और अपने दोषोंको ढांकना, दूसरेके दोषोंको प्रकट करना व गुणोंका उपघात करना ये सब अनुपगूहन दोष हैं।

प्रश्न ५०– अस्थितिकरण दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्मसे डिगते हुये स्वयंको व जीवोंको सामर्थ्य होते हुये भी धर्ममें स्थिर न करने और च्युत होनेमें सुखका अनुभव करनेको अस्थितिकरण दोष कहते हैं।

प्रश्न ५१– अवात्सल्य दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– धर्मात्मावोंके प्रति वात्सल्य न रखने या मात्सर्य करनेको अवात्सल्य दोष कहते हैं।

प्रश्न ५२– अप्रभावना दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर– सामर्थ्य होते हुये भी धर्मकी प्रभावना न करने या अपने असत्यादि व्यवहार से धर्मकी अप्रभावना करने को अप्रभावना दोष कहते हैं।

प्रश्न ५३– मद आठ कौन-कौन हैं ?

उत्तर—मद आठ ये हैं– (१) ज्ञानमद, (२) प्रतिष्ठामद, (३) कुलमद, (४) जातिमद, (५) बलमद, (६) वैभवमद, (७) तपोमद, (८) रूपमद।

प्रश्न ५४—ज्ञानमद किसे कहते हैं ?

उत्तर– पाये हुये ज्ञानपर अभिमान करने, अन्य ज्ञानी पुरुषोंको तुच्छ समझनेको ज्ञानमद कहते हैं ।

प्रश्न ५५—प्रतिष्ठामद किसे कहते हैं ?

उत्तर– पूजा, स्तुति, लोकाकर्षण आदिसे प्राप्त प्रतिष्ठापर अहङ्कार करनेको प्रतिष्ठामद कहते हैं ।

प्रश्न ५६—कुलमद किसे कहते हैं ?

उत्तर– पाये हुये श्रेष्ठ कुलका मद करनेको कुलमद कहते हैं । कुल पिताके गोत्रको कहते हैं ।

प्रश्न ५७– जातिमद किसे कहते हैं ?

उत्तर—पाई हुई श्रेष्ठ जातिका मद करनेको जातिमद कहते हैं । जाति माताके पिता के कुलको कहते हैं ।

प्रश्न ५८—बलमद किसे कहते हैं ?

उत्तर– पाई हुई शक्तिका अहङ्कार करनेको बलमद कहते हैं ।

प्रश्न ५९-- वैभवमद किसे कहते हैं ?

उत्तर-- पाई हुई ऋद्धि या संपत्तिका घमंड करनेको वैभवमद कहते हैं ।

प्रश्न ६०-- तपोमद किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अपनी तपस्याका घमंड करनेको तपोमद कहते हैं ।

प्रश्न ६१-- रूपमद किसे कहते हैं ?

उत्तर-- पाये हुये शरीरके सुन्दर रूपपर घमंड करनेको रूपमद कहते हैं ।

प्रश्न ६२-- अनायतन ६ कौन-कौन हैं ?

उत्तर-- अनायतन अर्थात् अधर्मके स्थान ६ ये हैं--- (१) कुगुरु, (२) कुगुरुसेवक, (३) कुधर्म, (४) कुधर्मसेवक, (५) कुदेव, (६) कुदेवसेवक ।

प्रश्न ६३– कुगुरु अनायतन किसे कहते हैं ?

उत्तर– मोक्षमार्गके विरुद्ध आचरण करने वाले कुगुरुओंकी सेवा, भक्ति प्रमाण, रुचि आदि आदि करनेको कुगुरु अनायतन कहते हैं ।

प्रश्न ६४-- कुगुरुसेवक अनायतन किसे कहते हैं ?

उत्तर-- कुगुरुके सेवक जनोंकी संगति करने, धर्मविषयक सम्मति लेने, प्रीति करने, अनुमोदन आदि करनेको कुगुरुसेवक अनायतन कहते हैं ।

प्रश्न ६५– कुधर्म अनायतन किसे कहते हैं ?

उत्तर— अहिंसासे विपरीत आचरणोंको धर्म मानकर उस कुधर्मकी सेवा, उपासना, अनुष्ठान करनेको कुधर्म अनायतन कहते हैं।

प्रश्न ६६— कुधर्मसेवक अनायतन किसे कहते हैं ?

उत्तर— कुधर्मका आचरण करने वालोंकी संगति, सम्मति, प्रीति, अनुमति आदि करनेको कुधर्मसेवक अनायतन कहते हैं।

प्रश्न ६७—कुदेव अनायतन किसे कहते हैं ?

उत्तर— काम, क्रोध, माया आदिका आचरण करने वाले और देव नामसे प्रसिद्ध जीवोंकी सेवा, भक्ति, उपासना स्तुति आदि करनेको कुदेव अनायतन कहते हैं।

प्रश्न ६८—कुदेवसेवक अनायतन किसे कहते हैं ?

उत्तर—कुदेवोंकी सेवा, भक्ति करने वाले जनोंकी संगति, सम्मति, प्रीति, अनुमति आदि करनेको कुदेवसेवक अनायतन कहते हैं।

प्रश्न ६९— निश्चयसे अनायतन क्या है ?

उत्तर— निश्चयसे मिथ्यात्व, राग, द्वेषादि विभाव अनायतन हैं। इन विभावोंकी रुचि, प्रवृत्तिका त्याग ही अनायतन सेवाका त्याग है।

प्रश्न ७०— मूढ़ता तीन कौन-कौन हैं ?

उत्तर—(१) देवमूढ़ता, (२) लोकमूढ़ता, (३) पाखण्डिमूढ़ता ये तीन मूढ़ता हैं।

प्रश्न ७१— देवमूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर— निर्दोष, सर्वज्ञ, सहजानन्दमय परमात्माके स्वरूपको न जानकर लौकिक प्रयोजनके अर्थ रागी द्वेषी क्षेत्रपाल, भैरव, भवानी, शीतला आदि कुदेवालयोंकी आराधना करना देवमूढ़ता कहते हैं ?

प्रश्न ७२—लोकमूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर—नदीस्नान, तीर्थस्नान, बटपूजा, अग्निपात, गिरिपात आदिको पुण्यका कारण मानना और करना सो लोकमूढ़ता है।

प्रश्न ७३— पाखण्डिमूढ़ता किसे कहते हैं ?

उत्तर— वीतरागमार्गका शरण छोड़कर रागी द्वेषी पाखण्डियोंकी, उनके उपदेशकी भयादिसे या लौकिक प्रयोजनवश या धर्म मान कर भक्ति पूजा वन्दन आदि करनेको पाखण्डिमूढ़ता कहते हैं।

प्रश्न ७४— मूढ़तारहित सम्यग्दृष्टिकी क्या स्थिति होती है ?

उत्तर— उक्त समस्त मूढ़ताओंका परिहार कर निज शुद्ध अन्तस्तत्व रूप देव धर्म गुरुमें अवस्थिति सम्यग्दृष्टि जीवकी होती है।

प्रश्न ७५-- सम्यग्दर्शनसे क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर– सम्यग्दर्शनका साक्षात् लाभ अविकार निजचैतन्यस्वरूपके संवेदनसे उत्पन्न सहज आनन्दके अनुभवका अनुपम लाभ है और नैमित्तिक लाभ कर्मोंके भारका हट जाना है तथा औपचारिक लाभ देवेन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थङ्कर आदि पदों और वैभवोंकी प्राप्ति है।

प्रश्न ७६—उत्तम पदों और वैभवोंका कारण सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ?

उत्तर—यद्यपि तीर्थङ्करादि उत्तम पदों और वैभवोंका कारण पुण्यकर्मका उदय है तथापि ऐसे विशिष्ट पुण्यकर्मोंका बन्ध ऐसे निर्मल आत्मावोंके ही होता है जो सम्यग्दृष्टि हैं और जिनके विशिष्टशुभोपयोग होता है। सम्यक्त्वके होनेपर ही शुभ रागके ऐसे वैभवरूप फलनेसे सम्यक्त्वकी महिमा प्रकट हुई। अतः सम्यग्दर्शनका औपचारिक लाभ उत्तम पद और वैभव बताते हैं।

प्रश्न ७७– सम्यग्दृष्टि जीव मरकर किन-किन गतियोंमें जाता है ?

उत्तर-- सम्यक्त्वके होनेपर यदि आयुर्बन्ध हो तो सम्यग्दृष्टि नारकी मनुष्यगतिमें जन्म लेता है, सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यगतिमें जन्म लेता है, तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टि देवगतिमें जन्म लेता है, सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगतिमें जन्म लेता है। केवल इस अवस्थामें कि मनुष्यने पहिले नरकायुका बन्ध कर लिया हो, पश्चात् औपशमिक सम्यक्त्व व पुनः क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न करके अथवा केवल क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न करके क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करले तो वह मनुष्य सम्यग्दृष्टि मर कर पहिले नरकमें उत्पन्न होगा, नीचेके नरकोंमें नहीं।

प्रश्न ७८-- सम्यग्दर्शन की प्राप्तिका साक्षात् उपाय क्या है ?

उत्तर—भूतार्थनयसे तत्त्वोंका जानना सम्यग्दर्शनका साक्षात् उपाय है।

प्रश्न ७९—भूतार्थनय क्या है ?

उत्तर—किसी एक द्रव्यको अभिन्नषट्कारकपद्धतिसे जानकर अभेदद्रव्यकी ओर ले जाने वाले अभिप्रायको भूतार्थनय कहते हैं।

प्रश्न ८०—सम्यग्दर्शन किसके निकट होता है ?

उत्तर– औपशमिक सम्यग्दर्शन व क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यग्दर्शन कहीं भी हो जावे, इसका कोई नियम नहीं, किन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन केवली या श्रुतकेवलीके निकटमें (पादमूलमें) होता है।

प्रश्न ८१—क्या क्षायिक सम्यग्दर्शन केवलिद्विकके पादमूल बिना नहीं हो सकता ?

उत्तर– निम्नलिखित स्थितियोंमें केवलिद्विकके पादमूल बिना भी क्षायिक सम्यग्दर्शन हो सकता है—

(१) किसी मनुष्यने पहिले नरकायु बांध ली पश्चात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हुआ। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके होते हुये तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध कर लिया। यह जीव मनुष्यभव के अन्त तक तो क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहेगा, किन्तु मरण समयसे लेकर पर्याप्त नारकी होने तक अन्तर्मुहूर्तको मिथ्यादृष्टि होगा। पश्चात् क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होगा। नरकमें अन्त तक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहेगा। मनुष्यभवमें तीर्थङ्कर होनेके लिये जन्म लेने पर भी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहेगा। मुनि अवस्था होने तक क्षायोपशमिक दृष्टि रहेगा। मुनि अवस्था होने पर यह जीव केवलिद्विकके पादमूल बिना क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है।

(२) स्वयं श्रुतकेवली भी कोई बिना केवलिद्विकके पादमूलके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनका वर्णन करके अब सम्यग्ज्ञानका वर्णन करते हैं—

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं च ॥४२॥

अन्वय—अप्पपरसरूवस्स संसयविमोहविब्भमविवज्जियं गहणं सम्मण्णाणं, तु सायारमणेयभेयं।

अर्थ—अपने आत्माके व परपदार्थोंके स्वरूपका संशय, अनध्यवसाय और विपर्ययरूप मिथ्याज्ञानसे रहित ग्रहण करने अर्थात् जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान साकार और अनेक भेद वाला है।

प्रश्न १— आत्माका स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—आत्मा निश्चयसे ध्रुव चैतन्यस्वरूप है, व्यवहारसे जानना देखना आदि परिणमनरूप है। परमार्थसे आत्मा अवक्तव्य है, किन्तु ज्ञेय अवश्य है।

प्रश्न २— परपदार्थोंमें किन-किनका ग्रहण है ?

उत्तर—एक ज्ञाताके स्वयं आत्माको छोड़कर शेष समस्त अनन्तानन्त आत्मा, समस्त अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य, असंख्यात कालद्रव्य ये सब परपदार्थ हैं।

प्रश्न ३—इन सबका प्रयोजनभूत स्वरूप क्या जानना चाहिये ?

उत्तर—समस्त पदार्थ स्वतन्त्र हैं, प्रत्येक परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। इस प्रयोजनभूत प्रतीति सहित उन सबके साधारण असाधारण गुणोंको जानना चाहिये। साथ ही यह भी जानना चाहिये कि एक मुझ आत्माको छोड़कर शेष समस्त अनन्तानन्त आत्मा, अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य, असंख्यात कालद्रव्य—ये सर्व मुझसे

भिन्न हैं।

प्रश्न ४—संशय किसे कहते हैं?

उत्तर—अनेक कोटियोंके स्पर्श करने वाले ज्ञानको संशय कहते हैं। जैसे किसी चमकीली चीजमें अनेक कोटिके विकल्प उठना कि यह सीप है या चाँदी या काँच, अथवा धर्मका स्वरूप जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत ठीक है या अन्य मतों द्वारा कहा हुआ ठीक है, अथवा ब्रह्म कूटस्थ है या परिणामी इत्यादि।

प्रश्न ५—अनध्यवसाय किसे कहते हैं?

उत्तर— जिसमें न तो यथार्थ ज्ञानकी झलक हो, न संशयके भी विकल्प उठ सकें और न विपर्यज्ञान भी हो सके, ऐसे अनिश्चित बोधको अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे कभी चलते हुये पुरुषके पैरमें तृण छू जाय तो साधारण पता तो रहे, किन्तु यह कुछ ख्याल भी नहीं जमे कि यह क्या है, अथवा जीवका साधारण पता तो रहे कि मैं हूं, किन्तु यह कुछ भी ख्याल न जमे कि मैं क्या हूं इत्यादि।

प्रश्न ६—विपर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर—विपरीत एक कोटिके ज्ञानको विपर्ययज्ञान कहते हैं। जैसे रस्सीको साँप जान लेना, अथवा आत्माको भौतिक जान लेना अथवा परमात्माको ऐसा समझना कि वह जीवोंसे पुण्य अथवा पाप कराता है या जीवोंको सुख या दुःख देता है इत्यादि।

प्रश्न ७—ज्ञान साकार होता है, इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर—यह जीव है, यह पुद्गल है, यह मनुष्य है, यह तिर्यञ्च है इत्यादि रूपसे निश्चय करने वाले, ग्रहण करने वाले ज्ञानको साकार कहते हैं। ज्ञानमें ज्ञेय जैसा जाननरूप आकारका ग्रहण होता है, इसलिये ज्ञानको साकार कहते हैं।

प्रश्न ८—ज्ञानके कितने भेद हैं?

उत्तर—ज्ञानके अनेक दृष्टियोंसे अनेक भेद हैं। जैसे ज्ञान दो प्रकारका है—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। ज्ञान ५ प्रकारका है—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय व केवलज्ञान। ज्ञान आठ प्रकारका है, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, ये ३ मिथ्याज्ञान और मति, श्रुत, अवधि, ये ३ सम्यग्ज्ञान और मनःपर्यय व केवलज्ञान। इनके प्रत्येकके भी अनेक भेद हैं। इन सबका वर्णन ५वीं गाथामें विस्तारपूर्वक कहा है, इसलिये इनका वर्णन यहाँ नहीं किया जाता है।

प्रश्न ९—वस्तुतः सम्यग्ज्ञानका क्या लक्षण है?

उत्तर—निज गुण पर्यायमें एकत्वरूपसे रहने वाले, सहज शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावमय निज आत्मस्वरूपका ग्रहण करना सम्यग्ज्ञानका लक्षण है।

प्रश्न १०—शुद्ध स्वभावके अतिरिक्त अन्य भावों व द्रव्योंका यथार्थ ज्ञान करना

क्या सम्यग्ज्ञान नहीं है ?

उत्तर—जिनमें एकता जोड़ने वाले ज्ञानके होनेपर अन्य पदार्थों व भावोंका भी ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

प्रश्न ११—आत्मस्वरूपको जाने या न जाने, केवल बाह्य पदार्थोंको यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान क्यों नहीं कहलाता ?

उत्तर—आत्मस्वरूपमें एकता जोड़े बिना जो भी बाह्यपदार्थ ज्ञानमें आवेंगे उन्हें जानेगा तो किन्तु उनमें एकता जोड़कर जानेगा। परमें अपना कुछ भी है, ऐसा वस्तुका स्वरूप ही नहीं है। अतः वह सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता। लोकमें लौकिक दृष्टिसे बाह्य पदार्थोंका ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

प्रश्न १२—ज्ञानका फल क्या है ?

उत्तर—ज्ञानका फल निश्चयनयसे तो अज्ञाननिवृत्ति है और व्यवहारनयसे उपेक्षा होना, उपादेय एवं हेयकी बुद्धि होना फल है।

प्रश्न १३– सम्यग्ज्ञान होनेपर किससे उपेक्षा हो जाती है ?

उत्तर—सम्यग्ज्ञान होनेपर समस्त अध्रुव भावोंसे उपेक्षा हो जाती है।

प्रश्न १४– सम्यग्ज्ञानीके किसमें उपादेय एवं हेय बुद्धि हो जाती है ?

उत्तर– सम्यग्ज्ञान जीवके निज शुद्ध आत्मतत्त्वमें उपादेय बुद्धि होती है और इस ध्रुव निज चैतन्यतत्त्वके अतिरिक्त जितने भी भेद दर्शक, विकल्प, औपाधिक भाव व अन्य सभी पर्याय व परद्रव्य—इन सबमें हेयबुद्धि रहती है।

प्रश्न १५—निश्चय, व्यवहाररूप उक्त फलोंकी तरह क्या ज्ञान भी दो प्रकारका होता है ?

उत्तर—ज्ञानके भी दो भेद हैं—(१) निश्चयज्ञान और (२) व्यवहारज्ञान।

प्रश्न १६—निश्चयज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो ज्ञान ज्ञानमय आत्माके साथ एकत्व जोड़ रहा हो अथवा जो ज्ञान निर्विकल्परूपसे अपना अनुभव न कर रहा हो उसे निश्चयज्ञान कहते हैं।

प्रश्न १७– व्यवहारज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस ज्ञानके परपदार्थोंकी ओर वासना, विचार एवं विकल्प हैं उस ज्ञानको व्यवहारज्ञान कहते हैं।

प्रश्न १८– उक्त दोनों प्रकारके ज्ञानोंमें कौन सम्यग्ज्ञान है और कौन मिथ्याज्ञान है ?

उत्तर-- निश्चय ज्ञान तो सम्यग्ज्ञान ही है, किन्तु व्यवहारज्ञान सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान, दोनों प्रकारके हो सकते हैं।

प्रश्न १९-- ज्ञानको तो सविकल्प ही बताया गया है, ज्ञान निर्विकल्प कैसे हो सकता है ?

उत्तर-- ज्ञान अर्थाकारको जाननरूप ग्रहण करता है, अतः सविकल्प है, किन्तु इस लक्षणके अनुसार निश्चयज्ञानके भी स्वसंवेदनरूप आकारका ग्रहण होनेसे सविकल्प होनेपर भी बाह्य अर्थविषयक विकल्प न होनेसे अथवा उनका प्रतिभासमात्र होनेके हेतु मुख्यपना न होने से निर्विकल्पपना माना गया है।

इस प्रकार ज्ञानके वर्णनके पश्चात् अब दर्शनका वर्णन किया जाता है—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये ॥४३॥

अन्वय—अट्ठे अविसेसिदूण आयारं णेव कट्टु जं भावाणं सामण्णं गहणं तं दंसणं इदि समये भण्णये।

अर्थ— पदार्थोंको भेदरूप न करके और उनके आकार आदि विकल्पोंको न करके जो पदार्थोंका सामान्य ग्रहण है वह दर्शन है, ऐसा सिद्धान्तोंमें कहा गया है।

प्रश्न १—पदार्थोंके सामान्य ग्रहणका क्या अर्थ है ?

उत्तर—पदार्थोंके सामान्यग्रहणका तर्क दृष्टिसे तो यह अभिप्राय है कि पदार्थोंकी सामान्यसत्ताका अवलोकन दर्शन है। इसमें किसी भी प्रकारका विकल्प, विचार व विशेषका ज्ञान नहीं है, और सिद्धान्तदृष्टिसे दर्शनका यह अभिप्राय है कि अन्तर्मुख चैतन्यमात्रका जो प्रकाश है अथवा आत्मावलोकन है वह दर्शन है।

प्रश्न २—इन दोनों लक्षणोंमें तो परस्पर विरोध हो गया ?

उत्तर—इन दोनों लक्षणोंमें परस्पर विरोध नहीं है, क्योंकि दोनोंमें विषय आत्मा ही होता है।

प्रश्न ३— पदार्थोंकी सामान्यसत्ता आत्मविषय कैसे बन सकती है ?

उत्तर— सर्व पदार्थोंमें तो सामान्य अस्तित्व गुण है वह तो महासत्तारूप है। उस सामान्यसत्ताके प्रतिभासमें कोई नियत पदार्थ सामान्यसत्तासे विशेषित नहीं होता है। अन्यथा वह आवान्तरसत्ता कहलावेगी, सामान्यसत्ता नहीं। इसलिये सामान्यसत्तामें कोई पदार्थ विषयभूत नहीं होता, किन्तु सामान्यसत्ताका प्रतिभास करने वाला है आत्मा, और आत्मा वास्तवमें अपनेको ही देखता जानता है, सो सामान्यसत्ताका प्रतिभास करने वाला स्वयं विषय होता ही है। इस प्रकार पदार्थोंकी सामान्यसत्ताके अवलोकनमें आत्मा ही विषय होता है।

प्रश्न ४—पदार्थोंकी सामान्यसत्ताका ग्रहण, यह अर्थ गाथामें कैसे निकला ?

उत्तर– गाथामें तो यह शब्द हैं "जं सामण्णं गहणं"। जो सामान्य ग्रहण है वह दर्शन है। यदि "सामण्णं" से पहिले "भावाणं" शब्द लगाते हैं तो अर्थ निकलता है कि "पदार्थोंका सामान्य ग्रहण"। पदार्थोंका सामान्य धर्म है सामान्यसत्ता, जो कि सबमें व्यापक है। इस प्रकार अर्थ निकला कि पदार्थोंकी सामान्यसत्ताका अवलोकन (ग्रहण) दर्शन है।

प्रश्न ५—यदि "सामण्णं" शब्दसे पहिले "भावाणं" शब्द न जोड़ा जाय तब क्या अर्थ होगा ?

उत्तर—यदि "सामण्णं" से पहिले 'भावाणं' शब्द न जोड़ा जाय तब यह 'भावाणं' शब्द "आयाराणं" से पहिले जुड़ेगा। तब गाथाका यह अन्वय होगा "अट्ठे अविसेसिदूण भावाणं आयारं णेव कट्टु जं सामण्णं गहणं तं दंसणं इदि समए भण्णये"। इसका अर्थ हुआ कि पदार्थोंको भेदरूप न देख करके और उन भावोंका (पदार्थोंका) आकार ग्रहण न करके जो सामान्य रूपसे ग्रहण (प्रतिभास) है वह दर्शन है। ऐसा सिद्धान्तमें कहा गया है।

प्रश्न ६ – सामान्य रूपसे ग्रहण क्या होता है ?

उत्तर—आत्माका अवलोकन ही सामान्यरूपसे ग्रहण कहलाता है अथवा सामान्यके ग्रहणको सामान्य ग्रहण कहते हैं। सामान्यके मायने हैं आत्मा, सो आत्माके ग्रहणको सामान्यग्रहण कहते हैं।

प्रश्न ७– सामान्यका अर्थ आत्मा कैसे हो जाता है ?

उत्तर– "मानेन ज्ञानेन प्रमाणेन सहितं समानं, समानस्य भावः सामान्यम्" इस व्युत्पत्तिसे यह अर्थ हुआ कि जो द्रव्य ज्ञान करिके सहित है उसे समान कहते हैं और समानके भावोंको सामान्य कहते हैं। सो समान हुआ चेतन (आत्मा) व समानका भाव हुआ चैतन्य। चैतन्यका चेतन (आत्मा)से अभेद है, अतः सामान्यका अर्थ आत्मा हुआ।

अथवा आत्माका जाननेके संबन्धमें समान भाव है अर्थात् आत्माके ऐसा पक्ष नहीं है कि मैं इसको नहीं जानने दूंगा और इस विषयको जानने दूंगा। क्योंकि आत्माका जाननस्वभाव है, अतः जब जैसी योग्यता होती है उसके अनुकूल जानता ही है। अतः समानभाव होनेसे सामान्यका अर्थ आत्मा हुआ।

प्रश्न ८– वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। उसमें सामान्यका ग्रहण करना दर्शन है व विशेषका ग्रहण करना ज्ञान है, क्या यह अर्थ ठीक प्रतीत होता है ?

उत्तर– नहीं, वस्तुके सामान्य अंशका ग्रहण करने वाला दर्शन और विशेष अंशको ग्रहण करने वाला ज्ञान माना जावे तो ज्ञान अप्रमाण हो जावेगा। क्योंकि ज्ञानने एक अंश ही जाना, अन्य अंशोंका उसे ज्ञान ही नहीं है। पूर्ण वस्तुको जानना सो ज्ञान कहलाता है। ज्ञानका विषय अपूर्ण वस्तु नहीं होता।

प्रश्न ९– व्यवहारनय या निश्चयनय भी तो ज्ञान हैं और वे एक अंशको जानते हैं ?

उत्तर– व्यवहारनय या निश्चयनय यद्यपि ज्ञान हैं और वे एक अंशको जानते हैं, तथापि कोई भी नय ज्ञान प्रमाण नहीं माना गया है। क्योंकि नय पूर्ण वस्तुको नहीं जानते हैं।

प्रश्न १०– तो क्या नय अप्रमाण हैं ?

उत्तर– नय न तो प्रमाण हैं और न अप्रमाण हैं, किन्तु प्रमाणांश हैं। जैसे कि समुद्रकी बिन्दु न तो समुद्र है और न असमुद्र है, किन्तु समुद्रांश है।

प्रश्न ११– निर्विकल्प स्वसंवेदन दर्शन कहा जायगा या ज्ञान ?

उत्तर– निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानकी ही अवस्था है, अतः ज्ञान कहा जायगा।

प्रश्न १२—ज्ञानका विषय तो परपदार्थ होता है। इस निर्विकल्प स्वसंवेदनका विषय कौनसा परपदार्थ है ?

उत्तर– ज्ञानका विषय परपदार्थ ही होता है। ऐसा नियम नहीं, किन्तु परपदार्थ ज्ञानका ही विषय होता है यह नियम है। इसी प्रकार जिस प्रतिभासका विषय आत्मा हो वह दर्शन ही होता है ऐसा नियम नहीं है, किन्तु दर्शनका विषय आत्मा ही होता है यह नियम है। ज्ञानका विषयभूत आत्मा भी निराकार आत्मतत्त्वके समक्षपर है।

प्रश्न १३– जब निर्विकल्प, स्वसंवेदन और दर्शन—इन दोनोका विषय आत्मा है, तब यह कैसे पहिचाना कि निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान है, दर्शन नहीं ?

उत्तर– निर्विकल्प स्वसंवेदन सर्वथा निर्विकल्प नहीं है, किन्तु उसमें निराकुल सहज आनन्दका अनुभव आदि अनेक आकारोंका ग्रहण है, अतः स्वरूपसे सविकल्प है। निर्विकल्प स्वसंवेदनके कालमें अनिहित, ज्ञान प्रयोज्य अनेक सूक्ष्म विकल्प हैं, किन्तु उनकी मुख्यता नहीं है, सो वह निर्विकल्प कहा जाता है। जहाँ अर्थ विकल्प है वह ज्ञान है, अतः निर्विकल्प स्व-संवेदन ज्ञान है।

दर्शन सर्वथा निर्विकल्प होता है। यह किसी भी गुण, पर्याय, सामान्य, विशेष आदि आकारोंका ग्रहण नहीं करता है। सरल शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि कुछ भी ज्ञान करनेके लिये जो प्रतिभासात्मक उद्योग है उसे दर्शन कहते हैं।

इस प्रकार यद्यपि निर्विकल्प स्वसंवेदन व दर्शनका विषय आत्मा है तथापि स्वरूपकृत महान् अन्तर है।

प्रश्न १४—यदि दर्शनका विषय आत्मा है और वह भी अविशेषरूपसे, तो चक्षुदर्शन आदिका क्या तात्पर्य रहा ?

उत्तर– चक्षुर्दर्शनका अर्थ चक्षुरिन्द्रियसे देखना, यह अर्थ नहीं है। चक्षुरिन्द्रियसे देखना

तो ज्ञान कहलाता है। चक्षुर्दर्शनका तात्पर्य तो यह है कि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानसे पहिले चाक्षुषज्ञानके लिये किया गया जो आत्मप्रतिभासरूप प्रयत्न (शक्तिग्रहण) है वह चक्षुर्दर्शन है। इसी प्रकार अचक्षुर्दर्शन आदिके सम्बन्धमें जानना।

प्रश्न १५– ज्ञानको तो "स्वपरप्रकाशक" कहा गया है, फिर यहाँ ज्ञानको केवल परग्राहक क्यों कहा जा रहा है ?

उत्तर—जो लोग ज्ञान और दर्शन ऐसी दो शक्तियाँ नहीं मानकर आत्मामें मात्र ज्ञानशक्ति मानते हैं और फिर उस ज्ञानको केवल परग्राहक मानते हैं उन्हें प्रतिबोध करनेके अर्थ ज्ञानको स्वपरप्रकाशक बताया है अर्थात् ज्ञानको आत्मा व पर दोनोंका प्रकाशक कहा है।

प्रश्न १६—यदि ज्ञान वास्तवमें परको ही जानता है, आत्माको नहीं, तब तो ज्ञान अस्वसंवेदी हो जायगा और तब यह ज्ञान सच्चा है, इसके ज्ञानके लिये अन्य ज्ञानकी अपेक्षा करनी पड़ेगी ?

उत्तर– ज्ञान परको भी जानता है और जिस ज्ञानने परको जाना वह ज्ञान ठीक ही है ऐसी जानकारी सहित जानता है अन्यथा परके ज्ञानमें निःशङ्कता नहीं आ सकती। अतः ज्ञान अस्वसंवेदी नहीं हो जाता।

प्रश्न १७—"ज्ञान स्वपर-प्रकाशक है" यह क्या बिल्कुल असत्य है या किसी दृष्टि से सत्य है ?

उत्तर– आत्माका असाधारण भाव चैतन्य है। चैतन्यके विकासकी दो पद्धतियाँ हैं– (१) आत्माके ग्राहकरूपसे प्रवृत्त होना, (२) परद्रव्यके ग्राहक रूपसे प्रवृत्त होना। इनमें पहिली कलाको दर्शन कहते हैं और दूसरी कलाको ज्ञान कहते हैं। आत्माकी समस्त कलावों और शक्तियोंका निश्चायक ज्ञान होता है और ज्ञानसे ही समस्त व्यवहार होते हैं। अतः व्यवहार व व्यवहारके प्रसङ्गमें समस्त चैतन्य और ज्ञानमें अभेद विवक्षा करके पश्चात् प्रतिबोध किया जाता है तब "ज्ञान स्वपर-प्रकाशक है" यह बात सत्य ही कथित होती है।

प्रश्न १८– दर्शन सर्वपदार्थोंका सामान्य प्रतिभास करता है, यदि यह बात अनुपयुक्त है तो ऐसा कहा ही क्यों गया ?

उत्तर– दर्शन आत्माका प्रतिभास करता है। आत्माके प्रतिभासमें आत्माकी समस्त शक्तियोंका विकास भी निर्विकल्परूपसे प्रतिभासमें आ जाता है। इस रीतिसे ज्ञानने जितने परपदार्थोंका ग्रहण किया था वे सब पदार्थ भी दर्शनमें गृहीत हो जाते हैं। इस नयसे "दर्शन सर्वपदार्थोंका सामान्य अवलोकन करता है" यह बात उपयुक्त हो जाती है।

प्रश्न १९—जो लोग आत्मामें सिर्फ ज्ञान गुण मानते हैं उन्हें "ज्ञान आत्मप्रकाशक है" इस कथनके बजाय "आत्मामें दर्शन गुण भी है वह आत्माका प्रकाशक है" ऐसा सीधा

क्यों नहीं कह दिया जाता है ?

उत्तर — आत्मा ग्राहक दर्शन है, इसको स्वीकार करनेके लिये विशेष मननकी और अनुभवकी आवश्यकता है। तार्किक प्रसङ्गोंमें इसका अवसर नहीं है। वहाँ तो उनकी प्रतीतिके लिये स्थूल रीतिसे निरूपण करके यही बताना कि "ज्ञान स्व व परका प्रकाशक है" उपयुक्त हो जाता है। विवक्षावश इसमें दूषण नहीं आता है।

प्रश्न २०— जो लोग दर्शन व ज्ञान दोनों गुण मानते हैं उन्हें "दर्शन पदार्थोंका सामान्य ग्रहण करता है" इस कथनके बजाय "दर्शन आत्माका प्रकाशक है" ऐसा क्यों नहीं कह दिया जाता ?

उत्तर—स्वसमय सम्बन्धी सूक्ष्म व्याख्यानमें रुचि न रखने वाले जनोंकी प्रतीतिके अर्थ व्यवहारनयका उक्त कथन दोष उत्पन्न नहीं करता है।

इस प्रकार दर्शनके स्वरूपका वर्णन करके अब यह कहा जाता है कि दर्शन और ज्ञान — इन दोनोंका उपयोग जीवोंमें एक साथ पाया जाता है या क्रमसे ?

दंसणपुव्वं णाणं छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

अन्वय— छदुमत्थाणं दंसणपुव्वं णाणं, जम्हा दुण्णि उवओगा जुगवं ण, तु केवलिणाहे ते दोवि जुगव।

अर्थ —छद्मस्थ जीवोंके दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, क्योंकि ये दोनों उपयोग वहाँ एक साथ नहीं होते हैं, किन्तु केवली भगवान्में वे दोनों ही उपयोग एक साथ होते हैं।

प्रश्न १ — छद्मस्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर— छद्मका अर्थ है अज्ञान याने अपूर्ण ज्ञान अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण ये दो आवरण उसमें जो स्थ कह रहे उसे छद्मस्थ कहते हैं।

प्रश्न २—छद्मस्थोंमें कितने गुणस्थान आ जाते हैं ?

उत्तर— मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व, मिश्रसम्यक्त्व, अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह—ये १२ गुणस्थान छद्मस्थोंमें आते हैं अर्थात् इन बारह गुणस्थानवर्ती जीवोंको छद्मस्थ कहते हैं।

प्रश्न ३— छद्मस्थोंका ज्ञान दर्शनपूर्वक क्यों होता है ?

उत्तर—छद्मस्थ जीवोंका ज्ञान अपूर्ण रहता है और जब तक ज्ञान अपूर्ण रहता है तब तक यह योग्यता नहीं होती कि अन्तर्मुख चित्प्रकाशका उपयोग और बहिर्मुख चित्प्रकाश का उपयोग एक साथ रह सके।

प्रश्न ४– किन-किन दर्शनोंपूर्वक कौन-कौनसे ज्ञानोपयोग होते हैं ?

उत्तर—मतिज्ञानसे पहिले चक्षुदर्शन व अचक्षुर्दर्शन होते हैं और अवधिज्ञानसे पहिले अवधिदर्शन होता है।

प्रश्न ५—श्रुतज्ञानसे पहिले कौनसा दर्शन होता है ?

उत्तर– श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, उस मतिज्ञानसे पहिले जो दर्शन हुआ था वही दर्शन श्रुतज्ञानका पूर्वभावी कहना चाहिये, अथवा श्रुतज्ञानसे पहिले होने वाला मतिज्ञान उपचारसे दर्शन कहा जाता है।

प्रश्न ६– श्रुतज्ञानसे साक्षात् पहिले दर्शन न होकर मतिज्ञान ही क्यों होता है ?

उत्तर—श्रुतज्ञान विशेषतया सविकल्प है, इस कारण श्रुतज्ञानसे साक्षात् पहिले दर्शन नहीं होता है। श्रुतज्ञान मतिज्ञानसे कुछ जाननेपर ही हो सकता है।

प्रश्न ७—दर्शन, मति और श्रुतकी इस पूर्वोत्तरभाविताका उदाहरण क्या है ?

उत्तर—जैसे किसी पुरुषको घटज्ञान होना है उससे पहिले वह कट (चटाई) का ज्ञान कर रहा था। तो वह पुरुष कटज्ञानको छोड़ देता है और घटज्ञानके लिये उद्योग करता है इस स्थितिमें घटका और चक्षुरिन्द्रियका सन्निपात होता है अर्थात् जैसे वह घटको जानेगा उस रूप इन्द्रियकी प्रवृत्तिका उद्योग होता है यह तो दर्शन हुआ। यहाँ अभी बाह्यपदार्थका ग्रहण नहीं है। इसके अनन्तर यह पीत कृष्ण आदिरूप है इत्यादि रूपसे अब ग्रहादिज्ञान होते हैं पश्चात् यह घड़ा किसने बनाया, कैसे बनाया, कहां बना, कितनी इसकी स्थिति है आदि ज्ञान हों वे सब श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ८—मनःपर्ययज्ञानसे साक्षात् पहिले दर्शन क्यों नहीं होता ?

उत्तर– मनःपर्ययज्ञान दूसरेके मनमें होने वाले परिणमनको याने विचार, विकल्पों को जानता है, अतः यह ज्ञान पर्यायज्ञाता है। पर्यायज्ञाता ज्ञानसे पहिले ईहादिरूप मतिज्ञान ही होता है।

प्रश्न ९-- कुज्ञानोंसे पहिले कौन-कौनसे दर्शन होते हैं ?

उत्तर-- कुमतिज्ञानसे पहिले चक्षुदर्शन या अचक्षुर्दर्शन होता है। कुश्रुतज्ञानसे साक्षात् पहिले कुमतिज्ञान होता है और परम्परया पहिले चक्षुर्दर्शन या अचक्षुर्दर्शन होता है। कुअवधिज्ञानसे पहिले कुमतिज्ञान होता है।

प्रश्न १०-- कुअवधिज्ञानसे पहिले दर्शन क्यों नहीं होता है ?

उत्तर– कुअवधिज्ञान सम्यग्दृष्टि जीवके नहीं होता है, अतः उससे पहिले अवधिदर्शन नहीं होता। सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी जीवके ही अवधिज्ञानसे पहिले अवधिदर्शन होता है। अथवा किन्हीं आचार्योंके मतमें कुअवधिसे पहिले भी अवधिदर्शन हो जाता है।

प्रश्न ११– केवली भगवान्के दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग दोनों एक साथ क्यों होते हैं ?

उत्तर– केवली भगवान्के ज्ञानावरण व दर्शनावरण– इन दोनों आवरणोंका अभाव होनेसे और वीर्यान्तराय कर्मके अभाव होनेके कारण पूर्ण प्रकट होनेसे दोनों उपयोगोंका सहज परिणमन निरन्तर होता रहता है, अतः केवली भगवान्के दोनों उपयोग एक साथ होते हैं।

प्रश्न १२—दर्शन व सम्यग्दर्शनमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—ज्ञानोपयोगकी प्रवृत्तिके अर्थ आत्माका अन्तरंगमें आत्मग्रहणरूप जो प्रयत्न होता है उसे दर्शन कहते हैं। यह दर्शन भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, छद्मस्थ, भगवान सभी आत्माओंमें होता है।

दर्शनके विषयभूत निज आत्माके सहजस्वभावका अनुभव जिस निर्मलताके कारण होता है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन निकट संसारी भव्य जीव एवं भगवानके होता है।

प्रश्न १३– जब दर्शन सभी जीवोंके होता है तो सम्यग्दर्शन सब जीवोंके क्यों नहीं हो जाता है ?

उत्तर—दर्शन तो कुछ भी जाननेके लिये होने वाला अन्तर्मुख प्रयत्न है। यह तो सभी जीवोंके होना ही होता है, चाहे वे मिथ्यादृष्टि हों या सम्यग्दृष्टि। किन्तु सम्यग्दर्शन विपरीत अभिप्रायके नष्ट हुये बिना नहीं होता है। अतः जिनके विपरीत अभिप्राय है उनके दर्शन होना तो आवश्यक है, परन्तु सम्यग्दर्शन होना उस समय असंभव है।

प्रश्न १४– दर्शन उपयोगके समय तो आत्माका आश्रय रहता है, फिर उसे सम्यक्त्व क्यों नहीं होता है ?

उत्तर– बाह्य पदार्थोंकी जिनके रुचि पाई जाती है वे बाह्य पदार्थके जानने और हितकर माननेकी धुनमें रहते हैं। अतः दर्शनोपयोग द्वारा आत्ममुख होकर भी उन्हें आत्माकी प्रतीति नहीं होती, अतः दर्शनोपयोगमें होने वाला आत्माश्रय सम्यक्त्वमें होने वाले अथवा सम्यक्त्वके लिये होने वाले आत्माश्रयसे भिन्न है।

इस प्रकार दर्शनोपयोगके वर्णन तक सम्यग्ज्ञानका अन्तराधिकार समाप्त करके अब सम्यक्चारित्रका निरूपण करते हैं—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदि गुत्तीरूपं ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अन्वय—असुहादो विणिवित्ती य सुहे पवित्ती वदसमिदि गुत्तिरूपं चारित्तं जाण, ववहारणया दु जिणभणियं।

अर्थ— अशुभक्रियासे निवृत्त होने और शुभक्रियामें प्रवृत्त होनेको व्रत, समिति, गुप्ति स्वरूप चारित्र जानो, ऐसा व्यवहारनयसे जिनेन्द्रदेवने कहा है।

प्रश्न १– शुक्लध्यानी साधुवोंके यह लक्षण न पाया जानेसे यह लक्षण तो अव्यापक रहा।

उत्तर—यह लक्षण व्यवहारचारित्रका है, चारित्रसामान्यका नहीं अथवा निश्चय-चारित्रका नहीं। अतः यह लक्षण व्यवहारचारित्रमें पूर्ण प्रकारसे घटित होता है।

प्रश्न २– अहिंसा महाव्रतके पालनमें यह लक्षण कैसे घटित होता है ?

उत्तर—अहिंसा महाव्रतमें हिंसासे निवृत्ति और दयामें प्रवृत्ति होती है, अतः अहिंसा व्रतमें अशुभनिवृत्ति व शुभप्रवृत्ति सिद्ध है।

प्रश्न ३—सत्यमहाव्रतके पालनमें यह लक्षण कैसे घटित होता ?

उत्तर– सत्यमहाव्रतमें असत्य, अहित, चुगलीके, निन्दाके वचनोंसे निवृत्ति होती है और सत्य, हितरूप, भक्तिभरे वचनोंमें प्रवृत्ति होती है, अतः इसमें भी व्यवहारचारित्रका लक्षण सिद्ध है।

प्रश्न ४– अचौर्यमहाव्रतमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति है ?

उत्तर– अचौर्यमहाव्रतमें चोरी व जबरदस्तीसे तो निवृत्ति है और आज्ञा लेकर स्वोचित वस्तु ग्रहण करने व भक्ति सहित दी हुई योग्य वस्तुके ग्रहण करने व आगमकी पद्धतिके अनुसार आहारादि ग्रहण कहनेमें प्रवृत्ति है।

प्रश्न ५—ब्रह्मचर्यमहाव्रतमें किससे निवृत्ति और किससे प्रवृत्ति है ?

उत्तर—सर्व प्रकारके मैथुन प्रसङ्गोंसे निवृत्ति और शीलके साधक साधनोंमें प्रवृत्ति इस महाव्रतमें होती है।

प्रश्न ६—परिग्रहत्याग महाव्रतमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर—परिग्रहत्याग महाव्रतमें धन धान्य आदि सर्व परिग्रहोंसे निवृत्ति और वन-निवास, नग्नत्व आदिमें प्रवृति होती है।

प्रश्न ७—ईर्यासमितिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर—ईर्यासमितिमें सचित स्थानोंसे निवृत्ति और पिच्छिका द्वारा शरीर शोधन, स्थानशोधन आदिमें प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न ८– भाषासमितिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर– भाषासमितिमें अहित, अपरिमित व अप्रिय वचनोंके बोलनेसे निवृत्ति और हित, मित प्रिय वचन बोलनेमें प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न ९—ऐषणासमितिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर– ऐषणासमितिमें अयोग्यविधिसे चर्या करना, अयोग्य आहारपान करना आदिसे निवृत्ति और योगविधिसे चर्या, योग्य आहारपान आदिमें प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न १०—आदाननिक्षेपणसमितिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होनी है ?

उत्तर– सचित्त पदार्थोंके धरने उठानेसे निवृत्ति और पिच्छिकासे जीवोंको सावधानीसे हटाकर धरने उठानेमें प्रवृत्ति इस समितिमें होती है।

प्रश्न ११—प्रतिष्ठापना समितिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर—प्रतिष्ठापनासमितिमें सचित्त (जीवसहित) स्थानपर मल मूत्र आदि क्षेपणसे निवृत्ति और पिच्छिकासे स्थान शोध कर मल-मूत्रादिक्षेपणमें प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न १२—मनोगुप्तिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर– विषयकषायोंमें मनके लगानेसे निवृत्ति और आत्मतत्त्वके मनन, ध्यानमें मनकी प्रवृत्ति मनोगुप्तिमें होती है।

प्रश्न १३– वचनगुप्तिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर-- कठोर, अहित वचनोंके बोलनेसे निवृत्ति और मौन धारणमें प्रवृत्ति वचन-गुप्तिमें होनी है।

प्रश्न १४—कायगुप्तिमें किससे निवृत्ति और किसमें प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर– खोटे कार्यमें शरीरकी क्रियासे निवृत्ति और उपसर्ग आदिमें आनेपर भी शरीरको निश्चल रखनेमें प्रवृत्ति कायगुप्तिमें होती है।

प्रश्न १५– उक्त १३ प्रकारके चारित्रके लक्षणोंमें जो बाह्य विषयोंका त्याग अथवा शुभक्रियामें अथवा अन्य शुभ साधनोंमें प्रवृत्ति कही है वह आत्माका चारित्र कैसे हो सकता है ?

उत्तर– उक्त बाह्यविषयक प्रवृत्ति व निवृत्ति उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे चारित्र कहा जाता है।

प्रश्न १६– उक्त १३ प्रकारके चारित्रोंमें जो रागद्वेषका परिहार अथवा आत्मतत्त्वके चिन्तन, अवलोकनमें उपयोग रहता है यह किस नयसे आत्माका चारित्र है ?

उत्तर-- चारित्रमें जो रागादि परिहार व आत्मतत्त्वका मनन अवलोकन आदि यत्न है वह अनुपचरित व्यवहारनय अथवा अशुद्ध निश्चयनयसे चारित्र है।

प्रश्न १७-- संयमासंयमको चारित्र कहते हैं या नहीं ?

उत्तर - संयमासंयम एक देश व्यवहारचारित्र है। जिस सम्यग्दृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च के त्रसवधका तो त्याग है और वह शेष पंच स्थावर जीवोंके घातका त्याग न कर सके तो उसके संयमासंयम होता है। समस्त संयमासंयम सरागचारित्रका एक देश अंग है।

प्रश्न १८-- क्या संयमासंयमके सब स्थानोंमें पञ्च स्थावरके घातत्याग नहीं हो पाता ?

उत्तर-- संयमासंयमके ऊपरी स्थानोंमें यद्यपि स्थावरका घात रुक जाता है तथापि सर्वथा त्यागका नियम महाव्रतमें होता है।

प्रश्न १९-- संयमासंयमके स्थान कितने हैं ?

उत्तर-- संयमासंयमके असंख्यात स्थान हैं, किन्तु यदि उन्हें संक्षेपमें श्रेणिबद्ध किया जावे तो उनकी श्रेणी ११ की जा सकती हैं। इन श्रेणियोंको प्रतिमा (प्रतिज्ञा) भी कहते हैं।

प्रश्न २०-- ग्यारह प्रतिमायें कौन-कौनसी हैं ?

उत्तर--श्रावककी ११ प्रतिमायें इस प्रकार हैं—(१) दर्शन प्रतिमा, (२) व्रत प्रतिमा, (३) सामायिक प्रतिमा, (४) प्रोषध प्रतिमा, (५) सचित्तत्याग प्रतिमा, (६) रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा या दिवामैथुनत्याग प्रतिमा, (७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा, (८) आरम्भत्याग प्रतिमा, (९) परिग्रहत्यागप्रतिमा, (१०) अनुमतित्याग प्रतिमा, (११) उद्दिष्टाहारत्याग प्रतिमा।

प्रश्न २१-- दर्शन प्रतिमा कहते हैं ?

उत्तर-- जहाँ सम्यग्दर्शन प्रकट हो गया है एवं संसार शरीर व भोगोंसे वैराग्य हो चुका है और इसी कारण उन समस्त अभक्ष्य पदार्थोंका जिनमें त्रसघात होता है, त्याग भी हो चुका है उसे दर्शनप्रतिमा कहते हैं। इस प्रतिमाका धारक श्रावक अनन्त स्थावर घात वाले अभक्ष्य, जैसे आलू, मूली आदि नहीं खाता है व मर्यादित भोजन सामग्रीका उपयोग करता है। यह दार्शनिक श्रावक परमेष्ठिभक्तिमें निज आत्मतत्त्वकी दृष्टिमें रहकर आगे चारित्रमें बढ़नेका उत्साह रखता है।

प्रश्न २२-- व्रत प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर-- अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरमाणुव्रत, इन पाँच अणुव्रतोंका निरतिचार पालन करना एवं दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक प्रोषधोपवास, भोगोपयोगपरिमाणव्रत व अतिथिसंविभागव्रत—इन ७ शीलोंका पालन करना तो व्रतप्रतिमा है।

प्रश्न २३-- सामायिक प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न, इन तीन कालोंमें विधिपूर्वक निरतिचार कमसे कम २ घड़ी तक सामायिक करनेको सामायिक प्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न २४-- प्रोषध प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशीको उत्तम, मध्यम व जघन्य रूपसे प्रोषधोपव्रत करनेको प्रोषधप्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न २५-- प्रोषधोपवासका उत्तम रूप क्या है ?

उत्तर– सप्तमीको एक बार आहारपान करके आहारपानका त्याग कर देना और फिर नवमीको एक बार ही आहारपान करना सो उत्तम प्रोषधोपवास है। इसी तरह त्रयोदशी को एक बार आहारपान करके आहारपानका त्याग कर देना और फिर पन्द्रसके दिन एक बार ही आहारपान करना उत्तम प्रोषधोपवास है। सप्तमी और त्रयोदशीको धारणाका दिन कहते हैं और नवमी व पन्द्रसको पारणाका दिन कहते हैं।

प्रश्न २६– प्रोषधोपवासका मध्यम रूप क्या है ?

उत्तर– धारणाके दिन एक बार ही आहारपान करना पर्वके दिन केवल जल ही लेना पश्चात् पारणाके दिन एक बार ही आहार करना यह प्रोषधोपवासका मध्यम रूप है।

प्रश्न २७– प्रोषधोपवासका जघन्य रूप क्या है ?

उत्तर—धारणाके दिन एक बार ही आहारपान करना, पर्वके दिन नीरस या एक दो रस सहित आहारपान करना, पश्चात् पारणाके दिन एक बार ही आहारपान करना यह प्रोषधोपवासका जघन्य रूप है।

प्रश्न २८– प्रोषधोपवासमें अन्य कर्तव्य क्या हैं ?

उत्तर– प्रोषधोपवासमें धारणाके आहारपान करनेके बादसे पारणाके आहारपान करनेसे पहिले तक आरम्भ, व्यापारका त्यागकर धर्मध्यान सहित समय व्यतीत करना विशेष कर्तव्य है।

प्रश्न २९–सचित्तत्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर—सचित्त जल एवं वनस्पतिके खाने-पीनेका त्याग करना सो सचित्तत्याग प्रतिमा है। सचित्तत्याग प्रतिमाधारी बरसातमें पत्ते तथा बिना दले, बिना बटे अन्न व बीजको भी नहीं खाता है।

प्रश्न ३०– दिवामैथुनत्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर—दिनमें काम विकारके भाव व प्रयत्नोंके त्याग करनेको दिवामैथुनत्याग प्रतिमा कहते हैं। इस छठी प्रतिमाका दूसरा नाम रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा भी है। इसका अर्थ है रात्रिको भोजन पान करने, कराने व अनुमोदना करनेका मन, वचन, कायसे त्याग होना।

प्रश्न ३१– स्वयं रात्रिमें भोजन करनेका त्याग किस प्रतिमासे हो जाता है ?

उत्तर– रात्रिमें भोजन करनेका त्याग पहली प्रतिमासे हो जाता है, किन्तु पहली प्रतिमामें प्रातः व सायंकालकी आदि अन्तकी दो घड़ियोंमें कभी कुछ अतिचार हो जाता था, लेकिन इस प्रतिमासे रात्रिभोजनत्यागका निरतिचार होता है।

प्रश्न ३२—ब्रह्मचर्य प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर– मन, वचन, कायसे स्वस्त्रीविषयक भी कामभावका सर्वथा त्याग कर देना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

प्रश्न ३३- आरम्भत्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर—आरम्भ, व्यापारका त्याग कर देनेको आरम्भत्यागद्रव्यसंग्रह प्रतिमा कहते हैं। आरम्भत्यागप्रतिमाधारी श्रावक धनका नवीन उपार्जन नहीं करता और बैलगाड़ी, तांगा, घोड़ा, ऊँट, हाथी आदि सवारियोंका भी त्याग कर देता है।

प्रश्न ३४– परिग्रहत्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर– आवश्यक वस्त्र, पात्रके अतिरिक्त सर्वपरिग्रहका त्याग कर देनेको परिग्रह-त्याग प्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न ३५—अनुमतित्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर– गृहकार्य, आरम्भ, व्यापार, भोजनव्यवस्था आदिकी अनुमतिका भी त्याग कर देनेको अनुमतित्यागप्रतिमा कहते हैं।

प्रश्न ३६—उद्दिष्टाहारत्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर—दूसरोंके उद्देश्यसे व केवल उस पात्रके उद्देश्यसे बनाये हुये आहारके त्याग कर देनेको उद्दिष्टाहारत्याग प्रतिमा कहते हैं। इस प्रतिमाके धारक दो प्रकारके होते हैं—(१) क्षुल्लक, (२) ऐलक। क्षुल्लक एक लंगोट व एक चादर धारण करता है। जीवदयाके लिये पीछी या मृदुवस्त्र रखता है। कैंची उस्तरेसे बाल बनवा लेता है या केशलोंच करता है। ऐलक केवल लंगोट धारण करता है। जीवदयाके लिये केवल पीछी ही धारण करता है। केशलोंच करता है, बाल नहीं बनवाता।

प्रश्न ३७—क्या ऐलक सकलचारित्रका धारक नहीं कहलाता ?

उत्तर—ऐलक यद्यपि मुनित्वके अधिक समीप है तथापि खण्डवस्त्रका परिग्रह होनेसे सकलचारित्रका धारक नहीं कहला सकता।

प्रश्न ३८-- क्या यह सकलचारित्रका पालन ही मुमुक्षुका ध्येय है ?

उत्तर– यह सकलचारित्र सरागचारित्र व व्यवहारचारित्र है, अतः साध्य नहीं है, किन्तु साध्य निश्चयचारित्रका साधन है।

अब इस व्यवहारचारित्र द्वारा साध्य जो निश्चयचारित्र है उसका वर्णन करते हैं—

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स ज जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

अन्वय—भवकारणप्पणासट्ठं णाणिस्स बहिरब्भंतरकिरियारोहो जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं।

अर्थ—संसारके कारणोंके नाशके अर्थ ज्ञानी जीवके बाह्य तथा आभ्यंतर क्रियावोंका निरोध जो जिनेन्द्रदेवने कहा है वह निश्चय सम्यक्चारित्र है।

प्रश्न १– संसार किसे कहते हैं ?

उत्तर– पुराने शरीरको छोड़कर नये-नये शरीरोंको ग्रहण कर नाना योनि और कुलों में भ्रमण करते हुए विकल्पोंके दुःख भोगनेको संसार कहते हैं।

प्रश्न २– संसारके कारण क्या हैं ?

उत्तर– मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग संसारके कारण हैं।

प्रश्न ३– सम्यक्चारित्रमें संसारके कारणोंके विनाशका प्रयोजन क्यों निहित है ?

उत्तर– सम्यक्चारित्र शाश्वत, स्वाभाविक, सत्य आनन्दके विकासके लिये ही होता है, अतः संसारका विनाश होना व एतदर्थ संसारके कारणोंका विनाश हो जाना इसमें आवश्यक ही है।

प्रश्न ४—संसारके कारणोंके विनाशका क्या उपाय है ?

उत्तर– बाह्य तथा आभ्यन्तर क्रियावोंका निरोध संसारके कारणोंके विनाशका उपाय है।

प्रश्न ५—बाह्यक्रियायें किन्हें कहते हैं ?

उत्तर– वचन और शरीरको शुभ अथवा अशुभ सभी चेष्टाओंको बाह्यक्रियायें कहते हैं।

प्रश्न ६—आभ्यंतरक्रियायें किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—मनके सभी विकल्पोंको, चाहे वे शुभ या अशुभ हों, स्थूल या सूक्ष्म हों आभ्यन्तरक्रियायें कहते हैं।

प्रश्न ७-- बाह्य व आभ्यंतर क्रियावोंके निरोध होनेपर आत्माकी क्या स्थिति होती है ?

उत्तर– मन, वचन, कायकी सर्वक्रियावोंके निरोध होनेपर निर्विकार सहज चैतन्यस्वरूप स्वके संवेदन बलसे सहज आनंदके अनुभवकी निर्विकल्प दशा आत्माके होती है।

प्रश्न ८-- ऐसी निर्विकल्प दशा ज्ञानीकी कैसे होती है ?

उत्तर-- यह निर्विकल्प परमसमाधि निश्चयरत्नत्रयस्वरूप अभेद ज्ञानमें बर्त रहे अभेदज्ञानीके होती है।

प्रश्न ९—यह निश्चयसम्यक्चारित्र किन गुणस्थानोंमें होता है ?

उत्तर– निश्चयसम्यक्चारित्रका प्रारम्भ तो सम्यक्त्व होते ही हो जाता है, क्योंकि सम्यक्त्वके साथ सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु जहाँ तक सरागचारित्र चलता है वहां तक व्यवहारचारित्रकी मुख्यता रहती है, अतः मुख्यरूपसे निश्चय सम्यक्चारित्र ८वें गुणस्थानसे १४वें गुणस्थान तक रहता है। संज्वलन कषायका उदय मंद

होनेसे सप्तम गुणस्थानमें भी निश्चयसम्यक्चारित्रको प्रधान कहा जाता है।

प्रश्न १०—चतुर्थ आदि गुणस्थानोंमें निश्चयसम्यक्चारित्र किस रूपमें रहता है ?

उत्तर—चतुर्थ आदि गुणस्थानोंमें निश्चयसम्यक्चारित्र स्वरूपाचरण चारित्रके रूपमें रहता है।

प्रश्न ११—क्या देशचारित्र व सकलचारित्रके समय स्वरूपाचरण चारित्र नहीं रहता है ?

उत्तर—देशचारित्र व सकलचारित्रके समय भी स्वरूपाचरण चारित्र रहता है। इसी कारण यहाँ भी निश्चयसम्यक्चारित्र है, किन्तु सरागचारित्र रूप व्यवहारचारित्रके कारण वह गौण रूपसे है।

इस प्रकार सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका संक्षेपमें वर्णन करके अब उक्त मार्गके उपायभूत ध्यानके अभ्यासका उपदेश श्रीमत्सिद्धान्तचक्रवर्ती जी करते हैं—

दुविहंपि मोक्खहेऊं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

अन्वय—जं मुणी दुविहंपि मोक्खहेऊं झाणे णियमा पाउणदि, तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह।

अर्थ—जिस कारणसे कि मुनि दोनों प्रकारके मोक्षके कारणोंको ध्यानके द्वारा नियमसे प्राप्त कर लेता है, उस कारणसे प्रसन्नचित्त होकर तुम सब ध्यानका अभ्यास करो।

प्रश्न १—रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय ध्यान ही क्यों है ?

उत्तर—रत्नत्रय ज्ञानके दृढ़ एवं स्थिर विकासको कहते हैं। ज्ञानका विकास ध्यानसे ही होता है। अतः रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय ध्यान ही है।

प्रश्न २—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र—ये तीनों ज्ञानस्वरूप क्यों हैं ?

उत्तर—भेददृष्टिसे तो ये तीन पृथक् पृथक् स्वरूप वाले हैं, किन्तु अभेददृष्टिसे श्रद्धान स्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। ज्ञान स्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं और रागादि परिहरणस्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्रश्न ३—ज्ञान गुण तो चेतन है, क्या श्रद्धान व चारित्र गुण भी चेतन हैं ?

उत्तर—यद्यपि चेतन तो ज्ञान गुण है और चेतनेका कार्य न करनेसे श्रद्धान व चारित्र गुण अचेतन है तथापि ये दोनों ज्ञानकी ही पद्धतियाँ होनेसे अभेददृष्टिसे चेतन ही हैं। एक श्रद्धान और चारित्र ही क्या, आत्माके सभी गुण अभेददृष्टिसे चेतन हैं।

प्रश्न ४—किस ध्यानके प्रतापसे मोक्षहेतुकी सिद्धि होती है ?

उत्तर—धर्मध्यान और शुक्लध्यान—इन दोनों ध्यानके द्वारा ही मोक्षमार्गकी सिद्धि हो सकती है। इन दोनों ध्यान और इनके प्रभेदोंमें उत्तरोत्तरके ध्यानसे मोक्षमार्गकी सिद्धि बढ़ती चली जाती है।

प्रश्न ५—समस्त ध्यान कितने होते हैं ?

उत्तर– ध्यान १६ होते हैं–आर्तध्यान ४, रौद्रध्यान ४, धर्मध्यान ४, शुक्लध्यान ४।

प्रश्न ६—आर्तध्यान चार कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—इष्टवियोगज, अनिष्टसंयोगज, वेदनाप्रभव और निदान ये चार आर्तध्यान हैं।

प्रश्न ७– इष्टवियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर--इष्ट वस्तु या इष्ट बन्धु मित्रके वियोग होनेसे जो उसके संयोगके लिये चिन्तवन रहता है उसे इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न ८—अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनिष्ट वस्तु या अनिष्ट बन्धु आदिके संयोग होनेपर उसके वियोगके लिये जो चिन्तवन रहता है उसे अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न ९—वेदनाप्रभव आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर– व्याधि होनेपर जो उस वेदनाविषयक चिन्तवन रहता है उसे वेदनाप्रभव आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न १०—निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर– इस लोकसम्बन्धी अथवा परलोक सम्बन्धी आगामी कालमें भोग आदिकी वाञ्छा करनेको निदान आर्तध्यान कहते हैं।

प्रश्न ११– रौद्रध्यान चार कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर– हिंसानन्द मृषानन्द, चौर्यानन्द, विषयसंरक्षणानन्द ये चार रौद्रध्यान ह।

प्रश्न १२– हिंसानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—हिंसाके करने कराने व अनुमोदनामें आनन्द माननेको हिंसानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न १३—मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर– झूठके बोलने, बुलवाने व अनुमोदना करनेमें तथा चुगली निन्दा आदिमें आनंद माननेको मृषानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न १४—चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर– चोरी करने व करानेमें, चोरीकी अनुमोदनामें, चोरीको उत्साह दिलानेमें, चोरीका माल रखने खरीदनेमें आनन्द माननेको चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न १५– विषयसंरक्षणानन्द रौद्रध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पञ्चइन्द्रियोंके विषयसाधनोंके संरक्षणमें, परिग्रहके उपार्जन व रक्षणमें आनन्द माननेको विषयसंरक्षणानन्द रौद्रध्यान कहते हैं।

प्रश्न १६—धर्म्यध्यान ४ कौन-कौन हैं ?

उत्तर– आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचयमें चार धर्म्यध्यान हैं।

प्रश्न १७—आज्ञाविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिनेन्द्रदेव अन्यथावादि नहीं होते, इस प्रतीतिके कारण जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाके अनुसार सूक्ष्म तत्त्वोंका निश्चय करना आज्ञाविचय धर्म्यध्यान है।

प्रश्न १८—अपायविचय धर्म्यध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रयकी भावनाके द्वारा हमारे व अन्य भव्यात्माओंके रागादि भावका कब विनाश होगा आदि प्रकारसे कर्मोंके अपायका और मुक्तिके उपायका चिन्तवन करना सो अपायविचय धर्म्यध्यान है।

प्रश्न १९—विपाकविचय धर्म्यध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर– यद्यपि यह आत्मा स्वभावसे अविकार सहज चैतन्यस्वभावमय है तथापि पुण्यकर्मके उदयसे सुखका व पापकर्मके उदयसे दुःखका अनुभव करता है इत्यादि प्रकारसे कर्मविपाकका चिन्तवन करना सो विपाकविचय धर्म्यध्यान है।

प्रश्न २०– संस्थानविचय धर्म्यध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर– लोककी रचनाओंका व वहाँ सर्वत्र प्रदेशोंमें जन्म-मरण करने आदिका चिंतवन करनेको संस्थानविचय धर्म्यध्यान कहते हैं।

प्रश्न २१—शुक्लध्यान चार कौन-कौन हैं ?

उत्तर—पृथक्त्ववीतर्कविचार, एकत्ववितर्कअवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवृत्ति, ये चार शुक्लध्यान हैं।

प्रश्न २२– पृथक्त्ववीतर्कविचार शुक्लध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर-- पृथक्त्वका अर्थ है द्रव्य, गुण और पर्यायकी भिन्नता, वितर्कका अर्थ है निज शुद्ध आत्माको अनुभवरूप भावश्रुत अथवा भावश्रुतका वाचक अन्तर्जल्परूप वचन, वीचारका अर्थ है किसी अर्थसे अर्थान्तरमें, किसी वचनसे वचनान्तरमें, किसी योगसे योगान्तरमें परिणमना। उक्त प्रकारसे बिना चाहे अपने आप परिवर्तनसहित परिणमन होता रहे, ऐसे विराग शुक्लध्यानको पृथक्त्ववीतर्कविचार शुक्लध्यान कहते हैं।

प्रश्न २३– एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान किसे कहते हैं ?

निज शुद्ध द्रव्यमें, निजके निरुपाधिगुणमें व निराकुल स्वसंवेदन पर्यायमें जिस एक

तत्त्वमें उपयुक्त हुआ उसहीमें स्वसंवेदन रूप भावश्रुतके द्वारा स्थिर होना, उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होना ऐसे ध्यानको एकत्ववीतर्क अविचार शुक्लध्यान कहते हैं। इस शुक्लध्यानकी समाप्ति होते ही केवलज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है।

प्रश्न २४– सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर– जहाँ केवल सूक्ष्मकाययोग रहे और जिसका कभी प्रतिपात याने पतन न हो उस परिणमनको सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान कहते हैं। यह ध्यान १३ वें गुणस्थानके अन्तमें होता है।

प्रश्न २५— व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर—जहाँ पर समस्त क्रिया (योग) का अभाव हो चुका हो और पुनः कभी योग आ ही न सके, ऐसे परिणमनको व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान कहते हैं। यह ध्यान १४ वें गुणस्थानमें होता है।

प्रश्न २६—सयोगकेवली व अयोगकेवली गुणस्थानमें तो मनोबल है ही नहीं, फिर वहाँ ध्यान कैसे बन सकता है?

उत्तर—सयोगकेवली व अयोगकेवली गुणस्थानमें केवलज्ञान होनेसे वहाँ मनोबल नहीं है, अतः निश्चयसे तो वहाँ ध्यान होना नहीं घटता तथापि ध्यानका उत्कृष्ट फल कर्मनिर्जरा है और सयोगकेवली एवं अयोगकेवलीमें कर्मनिर्जरा पाई जाती है, अतः उपचारसे इन दोनों गुणस्थानोंमें भी ध्यान माना गया है।

प्रश्न २७—ध्यान कहते किसे हैं?

उत्तर—एक ओर चिन्तवनके रुक जाने याने ठहर जानेको ध्यान कहते हैं। यद्यपि यह ध्यान मन वाले जीवके ही होना चाहिये, किन्तु शुभध्यानका फल कर्मनिर्जरा सयोगकेवली व अयोगकेवलीके पाई जानेसे अन्तिम अन्तिम शुक्लध्यान होते हैं। तथा एकेन्द्रियसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक भी अशुभध्यानका फल कर्मास्रव पाया जाने से ४ आर्तध्यान व ४ रौद्रध्यान होते हैं।

प्रश्न २८—उक्त १६ ध्यानोंमें कौनसे ध्यान संसारके कारण हैं और कौनसे ध्यान मोक्षके कारण हैं?

उत्तर—चार आर्तध्यान व चार रौद्रध्यान तो संसारके कारण हैं और चार धर्मध्यान यद्यपि मुख्यतासे पुण्यबन्धनके कारण हैं तथापि परम्परया मुक्तिके कारण हैं। चार शुक्लध्यानमें अन्तिम तीन शुक्लध्यान तो साक्षात् मुक्तिके कारण हैं और पृथक्त्ववितर्कवीचार भी साक्षात् मुक्तिका कारण है, परन्तु चारित्रमोहके उपशमक साधुवोंके चारित्रमोहके उपशम के कारण इस ध्यानके उत्पन्न होनेसे चारित्रमोहका उदय अवश्यम्भावी है और अतएव यह

ध्यान प्रतिपाती हो जाता है।

प्रश्न २९—उत्तम ध्यानकी प्राप्तिके लिये क्या कर्तव्य होना चाहिये ?

उत्तर—देखे, सुने व अनुभव किये हुये समस्त विषयोंके विकल्पोंका त्याग होना चाहिये।

प्रश्न ३०—विकल्पोंके त्याग कर देनेका उपाय क्या है ?

उत्तर—प्रथम तो पदार्थोंका स्वरूप जानना चाहिये पश्चात् जो भेदज्ञान होता है उस भेदज्ञानके द्वारा समस्त परपदार्थोंसे भिन्न निज आत्मतत्त्वकी प्रतीति होनी चाहिये। इस आत्मतत्त्वकी प्रतीतिके बलसे सहज आनन्दका अनुभव होता है। यही निर्विकल्प स्वका अनुभव होनेसे आत्मानुभव है। इस आत्मानुभवके अभिमुख होना विकल्पोंके त्याग कर देनेका अमोघ उपाय है।

अब निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिके लिये आवश्यक कर्तव्यका उपदेश किया जाता है—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्त झाणप्पसिद्धिए ॥४८॥

अन्वय—विचित्तझाणप्पसिद्धिए जइ चित्तं थिरमिच्छह, इट्ठणिट्ठअत्थेसु मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह।

अर्थ—निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिके लिये यदि चित्तको स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें न तो मोह करो, न राग करो और न द्वेष करो।

प्रश्न १—विचित्तका अर्थ निर्विकल्प कैसे किया ?

उत्तर—चित्तका अर्थ है चित्तमें होने वाले समस्त शुभ अथवा अशुभ विकल्प और वि उपसर्गका अर्थ है विगत याने नष्ट हो गया है। अब इस अव्ययीभाव समासमें यह अर्थ ध्वनित हुआ कि विगतं चित्तं यस्मिन् = जिस परिणाममें विकल्प नष्ट हो चुका है वह ध्यान। इस प्रकार विचित्तका अर्थ निर्विकल्प हुआ।

प्रश्न २—निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिके लिये चित्तको स्थिर करनेकी इच्छा क्यों प्रदर्शित की ?

उत्तर—चित्तकी स्थिरता बिना उत्तम ध्यानकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि विकल्पोंकी उत्पत्ति चित्तसे होती है। जब चित्त अस्थिर होता है, चित्तका परिवर्तन होता रहता है तब विकल्पोंकी भरमार होती है। अतः निर्विकल्प ध्यानकी प्रसिद्धिके लिये चित्तकी स्थिरता परमावश्यक है।

प्रश्न ३—चित्त स्वयं विकल्पका मूल है तब चित्तकी स्थिरतामें भी नाना नहीं तो कोई एक विकल्प तो रहना ही चाहिये ?

उत्तर— यद्यपि यह बात ठीक है कि चित्तकी स्थिरताके समय एक विकल्प रहता है तथापि ऐसी चित्तकी स्थिरता होनेपर जहाँ कि एक ही ओर वृद्धि हानि आदि परिवर्तनसे रहित विकल्प हो, अन्तमें उस विकल्पका भी अभाव हो जाता है।

प्रश्न ४— वृद्धि हानि रहित एक ही विकल्पके होनेपर पश्चात् विकल्पके अभावकी संभावना क्यों रहती है ?

उत्तर—विकल्पोंकी संततिका कारण किसी भी एक विकल्पका टिकाव न होना है, अतः उक्त चित्तकी स्थिरतासे विकल्पोंका अभाव हो जाता है।

प्रश्न ५— मोह किसे कहते हैं ?

उत्तर— मोह मूर्च्छाको कहते हैं, जिसमें स्व और परकी भिन्नताकी और स्वके स्वरूपकी प्रतीति नहीं रहती है। मोहमें परिणत आत्मा इष्ट पदार्थोंको तो अपनाता है और अनिष्ट पदार्थोंमें विचिकित्सा करता है।

प्रश्न ६— मोह होनेका कारण क्या है ?

उत्तर—मोह उत्पन्न होनेमें दर्शनमोहनीयकर्मका उदय निमित्त कारण है और मोहरूप परिणमनेको उद्यत स्वयं जीव उपादान कारण है।

प्रश्न ७— मोह परिणाममें निर्विकल्प ध्यान क्यों नहीं होता ?

उत्तर—मोहमें जब स्वको, स्वके सहजस्वरूपकी खबर ही नहीं है तब परपदार्थ सम्बन्धी उपयोगसे कोई कैसे निवृत्त हो ? मोहमें परपदार्थकी ओर ही उपयोग रहता है और परपदार्थके उपयोगमें विकल्पोंकी बहुलता ही है, अतः वहाँ निर्विकल्प ध्यान कभी संभव नहीं हो सकता।

प्रश्न ८—राग किसे कहते हैं ?

उत्तर— इन्द्रिय और मनको सुहावना लगनेको राग कहते हैं।

प्रश्न ९— रागमें निर्विकल्प ध्यान क्यों नहीं होता है ?

उत्तर— राग स्वयं विकल्प है, रागमें भी परपदार्थकी ओर उपयोग है, अतः रागमें निर्विकल्प ध्यान नहीं हो सकता।

प्रश्न १०— मोह और रागमें क्या अन्तर है ?

उत्तर— मोह तो अपने बेसुधपनको कहते हैं और राग इन्द्रिय व मनको सुहावना लगनेको कहते हैं। मोहके होते सन्ते राग होता ही है, किन्तु राग हो और मोह न हो, ऐसी भी स्थिति रागमें हो सकती है।

प्रश्न ११— द्वेष किसे कहते हैं ?

उत्तर— इन्द्रिय और मनको असुहावना लगनेको द्वेष कहते हैं।

प्रश्न १२— द्वेषमें निर्विकल्प ध्यान क्यों नहीं होता है ?

उत्तर—द्वेषका विषय परपदार्थ ही होता है। परपदार्थमें द्वेषबुद्धि रखनेसे तो विकल्पोंकी ज्वालावोंका ही उदय है, वहां निर्विकल्प ध्यानकी कभी भी संभावना नहीं है।

प्रश्न १३— द्वेष तो मोहसे होता है, फिर मोहसे पृथक् द्वेषको क्यों कहा ?

उत्तर—मोहके होते सन्ते तो द्वेष होता ही है, किन्तु ऐसी भी स्थिति होती है कि द्वेष तो हो और मोह न हो, सो द्वेष और मोहमें लाक्षणिक भेद है, अतः मोह और द्वेष दोनोंको कहना पड़ा है।

प्रश्न १४— मोह, राग और द्वेष न होने देनेका साक्षात् उपाय क्या है ?

उत्तर—आत्मीय सहज आनन्दका संवेदन मोह, राग और द्वेषके न होने देनेका साक्षात् उपाय है।

प्रश्न १५—सहज आनन्दके संवेदनका उपाय क्या है ?

उत्तर—निरपेक्ष, अखण्ड, निर्विकल्प चैतन्यस्वरूप निज परमात्मसत्यकी अभेदभावना सहज आनन्दके संवेदनका उपाय है।

अब निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिसे पहिले होने वाले उद्यमोंमेंसे एक उद्यमभूत पदस्थ-ध्यानका वर्णन करते हैं--

पणतीस सोल छप्पण चउदुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरुवएसेण ॥४९॥

अन्वय—परमेट्ठिवाचयाणं पणतीस सोल छप्पण चउ दुगमेगं च जवह, झाएह, गुरुवएसेण अण्णं च जवह झाएह।

अर्थ— परमेष्ठियोंके वाचक पैंतीस, सोलह, छः, पाँच, चार, दो और एक अक्षरोंके मन्त्रोंको जपो और ध्यान करो तथा गुरुके उपदेशके अनुसार अन्य भी मन्त्रोंको जपो और ध्यान करो।

प्रश्न १— परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर—परमेष्ठी द्रव्योंका स्वरूप आगे गाथाओंमें कहेंगे, अतः यहाँ उसका विस्तार न करके केवल शब्दनिष्पत्ति द्वारा ही दिखाते हैं— परम माने हैं उत्कृष्ट, जो परमपदमें स्थित हों उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न २— परमेष्ठी कितने होते हैं ?

उत्तर— जितने परमपद हैं उतने ही उनमें स्थित रहने वाले परमेष्ठी कहलाते हैं। ये परमपद ५ हैं— अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इस प्रकार परमेष्ठी भी ५ हैं— अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

प्रश्न ३– इनके वाचक ३५ अक्षरों वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर– "णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" यह ३५ अक्षरों वाला मन्त्र है। इसका नाम णमोकारमन्त्र व महामन्त्र भी है।

प्रश्न ४– इस महामन्त्रके पदोंका अर्थ क्या है ?

उत्तर– लोकमें सब अरहंतोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और साधुवोंको नमस्कार हो।

प्रश्न ५– सोलह अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर– "अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः" यह सोलह अक्षर वाला मन्त्र है। इसमें भी पञ्चपरमेष्ठियोंके नाम आये हैं।

प्रश्न ६—छः अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर—"अरिहंत सिद्ध" यह छः अक्षर वाला मन्त्र है। इसमें दो परमेष्ठियोंके नाम हैं। शेष ३ परमेष्ठियोंके भी गुणोंका पूर्ण विकास इन्हीं पदोंमें होता है, अतः मुख्यताकी दृष्टिसे यह उक्त दो परमेष्ठियोंके नामका मन्त्र कहा है।

प्रश्न ७– पांच अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर—"असिआ उसा" यह पाँच अक्षर वाला मन्त्र है। इसमें पाँचों परमेष्ठियोंके नामके पहिले-पहिले अक्षर हैं, अतः यह मन्त्र पञ्चपरमेष्ठियोंका वाचक है।

प्रश्न ८-- चार अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर—"अरिहंत" यह चार अक्षर वाला मन्त्र है। इसमें अरहंत परमेष्ठीका नाम है।

प्रश्न ९– दो अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर– "सिद्ध" यह दो अक्षर वाला मन्त्र है। इसमें सिद्ध परमेष्ठीका नाम ह।

प्रश्न १०-- एक अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर–"ॐ" यह एक अक्षर वाला मंत्र है। इसमें पाँचों परमेष्ठियोंके नाम गर्भित हैं।

प्रश्न ११-- "ॐ" में पाँचों परमेष्ठियोंके नाम किस प्रकार गर्भित हो जाते हैं ?

उत्तर-- "ॐ" में पाँचों परमेष्ठियोंके नामके प्रथम अक्षर हैं। जैसे अरिहंतका "अ", सिद्धका अपर नाम है अशरीर, सो अशरीरका 'अ', आचार्यका "आ' उपाध्यायका 'उ' और साधुका अपर नाम है मुनि, सो मुनिका 'म्'; इस प्रकार अ+अ+आ+उ+म्, इन सब अक्षरोंकी सन्धि कर देनेसे "ओं" यह शब्द बना। "ओं" की आकृति "ॐ" इस प्रकार भी लिखी जाती है।

प्रश्न १२—उक्त पांचो अक्षरोंकी सन्धि किस प्रकार होती है ?

उत्तर—अ + अ इन दो अक्षरोंमें 'अकः सवर्णे दीर्घः' इस सूत्रसे दीर्घ एकादेश हो जाता है सो आ बना। पश्चात् आ + आ इन दो अक्षरोंमें 'अकः सवर्णे दीर्घः' इस सूत्रसे दीर्घ एकादेश हुआ सो आ बना। आ + उ इन दो अक्षरोंमें "आद्गुणः इस सूत्रसे गुण एकादेश हो गया, सो ओ बना। ओ + म्—इन दो अक्षरोंमें "विरामे वा" इस सूत्रसे म् का अनुस्वार हो गया, सो ओं बन गया।

प्रश्न १३—क्या इन अक्षरों वाले ये ही मन्त्र हैं ?

उत्तर—इन अक्षरों वाले अन्य भी मन्त्र हैं, जैसे कि सिद्धं नमः, सिद्धाय नमः, ॐ नमः सिद्धं, ॐ नमः सिद्धेभ्यः आदि।

प्रश्न १४—उक्त मन्त्रोंके अतिरिक्त क्या अन्य मन्त्र भी हैं ?

उत्तर—सिद्ध चक्र आदि अनेक मंत्र हैं, जो ऋषियों द्वारा यथावसर शास्त्रोंमें बताये गये हैं।

प्रश्न १५—इन मन्त्रोंका जाप किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—मन्त्रोंका जाप दो प्रकारसे होता है—(१) अन्तर्जल्प, (२) बहिर्जल्प। अन्तर्जल्प तो पदोंका अर्थ जानकर उन परमेष्ठियोंके गुणस्मरण रूप अन्तरङ्गमें अव्यक्त शब्दके आविर्भावको कहते हैं। बहिर्जल्प उसी तत्त्वको व्यक्त वचनोंसे उच्चारण करने को कहते हैं।

प्रश्न १६—इन मन्त्रोंका ध्यान किस प्रकार करना चाहिये ?

उत्तर—पञ्चपरमेष्ठियोंका जो स्वरूप है, गुणविकास है उसकी महिमाका मौनपूर्वक मन वचन कायकी गुप्ति सहित ध्यान करना चाहिये और जिस शक्तिके वे विकास हैं उस शक्तिको मुख्यतया ध्येय करके उस विकासको स्वभावमें अन्तर्निहित करके निर्विकल्पताके अभिमुख होना चाहिये।

प्रश्न १७—ध्यानका फल क्या है ?

उत्तर—ध्यानका उत्कृष्ट फल कर्मोंकी निर्जरा और नवीन कर्मोंका संवर है तथा गौण फल जितने अंशमें जैसा राग भाव वर्त रहा है उस प्रकारका पुण्य कर्मका बन्ध है।

अब ध्यानमन्त्रोंके विषयभूत पञ्चपरमेष्ठियोंमें से प्रथम परमेष्ठी श्री अरहंत भगवान का स्वरूप कहते हैं—

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमइओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

अन्वय— णट्ठचदुघाइकम्मो दंसण सुहणाणवीरियमइओ सुहदेहत्थो सुद्धो अप्पा अरिहो, विचिंतिज्जो।

अर्थ—नष्ट हो गये हैं चार घातिया कर्म जिसके, जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त

सुख व अनन्तवीर्यमय है शुभ परम औदारिक शरीरमें स्थित है तथा जो शुद्ध है अर्थात् विशेष है वह आत्मा अरहन्त है और वह ध्यान करने योग्य है।

प्रश्न १– कर्म सत् है अथवा असत् ?

उत्तर-- कर्म सत् है, अभावरूप नहीं है।

प्रश्न २– कर्म सत् है तो उसका नाश कैसे हो सकता है, क्योंकि सत्का कभी नाश नहीं होता ?

उत्तर—कर्म एक पर्याय है, यह कर्म पर्याय जिस पुद्गलद्रव्यकी है वह पुद्गलद्रव्य कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। बात यह है कि जिस पुद्गलस्कन्धमें कर्म कर्मरूप परिणमनेकी योग्यता है उस स्कन्धकी कार्माणवर्गणाका यह नाम है। इन कर्मवर्गणाओंकी कर्मपर्याय होती है और उन्हीं का कर्म पर्याय न रहकर अकर्मरूप जाना भी होता है। अरहन्त भगवानके पूर्व में चार घातिया कर्म रूप परिणतवर्गणायें कर्म पर्यायको छोड़कर अकर्मपर्यायरूप हो जाते हैं, वे फिर भविष्यमें कभी भी कर्म पर्यायरूप हो ही नहीं सकते, यही नाशका अभिप्राय है।

प्रश्न ३—घातिया कर्मोंके नाशका उपाय क्या है ?

उत्तर-- शुद्धोपयोगरूप ध्यानके प्रतापसे घातियाकर्मका नाश होता है। यह शुद्धोपयोग निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय सम्यक्चारित्र रूप है।

प्रश्न ४-- घातिया कर्मोंका नाश क्या एक साथ होता है या क्रमसे ?

उत्तर—घातियाकर्मोंमें पहिले तो मोहनीय कर्मका क्षय होता है तदन्तर अर्थात् क्षीणमोह होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका क्षय होता है।

प्रश्न ५-- घातिया कर्मोंके नाश होनेपर आत्माकी क्या अवस्था होती है ?

उत्तर—घातिया कर्मोंके नाश होनेपर आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनंद और अनन्तवीर्यमय हो जाता हैं। इन पूर्ण गुणविकासोंका निमित्त कारण घातिया कर्मोंका नाश है।

प्रश्न ६– ज्ञानावरणकर्मके नाशसे किस गुणका पूर्ण विकास होता है ?

उत्तर-- ज्ञानावरणकर्मके क्षयसे ज्ञानगुणका पूर्ण विकास होता है। यह विकास अनंत ज्ञानरूप है।

प्रश्न ७-- अनन्तज्ञानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर-- ज्ञानगुणका वह पूर्ण विकास अनन्तज्ञान है, जिसमें लोक अलोकवर्ती सर्वद्रव्य गुणोंका ज्ञान हो जाता है तथा भूत वर्तमान भविष्यकालीन सर्वद्रव्योंकी सर्वपर्यायोंका ज्ञान हो जाता है।

प्रश्न ८-- अनन्तदर्शनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर-- अनन्तज्ञानपरिणत निज आत्माका प्रतिभास होते रहना अनन्तदर्शनका स्वरूप है।

प्रश्न ९—अनन्त आनन्दका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जहाँ रंच भी आकुलता नहीं रही है और ऐसी परमनिराकुलताका अनन्त-ज्ञान द्वारा अनुभव हो रहा है, ऐसा सहज शुद्ध परमआनन्द अनन्तआनन्द कहलाता है।

प्रश्न १०—अनन्तवीर्यका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—समस्त गुणोंके अनन्त विकासरूप होनेकी प्रकट हुई शक्तिको अनन्तवीर्य कहते हैं।

प्रश्न ११—उक्त अनन्तचतुष्टय प्रकट होनेपर देहकी क्या अवस्था हो जाती है ?

उत्तर—आत्माके अनन्तचतुष्टय प्रकट होनेपर देह परमऔदारिक हो जाता है।

प्रश्न १२—परमात्माका शरीरसे क्या सम्बन्ध है जिसके कारण परमात्माके देहका वर्णन किया जा रहा है ?

उत्तर—निश्चयनयसे तो परमात्मा ही क्या आत्मा मात्रके शरीर नहीं है, व्यवहार से ही शरीर माना गया है। सो व्यवहारसे कहा गया वह शरीर जब तक रहता है उसीसे पहिले यदि आत्मा निष्कलङ्क हो जाता है तो शरीरकी क्या अवस्था हो जाती है, ऐसा देहकी अवस्थाके निमित्तभूत आत्मा प्रताप बताया गया है।

प्रश्न १३– परमौदारिक शरीर कैसा होता है ?

उत्तर– अरहन्त होनेसे पहिले वह शरीर सात धातु और अनेक उपधातुओं करि सहित था, वही शरीर घातियाकर्मोंका क्षय हो जानेसे सप्तधातु व उपधातुवोंसे रहित स्फटिक-मणिके समान निर्मल, हजारों सूर्यकी प्रभा तुल्य प्रभाव वाला, किन्तु परको शान्तिका कारण हो जाता है। यही परमौदारिक शरीर कहलाता है।

प्रश्न १४—निष्कलङ्कताका बर्णन "णट्ठचदुघाइकम्मो" पदसे हो गया, फिर "सुद्धो" शब्द क्यों कहा गया ?

उत्तर– "सुद्धो" शब्दसे अन्य समस्त दोषोंका अभाव बताया गया है।

प्रश्न १५–वे अन्य दोष कितने और कौन-कौन हैं जिनका अभाव अरहन्त प्रभुमें है।

उत्तर– ये दोष १८ हैं—(१) जन्म, (२) जरा, (३) मरण, (४) क्षुधा, (५) तृषा, (६) विस्मय, (७) अरति, (८) खेद, (९) रोग, (१०) शोक, (११) मद, (१२) मोह, (१३) भय, (१४) निद्रा, (१५) चिन्ता, (१६) स्वेद पसीना, (१७) राग, (१८) द्वेष।

ये १८ दोष अरहंतप्रभुमें नहीं पाये जाते हैं। इनमेंसे कई दोष तो ऐसे हैं जो अरहंत होनेसे पहिले भी नहीं रहते और कुछ दोष ऐसे हैं जो अरहन्त होते ही नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न १६– अरहन्त शब्दके वाचक शब्द कौन-कौन हैं ?

उत्तर-- अरहंत प्रभुके वाचक कुछ शब्द ये हैं– अरहन्त, अरुहंत, अरिहन्त, अर्हंत्, जिन, सकलपरमात्मा ये कुछ शब्द अरहन्तके वाचक हैं।

प्रश्न १७– अरहन्त शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर-- अरहन्त-- अ = अरि अर्थात् मोहनीयकर्म अथवा मोह, र = रत याने ज्ञानावरण और दर्शनावरण अथवा अज्ञान, तथा र = रहस याने अन्तराय; इस प्रकार इन चार घातिया कर्मोंको हनने वाले अथवा मिथ्यात्व अज्ञान अविरतिके नष्ट करने वाले परमात्माको अरहंत कहते हैं।

प्रश्न १८– अरहंत शब्दका अर्थ क्या है ?

उत्तर-- जो दोष और कलङ्क थे, वे नष्ट हो गये, जिनमें पुनः कभी भी न रहे, न उगें याने उत्पन्न न हों उन परमात्माको अरहन्त कहते हैं।

प्रश्न १९-- अरिहन्त शब्दसे क्या अर्थ निकलता है ?

उत्तर-- अरि = शत्रु याने चारों घातिया कर्म, उन्हें नष्ट करने वाले परम-आत्मा अरिहन्त कहलाते हैं।

प्रश्न २०-- अर्हंत् शब्दसे क्या भाव ध्वनित होता है ?

उत्तर-- जो आत्मा देव, देवेन्द्र, मनुष्य, मनुष्येन्द्र आदिके द्वारा पूजाको प्राप्त होते हैं, योग्य होते हैं उन्हें अर्हंत् कहते हैं। यह शब्द "अर्ह पूजायां" धातुसे बना है और वे साक्षात् पूजाको प्राप्त होते हैं।

प्रश्न २१– 'जिन' शब्दसे क्या भाव ध्वनित होता है ?

उत्तर-- रागादि शत्रून् अज्ञानाद्यावरणानि जयतीति जिनः, जो रागादि शत्रुवोंको जीते व अज्ञानादि आवरणोंको हटा लें उस परम आत्माको जिन कहते हैं।

प्रश्न २२-- सकलपरमात्मा शब्दका क्या है ?

उत्तर-- कलका अर्थ है शरीर, जो अभी शरीरसहित है, किन्तु परम अर्थात् पर = उत्कृष्ट मा = ज्ञानलक्ष्मी करि युक्त आत्मा हैं उन्हें सकलपरमात्मा कहते हैं।

प्रश्न २३– उत्कृष्ट ज्ञानलक्ष्मीका क्या अर्थ है ?

उत्तर– सम्पूर्ण ज्ञान याने सर्वज्ञता जिसमें लोकालोकवर्ती व त्रिकालवर्ती सर्वपदार्थ ज्ञात होते रहते हैं, यह उत्कृष्ट ज्ञानलक्ष्मीका अर्थ है।

प्रश्न २४– कोई भी आत्मा सर्वज्ञ नहीं पाया जाता है, फिर सर्वज्ञता कैसी ?

उत्तर– सर्वज्ञ क्या इस देशमें व इस कालमें नहीं पाया जाता या सर्व देशमें व सर्वकालमें नहीं पाया जाता—इस बातका तो विचार करो।

प्रश्न २५-- सर्वज्ञ इस देशमें क्या नहीं पाया जाता ?

उत्तर– यदि सर्वज्ञ इस देशमें व इस कालमें नहीं पाया जाता तो यह बात तो ठीक ही है, यहाँ कोई सर्वज्ञ आजकल नहीं है। परन्तु यहाँ आजकल कोई सर्वज्ञ नहीं है और न होता है, इससे सर्वज्ञका बिल्कुल निषेध नहीं कर सकते।

प्रश्न २६-- सर्वज्ञ किसी भी देशमें व किसी भी कालमें नहीं होता।

उत्तर– यदि ऐसा तुम जान चुके हो तो लो तुम ही सर्वज्ञ हो गये, क्योंकि जब तुमने सर्वदेश व सर्वकालकी बातें जानी होंगी तभी ऐसा कह सकते हो कि किसी भी देशमें व किसी भी कालमें सर्वज्ञ नहीं होता।

प्रश्न २७– सर्वज्ञकी सिद्धिमें कोई युक्ति भी है क्या ?

उत्तर—सर्वज्ञकी सिद्धि हेतुसे भी सिद्ध है—कोई सर्वज्ञ अवश्य होता है, क्योंकि सम्यग्ज्ञानके बाधक राग और अज्ञानमें कमीवेशी पाई जाती है। जब यहाँ ही देखा जा रहा है कि अनेक महापुरुषोंमें राग और अज्ञान कम देखा जाता है तो कोई ऐसा भी आत्मा होता है जिसमें राग और अज्ञान बिल्कुल नहीं रहते हैं। वही सर्वज्ञदेव है।

एक युक्ति यह भी है कि सूक्ष्म, अन्तरित आदि सर्व पदार्थ किसी न किसीके प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि ये अनुमेय हैं। जो जो अनुमेय होते हैं वे किसी न किसीके प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे—पर्वतादिमें छिपी हुई अग्नि. इत्यादि अनेक युक्तियोंसे सर्वज्ञपना सिद्ध है।

प्रश्न २८—सर्वज्ञताकी सिद्धिमें कोई अनुभवगर्भित युक्ति है ?

उत्तर– ज्ञानका स्वभाव जानना है, उसके प्रतिबन्धक कर्मके बन्धन जब तक रहते हैं तब तक ज्ञानके कार्यमें कमी याने अपूर्णता रहती है, किन्तु कर्मका प्रतिबन्ध समाप्त होनेपर ज्ञान थोड़े ही पदार्थोंको इसका कोई कारण नहीं रहता, अतः निष्कलङ्क ज्ञान सर्वका ज्ञाता होता है।

प्रश्न २९—ज्ञान तो इन्द्रिय द्वारा जानता है सो यदि इन्द्रिय हैं तो अपना-अपना विषय ही सीमा लेकर जाननेमें आवेगा, यदि इन्द्रिय नहीं हैं तो ज्ञान ही नहीं होगा ?

उत्तर—ज्ञान इन्द्रिय द्वारा नहीं जानता है, किन्तु ज्ञानके आवरणके होनेपर ज्ञानकी ऐसी अशक्ति हो जाती है कि इन्द्रियको निमित्त पाकर जानता है। परन्तु आवरणके नष्ट होनेपर ज्ञान किसीकी निमित्तरूप भी सहायताके बिना अपने स्वभाव सामर्थ्यसे जानता है और इस जाननेकी सीमा नहीं होती। ऐसी शुद्ध अवस्थामें ज्ञान सर्व सद्भूत अर्थोंको जानता है।

प्रश्न ३०– उक्त रहस्यको दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करना चाहिये।

उत्तर– जैसे कोई पुरुष किसी कमरेमें है, जहाँ कि ६ खिड़कियाँ हैं, तो वह मनुष्य

भींतके आवरण होनेपर खिड़कियोंके द्वारसे ही देख सकता है, किन्तु यदि भींतका आवरण समाप्त हो जाय तो वह पुरुष सर्व ओरसे देख सकता है। यह एक कोणका स्पष्टीकरणके लिये दृष्टान्त है। इसी प्रकार कर्म नोकर्मका आवरण रहनेपर आत्मा इन्द्रियद्वारसे जानता है, सो जैसे खिड़की द्वारसे भी पुरुष जाने तो वहाँ भी पुरुष अपने बलसे ही देखता है वैसे ही इन्द्रिय द्वारसे जाने तो वहाँ भी आत्मा ही ज्ञानबलके द्वारा जानता है, परन्तु ज्ञानके आवरणोंके समाप्त होनेपर आत्मा सर्व ओरसे समस्त द्रव्य गुण पर्यायको जानता है।

प्रश्न ३१– जैसे भींतका आवरण समाप्त होनेपर भी पुरुष सीमा लेकर ही देखता है वैसे ज्ञानका आवरण समाप्त होनेपर भी आत्मा सीमा लेकर क्यों नहीं जानता है ?

उत्तर– भींतका आश्रयभूत आवरण समाप्त होनेपर भी उस पुरुषके वास्तविक आवरण कर्म नोकर्मका तो लगा हुआ ही है। अतः वह पुरुष सीमा लेकर ही जानता है। परन्तु जिस आत्माके कर्म नोकर्म इन्द्रियके आवरण समाप्त हो गये हैं वह सीमा लेकर जाने, इसका कोई कारण नहीं है। यह निरावरण ज्ञान तो अनन्त ही होता है।

प्रश्न ३२– अनन्तदर्शन परमात्माके न हो तो क्या हानि है ?

उत्तर– दर्शनके बिना ज्ञान अनिश्चित अवस्थामें रहेगा और ऐसे ज्ञानकी प्रमाणता न रहेगी, अतः दर्शन होना आवश्यक है। अनन्तज्ञानके साथ अनन्तदर्शन ही होता है, और पूर्ण ज्ञानके उपयोगके साथ ही दर्शनोपयोग होता है।

प्रश्न ३३—सुख दुःख ही तो संसार है तब सुख दुःखका अभाव मोक्ष है, तब परमात्मामें सुख (आनन्द) कैसे रह सकता है ?

उत्तर– सुख दुःखका अभाव मोक्ष है यह सही है, किन्तु सुखका अर्थ यहाँ इन्द्रियजन्य सुखसे है, सो इन्द्रियजन्य सुखका अभाव मोक्षमें है। जैसे कि इन्द्रियजन्य ज्ञानका अभाव मोक्षमें है। किन्तु आनन्द गुण तो आत्माका शाश्वत गुण है, उसकी परिणति तो रहेगी। वह परिणति अनन्त आनन्दस्वरूप है। यह आनन्द अतीन्द्रिय है, आनन्द गुण है तभी तो संसार-अवस्थामें सुख दुःखकी सिद्धि है अन्यथा बतावो सुख दुःख किस गुणकी पर्याय है ? स्वाभाविक आनन्द, इन्द्रियजन्य सुख व दुःख ये सभी आनन्द गुणकी पर्यायें हैं। भगवानमें आनन्द गुणकी अनन्त आनन्दस्वरूप परिणति चलती ही रहती है।

प्रश्न ३४– अनन्तशक्तिका परमात्मामें और क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द आदि अनन्तपरिणति करनेके लिये अनन्तशक्ति चाहिये ही, सो परमात्मामें अनन्तशक्ति होती ही है।

प्रश्न ३५– अरहन्त प्रभु क्या केवल पदस्थ ध्यानमें ही ध्येयभूत होते हैं ?

उत्तर—पिण्डस्थ और रूपस्थ ध्यानमें भी अरहन्त प्रभु ध्येयभूत होते हैं।

प्रश्न ३६— पिण्डस्थ ध्यानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर— समाधिसाधक व धारणादि पद्धतिसे किसी रूप व प्रकारमें चैतन्य पिण्डके ध्यान करनेको पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं। इसमें पार्थिवी, मारुती आदि धारणावोंकी विधिसे बढ़कर अपने आपमें उच्च साधक अरहन्त जैसे परमात्मतत्त्वकी प्रतिष्ठा की जाती है।

प्रश्न ३७—रूपस्थ ध्यानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर— अरहन्त भगवानके आभ्यन्तर बाह्य विभूति सहित स्वरूपके चिन्तवन करनेको रूपस्थ ध्यान कहते हैं। इस ध्यानमें समवशरण विराजमान अतिशय सम्पन्न अरहंत प्रभु ध्येय होते हैं।

प्रश्न ३८—रूपस्थ ध्यानमें अरहंत प्रभुका किस प्रकारसे ध्यान करना चाहिये ?

उत्तर—रूपस्थ ध्यानमें साक्षात् समवशरणमें विराजमान, बारह सभावोंसे वेष्टित, केवलज्ञानके अतिशयोंका साक्षात्सा करते हुए अनन्त चतुष्टयादि अन्तरङ्गविभूतिमें ध्यान ले जावें।

प्रश्न ३९— अरहंत प्रभुके कौनसा गुणस्थान होता है ?

उत्तर— अरहंत प्रभुके १३ वें याने सयोगकेवली व १४ वां याने अयोगकेवली—ये २ गुणस्थान होते हैं। केवलज्ञान होने पर और जब तक उनके शरीरका संयोग रहता है तब तक वे परम-आत्मा अरहंत कहलाते हैं। उसमें भी जब तक योग (प्रदेशोंका हलन-चलन जिससे कि विहार दिव्यध्वनि भी हो जाती है) रहता है वे सयोगकेवली कहलाते हैं और जब योग नष्ट हो जाता है तब अयोगकेवली कहलाते हैं।

प्रश्न ४०—अयोगकेवली कब तक रहते हैं ?

उत्तर— एक अरहंत प्रभु एक सेकिण्डसे भी कुछ कम काल तक अयोगकेवली रहते हैं। इसके पश्चात् ये सिद्धपरमेष्ठी हो जाते हैं।

अब पदस्थध्यानमें आये हुये सिद्धपरमेष्ठीका स्वरूप कहते हैं—

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

अन्वय— णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा पुरिसायारो अप्प सिद्धा, लोयसिहरत्थो झाएह।

अर्थ— नष्ट हो गये हैं अष्टकर्म और शरीर जिसका, लोक और अलोकके जानने देखने वाला, जिस पुरुष देहसे मोक्ष हुआ है उस पुरुषके आकार वाला आत्मा सिद्धपरमेष्ठी कहलाता है, ऐसे लोकके शिखरमें स्थित सिद्धपरमेष्ठीको ध्यावो।

प्रश्न १—कर्मके किस रूप परिणमन हो जानेका नाम नाश है ?

उत्तर—कार्माणवर्गणावोंका इस कर्मरूप अवस्थासे चिगकर अकर्मत्व अवस्थामें आ जानेका नाम कर्मका नाश है। आगे निष्कर्मता होनेके बाद कर्मकी उत्पत्ति ही न होना भी यहाँ मुख्य रूपसे कर्मका नाश समझना चाहिये।

प्रश्न २—देहके किस रूप परिणमन हो जानेका नाम देहका नाश है ?

उत्तर—यहाँ उस देहके छोड़नेके बाद अन्य कोई देहका सम्बन्धी ही न होने व सदाके लिये देहका सम्बन्ध न हो सकनेका नाम देहका नाश कहलाता है। वैसे तो उस देहका भी छोटे-छोटे सूक्ष्म स्कन्ध हो-होकर कपूरकी तरह बिखरना ही हो जाता है। केवल नख और केश जिनके कि साथ आत्मप्रदेशोंका संयोग न था, पड़े रह जाते हैं। इन नख केशोंको इन्द्रादि देव क्षीरसागरमें सिरा देते हैं।

प्रश्न ३—नख और केश ढाई द्वीपसे बाहर कैसे चले जाते हैं ?

उत्तर—वे नख और केश आत्माके सम्बन्धसे अलग रहनेसे मनुष्यके अङ्ग नहीं कहे जाते हैं, अतः उनके ढाई द्वीपसे बाहर ले जाये जानेमें कोई विरोध नहीं आता।

प्रश्न ४—कर्म और नोकर्मके विनाशका साधन क्या है ?

उत्तर—सर्व विशुद्ध ज्ञानानुभव कर्म और नोकर्मके विनाशका उपाय है।

प्रश्न ५—यह ज्ञानानुभव कैसे उदित होता है ?

उत्तर—इस ज्ञानानुभवमें कुछ भी द्वैत प्रतिभासित नहीं रहता, इसका विषय निरपेक्ष चैतन्यस्वभाव है, यह निर्दोष निर्विकल्प अनुपम सहज आनन्दको प्रकट करता हुआ उदित होता है।

प्रश्न ६—सहज आनन्दके अविनाभावी इस ज्ञानानुभवका सहज उपाय क्या है ?

उत्तर—सर्व विशुद्ध अर्थात् अन्य समस्त पदार्थोंसे भिन्न तथा औपाधिक भावोंसे भिन्न स्वरूप वाले निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनासे यह ज्ञानानुभव और सहज आनन्द प्रकट होता है।

प्रश्न ७—सिद्धप्रभु क्या एक बार (युगपत्) में ही लोक अलोकके ज्ञाता द्रष्टा हैं या क्रमसे ?

उत्तर—सिद्धप्रभु एक ही साथ लोकालोकके ज्ञाता द्रष्टा होते हैं। ज्ञाता तो केवलज्ञान के द्वारा हैं और द्रष्टा केवलदर्शनके द्वारा हैं। अरहंतप्रभु भी इसी प्रकार ज्ञाता द्रष्टा हैं।

प्रश्न ८—केवलज्ञान व केवलदर्शन किस कारणसे उत्पन्न होता है ?

उत्तर—निज निर्मल निरपेक्ष स्वतःसिद्ध सदा अन्तःप्रकाशमान चैतन्यके अनुभवरूप शुद्ध ज्ञानकी भावनाके फलमें केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होता है।

प्रश्न ९—सिद्धपरमेष्ठी पुरुषके आकार क्यों रहते हैं ?

उत्तर– जैसे मूसके भीतर मोम रखकर, मोमके चारों तरफ चांदी रखकर गहना ढालनेके लिये मोम गलाकर फिर तैयार गहना निकाल लिया जाता है तो वहाँ मोमरहित मूस के बीच आकार पूर्व जैसा रह जाता है इसी प्रकार जिस पूर्व पुरुष शरीरमें कर्मबद्ध जीव रहता था, कर्मके गल जानेपर और आत्माके सिद्ध हो जानेपर याने शरीरसे जुदा होकर सर्वथा पूर्ण विकसित हो जानेपर आत्माके प्रदेशोंका आकार वहीं रह जाता है, जो पूर्व शरीरमें था।

प्रश्न १०– क्या सिद्ध आत्माके भी आकार होता है ?

उत्तर– रूपादि गुणों पर्यायोंसे रहित होनेसे आत्मा निराकार है और अतीन्द्रिय अमूर्त चैतन्यरसनिर्भर होनेसे भी निराकार है, किन्तु प्रदेशोंकी अपेक्षा व्यवहारनयसे चरमशरीरके आकार न होनेसे चरमशरीरके बराबर आकार सिद्धोंके रहता है। इसी तरह अन्य संसारी आत्मा भी निश्चयनयसे निराकार हैं तथापि व्यवहारनयसे वर्तमान देहके आकार हैं।

प्रश्न ११—'सिद्ध' शब्दका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– सिद्ध शब्दके निम्नलिखित तात्पर्य हैं—

(१) सितं दग्धं कर्मेन्धनं येन सः सिद्धः, जिसने समस्त कर्मेन्धनको जला दिया है, नष्ट कर दिया है उसे सिद्ध कहते हैं।

(२) सेधति स्म (षधु गतौ) अपमुरावृत्या इति सिद्धः, जो फिर न लौटे, इस प्रकार चला गया अर्थात् निर्वाणपुरीको चला गया उसे सिद्ध कहते हैं।

(३) सेधति (षिधु संराद्धौ) सिद्धयति स्म निष्ठितार्थो भवति स्म इति सिद्धः, जो सर्व सिद्ध कर चुका याने कृतकृत्य हो गया, उसे सिद्ध कहते हैं।

(४) सेधति स्म (षधुञ् शास्त्रे) शास्ता अभवत् इति सिद्ध, जो हितोपदेशक या धर्मानुशासक हुआ था, उसे सिद्ध कहते हैं।

(५) सेधति स्म (षिधूञ् माङ्गल्ये) माङ्गल्यरूपतां अनुभवति स्म इति सिद्ध; जिसने माङ्गल्यत्व रूपको अनुभव किया, उसे सिद्ध कहते हैं।

(६) सिद्ध—जो सदाके लिये सिद्ध हो चुका, अनन्तकाल तक ऐसे ही पूर्ण रहेगा उसे सिद्ध कहते हैं।

(७) सिद्ध—प्रसिद्ध, जो भव्य जीवों द्वारा प्रसिद्ध है उसे सिद्ध कहते हैं, भव्य जीवों द्वारा सिद्धप्रभुके गुण उपलब्ध हैं, अतः यह निर्मल आत्मा सिद्ध कहलाता है।

इत्यादि 'सिद्ध' शब्दके अनेक अर्थ हैं। सब अर्थोंका प्रयोजन एक यही है कि निष्फल निष्कलंक निरञ्जन परमात्मा कारणपरमात्मतत्त्वके पूर्ण अनुरूप विकासको प्राप्त हैं। सिद्धप्रभु समस्त अनुजीवी व प्रतिजीवी गुणोंको पूर्ण सिद्ध कर चुके हैं (ये लोकशिखर हैं)।

प्रश्न १२—सिद्धप्रभु लोकके शिखरपर ही स्थित क्यों रहते हैं ?

उत्तर—जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, सो जब आत्माके कर्मबंधका विनाश हो जाता है तथा सर्वथा असंग, निर्लेप हो जाते हैं तब एक ही समयमें ऋजुगतिसे लोकके अन्त तक जहाँ तक धर्मद्रव्य हैं, पहुंचकर रुक जाते हैं, अतः सिद्धपरमेष्ठियोंका आवास लोकके शिखरपर ही है।

प्रश्न १३—सिद्धपरमेष्ठीका ध्यान केवल पदस्थ ध्यानमें ही होता है ?

उत्तर—सिद्धपरमेष्ठीका पदस्थ ध्यानमें रहकर चिन्तवन करना प्रारम्भिक ध्यान है, इसके पश्चात् रूपातीत ध्यानमें रहकर सिद्धपरमेष्ठीका विशद ध्यान होता है।

प्रश्न १४— रूपातीत ध्यान कब और कैसे होता है ?

उत्तर—जब पांचों इन्द्रिय और मनके भोगोंके विकल्प दूर हो जाते हैं तब मात्र चैतन्यमें विशुद्ध विकासका चिन्तवन करनेपर रूपातीत ध्यान होता है।

प्रश्न १५-- रूपातीत ध्यानका और पदस्थ ध्यानका क्या परस्पर कुछ सम्बन्ध है ?

उत्तर—ये दोनों ध्यान एक कालमें नहीं होते, अतः निश्चयसे तो कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु कार्यकारण सम्बन्ध इनमें हो सकता है और तब पदस्थ ध्यान कारण होता है और रूपातीत ध्यान कार्य होता है।

इस प्रकार पदस्थ ध्यानमें ध्याये गये सिद्धपरमेष्ठीके स्वरूपका वर्णन करके अब पदस्थ ध्यानमें ध्याये गये आचार्य परमेष्ठीका स्वरूप कहा जाता है।

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्त वर तवायारे।
अप्पं परं च जुं जइ सो आयरिओ मुणी भेओ ॥५२॥

अन्वय— दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्त तवायारे अप्पं च परं जो जुं जइ सो आयरिओ मुणी झेओ।

अर्थ—दर्शन ज्ञान है प्रधान जिसमें, वीर्य, चारित्र व तपके आचारमें अर्थात् दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार—इन पांच आचारोंमें अपनेको व परको जो लगाता है वह आचार्य मुनि ध्यान करने योग्य है।

प्रश्न १—दर्शनाचार किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शनमें आचरण याने परिणमन करनेको दर्शनाचार कहते हैं।

प्रश्न २— सम्यग्दर्शनका सुगमतागम्य स्वरूप क्या है ?

उत्तर— परमपारिणामिक भावरूप चैतन्यविलास ही जिसका लक्षण है; भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मसे रहित, अन्य समस्त परद्रव्योंसे भिन्न निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचि जिस दृष्टिमें होती है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न ३—ज्ञानाचार किसे कहते हैं ?

उत्तर– सम्यग्ज्ञानमें आचरण याने परिणमन करनेको ज्ञानाचार कहते हैं।

प्रश्न ४– सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– भेदविज्ञानके बलसे परमपारिणामिक भावरूप याने अत्यन्त निरपेक्ष सहज चैतन्यस्वभावमय शुद्ध आत्माको मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि परभावोंसे पृथक् जानना सम्यग्ज्ञान है।

प्रश्न ५—चारित्राचार किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक्चारित्रमें आचरण याने परिणमन करनेको चारित्राचार कहते हैं।

प्रश्न ६— सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—निर्दोष, निरुपाधि, सहज आनन्दके अनुभवके बलसे चित्तके निश्चेष्ट हो जानेको सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्रश्न ७—तपाचार किसे कहते हैं ?

उत्तर– सम्यक्तपमें आचरण याने परिणमन करनेको तपाचार कहते हैं ?

प्रश्न ८—सम्यक्तप किसे कहते हैं ?

उत्तर—समस्त परद्रव्य व परभावोंकी इच्छाका अत्यन्त निरोध करके निज शुद्ध आत्मतत्त्वमें तपनेको सम्यक्तप कहते हैं।

प्रश्न ९—वीर्याचार किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यग्वीर्यमें आचरण याने परिणमन करनेको वीर्याचार कहते हैं।

प्रश्न १०—सम्यग्वीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर– सम्यग्दर्शनाचार, सम्यग्ज्ञानाचार, सम्यक्चारित्राचार और सम्यक्तपाचार—इन चारों आचारोंके धारण और रक्षणके लिये आत्मशक्तिके प्रकट होनेको सम्यग्वीर्य कहते हैं।

प्रश्न ११—आचार्यदेव इन पाँच प्रकारके आचारोंमें अपनेको कैसे लगाता है ?

उत्तर—आचार्य परमेष्ठी स्वशुद्धात्मभावनाके बलसे अपनेको पाँच आचारोंमें लगाता है, कदाचित् कुछ प्रमाद हो तो व्यवहारदर्शनाचार, व्यवहारज्ञानाचार, व्यवहारचारित्राचार, व्यवहारतपाचार, व्यवहारवीर्याचारमें बर्त कर पुनः पूर्ण सावधान होकर निश्चयाचारमें लग जाता है।

प्रश्न १२—उक्त पाँच आचारोंमें आचार्य शिष्यको कैसे लगाता है ?

उत्तर—आचार्यके आचारोंकी दृढ़ता देखकर शिष्य आचारोंमें दृढ़ हो जाता है। इसके अतिरिक्त आचार्य शिष्योंको उपदेश देकर, दीक्षा, प्रायश्चित आदि देकर शिष्योंको आचारोंमें लगनेके पात्र बना देते हैं।

प्रश्न १३– आचार्य परमेष्ठीके क्या पाँच आचार ही मूल गुण है ?

उत्तर—आचार्य परमेष्ठीके ३६ मूल गुण हैं। जिनमें पाँच आचारोंकी अधिक विशेषता मानी गई है। वे ३६ मूल गुण ये हैं—१२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति। अथवा आचार्य परमेष्ठीके ये मुख्य ८ गुण हैं—(१) आचारवत्व, (२) आधारवत्व, (३) व्यवहारवत्व, (४) प्रकारकत्व, (५) आयोपायविदर्शित्व, (६) अवपीडकत्व, (७) अपरिस्रावित्व और (८) निर्यापकत्व।

प्रश्न १४-- आचारवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—पांच प्रकारके आचारोंका स्वयं निर्दोष पालन करने व अन्य साधुवोंको पालन करानेको आचारवत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न १५—आधारवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर– आचाराङ्ग आदि श्रुतका विशेष धारण होनेको आधारवत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न १६– व्यवहारवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रायश्चित शास्त्रोंकी विधि और अपने ज्ञानबलके अनुसार प्रायश्चित आदि देनेकी क्षमताको व्यवहारवत्व कहते हैं।

प्रश्न १७—प्रकारकत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—सर्व संघके वैयावृत्य करनेकी विधिके परिज्ञान और वैयावृत्य करनेकी कलाको प्रकारकत्व कहते हैं।

प्रश्न १८—आयोपायविदर्शित्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी भी कार्यकी हानि और लाभको स्पष्ट और यथार्थ बतानेकी क्षमताको आयोपायविदर्शित्व कहते हैं।

प्रश्न १९– अवपीडकत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर– आलोचना करने वाला साधु आचार्यके जिस प्रभावके कारण अपनी शल्य, अपने दोषको उगल देवे उस प्रभावको अवपीड़कत्व कहते हैं।

प्रश्न २०—अपरिस्रावित्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—आलोचक शिष्य आचार्यसे जो भी आलोचनाको वह दोष व आलोचना आचार्य किसी भी दूसरेसे प्रकट न करे, ऐसी उदारताको अपरिस्रावित्व कहते हैं।

प्रश्न २१—निर्यापकत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—शिष्यकी पालित आराधना अन्त समय तक निर्विघ्न चले और समाधिसे शिष्य संसारसे पार हो, ऐसे उपाय करनेकी क्षमताको निर्यापकत्व कहते हैं।

प्रश्न २२—क्या आचार्य परमेष्ठी केवल पदस्थ ध्यानमें ध्येय हैं ?

उत्तर— आचार्य परमेष्ठी पिण्डस्थ ध्यानमें भी ध्यान किये जाने योग्य हैं ?

प्रश्न २३— इस पदस्थ और पिण्डस्थ ध्यानका परस्पर कोई सम्बन्ध है ?

उत्तर— इन दोनों ध्यानोंमें कार्यकारण सम्बन्ध है—पदस्थ ध्यान कारण है और पिण्डस्थ ध्यान कार्य है।

प्रश्न २४—आचार्य परमेष्ठीके ध्यानसे क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर—मोक्षमार्गके कारणभूत पञ्च-आचारोंके धारण, पालन और निर्वहणकी सुगमता व शरणकी प्रतीति होनेसे पुरुषार्थ करनेमें उत्साह बढ़ता है।

इस प्रकार पदस्थ ध्यानमें ध्याये गये आचार्य परमेष्ठीके स्वरूपका वर्णन करके पदस्थ ध्यानमें ध्याये गये उपाध्याय परमेष्ठीके स्वरूपका वर्णन करते हैं—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

अन्वय—जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो सो जदिवरवसहो अप्पा उवझाओ, तस्स णमो।

अर्थ—जो रत्नत्रयसे युक्त है, प्रतिदिन धर्मका उपदेश करनेमें निरत है, वह मुनिवरोंमें प्रधान आत्मा उपाध्याय परमेष्ठी है, उसको नमस्कार होओ।

प्रश्न १— रत्नत्रय शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—जो जिस जातिमें उत्कृष्ट हो वह उस जातिमें रत्न कहलाता है और तीन रत्नोंके समाहारको रत्नत्रय कहते हैं। यहाँ मोक्षमार्गका प्रकरण है, सो मोक्षमार्गके रत्नत्रय ये ३ हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।

प्रश्न २—रत्नत्रय कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर—रत्नत्रय २ प्रकारका होता है—(१) निश्चयरत्नत्रय, (२) व्यवहाररत्नत्रय।

प्रश्न ३—निश्चयरत्नत्रय किसे कहते हैं ?

उत्तर— अविकार निज शुद्ध आत्मतत्त्वके श्रद्धान, ज्ञान और अनुचरणरूप परमसमाधिको निश्चयरत्नत्रय कहते हैं। इसके अपर नाम अभेदरत्नत्रय, आभ्यन्तररत्नत्रय आदि भी हैं।

प्रश्न ४ — व्यवहाररत्नत्रय किसे कहते हैं ?

उत्तर— निश्चयरत्नत्रयके कारणभूत सम्यग्दर्शनके ८ अङ्ग, सम्यग्ज्ञानके ८ अंग और सम्यक्चारित्रके १३ अङ्गोंके धारण, पालन व निर्वहणको व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं। इसके अपर नाम भेदरत्नत्रय, बाह्यरत्नत्रय आदि भी हैं।

प्रश्न ५— उपाध्याय परमेष्ठी किस धर्मका उपदेश करते हैं ?

उत्तर– उपाध्याय परमेष्ठी निश्चयधर्म व व्यवहारधर्म दोनों प्रकारके धर्मोंका उपदेश करते हैं।

प्रश्न ६– निश्चयधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- वस्तुके स्वभावको अथवा आत्माके स्वभावको निश्चयधर्म कहते हैं तथा इस निश्चयधर्मकी दृष्टिके फलमें होने वाले मोहक्षोभरहित निर्मल परिणामको भी निश्चयधर्म कहते हैं।

प्रश्न ७– व्यवहारधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– निश्चयधर्मके परम्परया साधनभूत एकदेश शुद्धोपयोगरूप या निश्चयधर्मके लक्ष्य रहते हुए किये गये शुभोपयोगको व्यवहारधर्म कहते हैं अथवा निश्चयधर्मके आविर्भाव को व्यवहारधर्म कहते हैं।

प्रश्न ८—इन धर्मोंका उपदेश किस पद्धतिसे दिया जाता है ?

उत्तर-- निज शुद्धात्मद्रव्य उपादेय है, परद्रव्य हेय है; निज शुद्धात्मसंवेदन भाव उपादेय है, परभाव हेय है; परमात्मभक्ति, संयम, ध्यान उपादेय है, पापभाव हेय है इत्यादि हेयोपादेयकी बुद्धि विशद करने वाली पद्धतिसे धर्मोपदेश दिया जाता है।

प्रश्न ९– यतिवरवृषभ शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर—विषय कषायोंके विजय द्वारा जो निज शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धिमें यत्न करते हैं उन्हें यति कहते हैं और जो यतियोंमें वर है, श्रेष्ठ हैं उन्हें यतिवर कहते हैं तथा यतिवरोंमें वृषभ अर्थात् प्रधानको यतिवरवृषभ कहते हैं।

प्रश्न १०—उपाध्याय शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर—उप समीपे, यस्य समीपे अधीते शिष्यवर्गः पठति स उपाध्यायः, जिसके समीप में आत्मकल्याणार्थी शिष्यवर्ग अध्ययन करते हैं उसे उपाध्याय कहते हैं।

प्रश्न ११—उपाध्याय परमेष्ठीके ध्यानसे क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर– उपाध्याय परमेष्ठीके मूल गुण २५ हैं, जिनके नाम ११, अंग १४ पूर्वरूप हैं, क्योंकि उपाध्याय परमेष्ठी इनके ज्ञाता होते हैं। सो उपाध्याय परमेष्ठी ज्ञानके प्रतीक हैं, इनके ध्यानसे निश्चयस्वाध्यायके कारणभूत आगमज्ञानप्राप्तिकी तथा निज शुद्धात्मतत्त्वके अभ्यासरूप निश्चयस्वाध्यायकी प्रेरणा मिलती है।

प्रश्न १२—उपाध्याय परमेष्ठीका क्या केवल पदस्थ ध्यानमें ध्यान होता है ?

उत्तर– उपाध्याय परमेष्ठीका पिण्डस्थ ध्यानमें भी ध्यान होता है। यह ध्यान इस पिण्डस्थ ध्यानका कारणभूत है।

इस प्रकार पदस्थ ध्यानमें ध्येयभूत उपाध्याय परमेष्ठीका स्वरूप कहकर पदस्थानमें

ध्याये गये साधु परमेष्ठीका स्वरूप कहते हैं:—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू सो मुणो णमो तस्स ॥५४॥

अन्वय— जो णिच्चसुद्धं मोक्खस्स मग्गं दंसणणाणसमग्गं चारित्तं हु साधयदि स मुणी साहू तस्स णमो ।

अर्थ-- जो नित्य शुद्ध याने रागादिरहित, मोक्षके मार्गभूत, दर्शन ज्ञान करि परिपूर्ण चारित्रको निश्चयसे साधता है वह मुनि साधु परमेष्ठी है, उसको नमस्कार हो ।

प्रश्न १-- मोक्षमार्ग नित्य शुद्ध है, इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर-- मिथ्यात्व, राग, द्वेष रहित चैतन्यका अविकार परिणमन ही मोक्षमार्ग है और ऐसा ही अनन्तकाल तक मोक्षमार्गका स्वरूप रहेगा । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदिके किसीके अन्तर होनेपर मोक्षमार्गका स्वरूप नहीं बदलेगा तथा इसी प्रकार उक्त निश्चय-मोक्षमार्गके कारणभूत बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहसे रहितता तथा निष्परिग्रहतामें दोष न लगे, इस प्रकारकी अहोरात्रचर्या व्यवहार मोक्षमार्ग कहावेगा । इससे विपरीत अन्य कुछ मोक्षमार्ग ही नहीं ।

प्रश्न २-- सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र— ये तीनों मोक्षके मार्ग हैं या नहीं ?

उत्तर-- ये तीनों मोक्षके मार्ग तो हैं, परन्तु केवल कोई एक या दो मोक्षमार्गका वह पद नहीं जिसके पश्चात् मोक्ष होता ही है ।

प्रश्न ३-- फिर कोई एक मोक्षका मार्ग कैसे हो सकता है ?

उत्तर-- कोई एक या दो एक देश मोक्षका मार्ग है और तीनोंकी परिपूर्णता आत्यन्तिक मोक्षका मार्ग है ।

प्रश्न ४—सम्यग्दर्शनका प्रारम्भ किस गुणस्थानसे होता है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति चतुर्थ गुणस्थानमें हो जाती है । यदि सम्यक्त्व व देशचारित्र एक साथ प्रकट हों तो पाँचवें गुणस्थानमें सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति कहलाती है । यदि सम्यक्त्व और सकलसंयम एक साथ प्रकट हों तो सप्तम गुणस्थानमें सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति कहलाती है ।

प्रश्न ५— सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति किस गुणस्थानमें हो जाती है ?

उत्तर— सम्यग्दर्शनकी तरह सम्यग्ज्ञानकी भी चौथे, ५वें, ७वें गुणस्थानमें हो जाती है । परन्तु सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता १३वें गुणस्थानमें हो जाती है । पूर्ण सम्यग्ज्ञानका अपर नाम केवलज्ञान है ।

प्रश्न ६— सम्यक्चारित्रकी उत्पत्ति किस गुणस्थानमें हो जाती है ?

उत्तर— सम्यक्चारित्रकी भी उत्पत्ति सम्यग्दर्शनकी तरह चौथे, ५वें, ७वें गुणस्थानमें हो जाती है, परन्तु सम्यक्चारित्रकी पूर्णता १४वें गुणस्थानके अन्तमें होती है।

प्रश्न ७—कषायोंका अभाव तो १०वें गुणस्थानके अन्तमें हो जाता है, फिर इसके ही अनन्तर पूर्ण सम्यक्चारित्र क्यों नहीं हो जाता ?

उत्तर—कषायोंके अभावसे होने वाली निर्मलताकी अपेक्षासे तो सम्यक्चारित्रकी पूर्णता ११वें से मानी गई है, परन्तु ११वें गुणस्थानमें तो औपशमिक चारित्र है उसका विनाश हो जाता है। १२वें गुणस्थानमें अनन्तज्ञान नहीं है जिससे अनन्तचारित्रका अनुभव नहीं है, १३वें गुणस्थानमें योगकी चंचलता है, सो निर्मलता और अनुभवकी अपेक्षा पूर्णता होनेपर प्रादेशिक स्थिरता नहीं है। १४वें गुणस्थानमें कर्म नोकर्मसे संयुक्त होनेसे १.वें गुणस्थानमें यथावस्था नहीं है, अतः सम्यक्चारित्रकी पूर्णता १४वें गुणस्थानके अन्तमें होती है।

प्रश्न ८— साधु शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर—स्व शुद्धात्मानं साधयति इति साधु, जो निज शुद्ध आत्माको साधे उसे साधु कहते हैं।

प्रश्न ९— साधु परिणतियोंकी जातिकी अपेक्षासे कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—साधु १० प्रकारके होते हैं:— (१) प्रमत्तविरत, (२) अप्रमत्तविरत, (३) अपूर्वकरणउपशमक, (४) अनिवृत्तिकरणउपशमक, (५) सूक्ष्मसाम्परायउपशमक, (६) उपशान्तमोह, (७) अपूर्वकरणक्षपक, (८) अनिवृत्तिकरणक्षपक, (९) सूक्ष्मसाम्परायक्षपक, (१०) क्षीणमोह।

प्रश्न १०— उक्त साधुवोंमें परिणामविशुद्ध वालोंका अल्पबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर— पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर नम्बर वाले साधु अधिक अधिक विशुद्ध परिणति वाले होते हैं।

प्रश्न ११—साधु परमेष्ठीके ध्यानसे क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर—साधुवोंके गुणविकास व गुणविकासके मार्गके ध्यानसे व्यवहार मोक्षमार्ग एवं निश्चयमोक्षमार्गमें चलनेकी प्रेरणा मिलती है।

प्रश्न १२—साधु परमेष्ठी क्या केवल पदस्थध्यानमें ही ध्येयभूत होते हैं ?

उत्तर— साधु परमेष्ठी पिण्डस्थ ध्यानमें भी ध्यान किये जाते हैं। यह पदस्थ ध्यान पिण्डस्थ ध्यानका कारणभूत है।

प्रश्न १३—पदस्थ ध्यानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर— पदके उच्चारण व जपके अवलम्बनसे जो चित्तकी एकाग्रता होती है वह पदस्थ ध्यान कहलाता है।

प्रश्न १४-- नमस्कारका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर-- क्रोध, अहंकार, मायाचार व लोभको छोड़कर गुणानुरागपूर्वक विनम्र होनेको नमस्कार कहते हैं।

प्रश्न १५— नमस्कार कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर-- नमस्कार चार प्रकारका होता है— (१) भाव नमस्कार, (२) मानसिक नमस्कार, (३) वाचनिक नमस्कार और (४) कायिक नमस्कार।

प्रश्न १६— भाव नमस्कार किसे कहते हैं ?

उत्तर-- सहज शुद्ध चैतन्यकी भावनासे उत्पन्न हुये सहज आनन्दका अनुभव होना भावनमस्कार है।

प्रश्न १७— मानसिक नमस्कार किसे कहते हैं ?

उत्तर—परमेष्ठीके गुणोंको चिन्तना, भावनासे मनका विनम्र हो जाना मानसिक नमस्कार है।

प्रश्न १८— वाचनिक नमस्कार किसे कहते हैं ?

उत्तर—'णमो अरहंताणं' आदि पदोंका उच्चारण करने, परमेष्ठीका वाचक नाम लेने, नमस्कार हो, जयवन्त हो आदि मंगल वचन बोलने, गुणोंकी प्रशंसा, स्तुति करनेको वाचनिक नमस्कार कहते हैं।

प्रश्न १९— कायिक नमस्कार किसे कहते हैं ?

उत्तर—परमेष्ठी देवका लक्ष्य करके सिर नमाने, हाथ जोड़ने, अष्टाङ्ग या सप्ताङ्ग या पञ्चाङ्ग आदि नमस्कार करनेको कायिक नमस्कार कहते हैं।

इस प्रकार पदस्थ ध्यान द्वारा ध्यानका उपदेश करके अब ध्याता, ध्यान, ध्येयका संकेत करते हुए निश्चय ध्यानका लक्षण कहते हैं—

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयं झाणं ॥५५॥

अन्वय— जदा जं किंचिवि चिंतंतो साहू एयत्तं लद्धूणय णिरीहवित्ती हवे तदा तं तस्स णिच्छयं झाणं आहु।

अर्थ— जिस समय जो कुछ भी विचारता हुआ साधु ध्येयमें चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त करके अथवा निजमें एकत्वको प्राप्त करके समस्त इच्छाओंसे रहित परिणति वाला हो जाता है तब ऋषिजन उस ध्यानको उसका निश्चयध्यान कहते हैं।

प्रश्न १— ध्येयका संकेत किस पदसे प्रकट होता है ?

उत्तर— "जं किंचिवि चिंतंतो" इस पदसे ध्येयका संकेत प्रकट होता है।

प्रश्न २– साधु जिस किसीका किसका चिन्तवन करता है ?

उत्तर-- आत्मा या अनात्मभूत कोई पदार्थ भी साधुके चिन्तवनमें आ जाय, कोई हानि नहीं होती है, क्योंकि ज्ञानका स्वभाव जानना है। उसमें कुछ भी ज्ञान जाननेमें आ जाय व एकाग्रचित्ततासे भी जाननेमें आ जाय यह ज्ञान आत्माका बाधक नहीं है। बाधक तो विपरीत अभिप्राय है।

प्रश्न ३– प्राथमिक शिष्योंके ध्यानमें अधिकतया क्या ध्येय आता है ?

उत्तर-- प्राथमिक साधकोंके प्रायः सविकल्प अवस्था रहती है वहाँ विकल्प बहुलता की निवृत्तिके लिये चित्तकी स्थिरता आवश्यक है, एतदर्थ, देव, शास्त्र, गुरु आदि धर्मान्वित परद्रव्य ध्येय रहते हैं।

प्रश्न ४– अभ्यस्त साधुवोंके ध्यानमें क्या ध्येय आता है ?

उत्तर– अभ्यस्त साधुवोंके, निश्चलचित्तोंके ध्यानमें सहज शुद्ध, नित्य, निरञ्जन निज शुद्धस्वभाव ध्येयरूप होता है।

प्रश्न ५—ध्यानका संकेत किस पदसे हो रहा है ?

उत्तर– "साहू णिरीहवित्ती हवे" जो साधु निस्पृह वृत्ति वाला हो जाता है इस पदसे ध्याताका संकेत हो रहा है। सकल ध्याता वही होता है जो सर्वप्रकारकी इच्छाओंसे अत्यन्त परे है।

प्रश्न ६—यहाँ इच्छामें क्या-क्या बातें गर्भित हैं ?

उत्तर—इच्छामें सभी प्रकारके परिग्रह गर्भित हो जाते हैं। वे परिग्रह १४ हैं— (१) मिथ्यात्व, (२) क्रोध, (३) मान, (४) माया, (५) लोभ, (६) हास्य, (७) रति, (८) अरति, (९) शोक, (१०) भय, (११) जुगुप्सा, (१२) पुरुषवेद, (१३) स्त्रीवेद और (१४) नपुंसकवेद।

प्रश्न ७– इन्हीं आभ्यन्तर परिग्रहोंसे रहित होनेकी आवश्यकता है तो बाह्यपरिग्रह होते हुये ध्यान होना मानना चाहिये ?

उत्तर—मिथ्यात्वका अभाव होनेपर वह अन्य आभ्यन्तर परिग्रहकी शिथिलता होने पर बाह्यपरिग्रहका ग्रहण ही नहीं रह सकता और बाह्यपरिग्रहका ग्रहण न रहने पर आभ्यन्तर परिग्रहका भी सर्वथा अभाव हो जाता है। इस प्रकार आभ्यन्तर व बाह्य दोनों प्रकारके सब परिग्रहोंका त्यागी उत्तम ध्याता होता है।

प्रश्न ८—ध्यानका संकेत किस पद द्वारा हो रहा है ?

उत्तर– "एयत्तं लद्धूणय" इस पदसे ध्यानका संकेत होता है। एकत्वको प्राप्त करना ध्यानका लक्ष्य है। इसमें भी चित्तकी एकाग्रता पाने रूप एकत्वकी प्राप्ति ध्यानका प्राथमिक लक्षण है और निज शुद्ध आत्मतत्त्वके एकत्वको पाने रूप एकत्वकी प्राप्ति उत्तम ध्यानका

लक्षण है ।

प्रश्न ९—यहाँ निश्चयध्यानसे तात्पर्य किस निश्चयध्यानका है ?

उत्तर– इस गाथामें व्यवहाररत्नत्रयके साधक चित्तकी एकाग्रतारूप ध्यानको निश्चय-ध्यान कहा गया है ।

प्रश्न १०—इस निश्चयध्यानके फलमें क्या होता है ?

उत्तर—इस निश्चयध्यानके प्रतापसे निज शुद्ध आत्मतत्त्वके एकत्वकी प्राप्ति रूप परम-ध्यान होता है ।

अब इसी परमध्यानका उपाय व स्वरूप कहते हैं ।

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि जेण होई थिरो ।
अप्पा अप्पम्हि रओ इणमेव परं हवे झाणं ।।५६।।

अन्वय– किंवि मा चिट्ठह, मा जंपत, मा चिंतह जेण अप्पा अप्पम्हि रओ थिरो होदि, इणमेव परं झाणं हवे ।

अर्थ– कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो, जिससे आत्मा आत्मामें रत होता हुआ स्थिर हो जाय, यही परमध्यान है ।

प्रश्न १– चेष्टा करने, बोलने व सोचनेके निषेधके इस क्रमका कोई प्रयोजन है ?

उत्तर– काय, वचन, मनका निरोध क्रमसे होना सुगम होता है, इसके प्रदर्शित करने का प्रयोजन यह क्रम बताता है ।

प्रश्न २-- किस प्रकारकी कायचेष्टाका विरोध करना चाहिये ?

उत्तर– शुभ तथा अशुभ सभी प्रकारकी शरीरकी चेष्टाका निरोध करना चाहिये ।

प्रश्न ३-- शुभ कायचेष्टाका निरोध क्यों आवश्यक है ?

उत्तर– अशुभ चेष्टाकी तरह शुभ चेष्टा भी सहज शुद्ध नित्य निष्क्रिय निज शुद्धात्मा के अनुभवमें बाधक है, अतः शुभ अशुभ दोनों काय-व्यापारोंका निरोध परमसमाधिरूप ध्यान के लिये आवश्यक है ।

प्रश्न ४-- कौनसे वचनव्यापार हटाना परमध्यानके लिये आवश्यक है ?

उत्तर—शुभबहिर्जल्प, अशुभबहिर्जल्प, शुभअन्तर्जल्प, अशुभअन्तर्जल्प-- ये चारों ही प्रकारके वचनव्यापार रोक देना परमध्यानके लिये आवश्यक हैं ।

प्रश्न ५-- शुभ वचनोंका व अन्तर्जल्परूप वचनोंका रोकना परमध्यानके लिये क्यों आवश्यक है ?

उत्तर-- अशुभ वचनव्यापारकी तरह शुभवचनव्यापार भी निश्चल निस्तरंग चैतन्य-स्वभावके अनुभवका प्रतिबन्धक है और इसी प्रकार बहिर्जल्पकी तरह अन्तर्जल्प भी स्वभावा-

नुभवका प्रतिबन्धक है। अतः सभी प्रकारके वचनव्यापारोंका निरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है।

प्रश्न ६-- कौनसे मानसिक व्यापारोंका निरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है ?

उत्तर-- शुभ तथा अशुभ सभी प्रकारके विकल्परूप चित्तव्यापारोंका निरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है।

प्रश्न ७-- शुभ भावनाओंका निरोध परमध्यानके लिये क्यों आवश्यक है ?

उत्तर—अशुभ भावनाके विकल्पकी तरह शुभ भावनाके विकल्प भी निर्विकल्प, निरञ्जन सहज शुद्ध निज स्वभावके अनुभवके प्रतिबन्धक हैं, अतः शुभ व अशुभ दोनों प्रकारके विकल्पोंका विरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है।

प्रश्न ८— काय, वचन, मनके व्यापारके निरोधपूर्वक होने वाली आत्मलीनतामें आत्माकी क्या स्थिति रहती है ?

उत्तर—आत्मलीनतामें रागद्वेषके सर्वविकल्पोंसे रहित परमसमाधि होती है और आत्मीय सहज परमआनन्दकी अनुभूति होती है।

प्रश्न ९—इस परमध्यानका फल क्या है ?

उत्तर— यह परमध्यान, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्तआनन्दके आविर्भावका कारण है। जिस अनन्तचतुष्टय फलके प्रकट होनेसे यह परमतत्त्वदर्शी अनन्तकाल तक याने सर्वकाल तक परमात्मत्वका अनुभव करता है।

प्रश्न १०— इस परमध्यानमें ध्येयभूत तत्त्व क्या होता है ?

उत्तर— यह परमध्यान निर्विकल्प परमसमाधिरूप अवस्था है, अतः बुद्धिपूर्वक ध्यान तो किसीका भी नहीं है, परन्तु निस्तरंग परिणमनमें ध्रुव, परमपारिणामिक भावस्वरूप, सहजज्ञानदर्शनानन्दमय समयसार ध्येय रह जाता है। इसे सहज शुद्ध आत्मतत्त्वका सहज अवलम्बन कहते हैं। इसमें यह आत्मा आनन्द, अनन्त, अहेतुक चैतन्यस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके स्वयं सहज आनन्दरूप परिणमता रहता है। यही परमकारण है।

इस प्रकार दस गाथाओंमें ध्यानसम्बन्धी तत्त्वोंका उपदेश करके श्रीमत्सिद्धान्तिदेव आचार्य अब ध्यानके वर्णनोंका उपसंहार करते हुए सदादेश देते हैं—

तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

अन्वय— जम्हा तव सुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे, तम्हा तल्लद्धीए सदा तत्तियणिरदा होह।

अर्थ—चूंकि तप श्रुत व्रत वाला आत्मा ही ध्यानरूपी रथकी धुरीका धारण करने

वाला होता है, अतः हे भव्यजीवो ! इस ध्यानकी प्राप्तिके अर्थ सदा तप, श्रुत और व्रत—इन तीनोंमें निरत होओ।

प्रश्न १– परमध्यानके वर्णनके बाद व्यवहार-साधनोंसे ध्यानका उपसंहार क्यों किया ?

उत्तर—यहाँ निश्चयतप, निश्चयश्रुत व निश्चयव्रतका ग्रहण करना है। यह परमध्यानके अनन्य सहायक हैं। अतः व्यवहारसाधन जैसी बात नहीं सोचना।

प्रश्न २– निश्चयतप क्या है ?

उत्तर—शुद्ध आत्मस्वरूपमें तपना निश्चयतप है। इस निश्चयतपका प्राथमिक साधन अनशन आदि बारह प्रकारका तप है।

प्रश्न ३—निश्चयश्रुत क्या है ?

उत्तर—निर्विकार शुद्ध स्वसंवेदनरूप परिणमन निश्चयश्रुत है। इस निश्चयश्रुतका साधन आचार शास्त्र आदि द्रव्यश्रुतका अध्ययन, मनन, आधार है।

प्रश्न ४—निश्चयव्रत क्या है ?

उत्तर-- समस्त शुभ अशुभ मन, वचन, कायके व्यापारोंसे निवृत्ति होना निश्चयव्रत है।

प्रश्न ५-- निश्चयव्रतका साधन क्या है ?

उत्तर-- अहिंसामहाव्रत आदि बाह्य व्रतोंका पालन निश्चयव्रतका साधन है।

प्रश्न ६—अहिंसा महाव्रतादि तो पूर्ण त्यागरूप हैं, ये बाह्यव्रत क्यों कहे जाते हैं ?

उत्तर-- ये पाँचों महाव्रतादि तो पूर्ण निवृत्तिरूप नहीं हैं, अतः ये बाह्यव्रत कहलाते हैं अथवा एकदेशव्रत कहलाते हैं।

प्रश्न ७-- एकदेशव्रत तो संयमासंयम होता है. महाव्रत एकदेशव्रत कैसे हो सकता है ?

उत्तर-- इन महाव्रतोंमें भी एकदेश प्रवृत्ति पाई जाती है, अतः ये भी एकदेशव्रत हैं। संयमासंयमरूप एकदेशव्रतसे ये महाव्रत विशेष व्रत अवश्य हैं।

प्रश्न ८– महाव्रतोंमें क्या अनिवृत्ति या प्रवृत्ति पाई जाती है ?

उत्तर-- अहिंसामहाव्रतमें जीवरक्षाकी प्रवृत्ति है, सत्यमहाव्रतमें सत्यवचनकी प्रवृत्ति है, अचौर्यमहाव्रतमें दत्तादानकी प्रवृत्ति है, ब्रह्मचर्यमहाव्रतमें शीलरक्षणकी प्रवृत्ति है, परिग्रह-त्याग महाव्रतमें असंग रहने, नग्न रहने, एकान्त संवास करने आदिकी प्रवृत्ति है।

प्रश्न ६– तब क्या निश्चयव्रतमें जीवरक्षाकी प्रवृत्ति नहीं है ?

उत्तर– निश्चयव्रतमें शुभ अशुभ समस्त विकल्पोंकी निवृत्ति है, पूर्ण मनोगुप्ति, वचन-गुप्ति और कायगुप्तिकी अवस्था है। वहां किसी भी प्रकारके विकल्पका अथवा व्यापारका अव-

काश नहीं है। वहाँ तो जैसे हिंसादि अशुभ भावोंसे निवृत्ति है वैसे ही जीवरक्षादि शुभ भावोंसे भी पूर्ण निवृत्ति है; अन्यथा मोक्षकी प्राप्ति असम्भव हो जायेगी।

प्रश्न १०—क्या निश्चयव्रत, निश्चयतप और निश्चयश्रुतके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती?

उत्तर—निश्चयव्रत, निश्चयतप और निश्चयश्रुत रूप परमसमाधिके बिना मोक्षकी प्राप्ति असम्भव है।

प्रश्न ११—जिनके सकलसंयमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल तकका बनाया है वहां सकलसंयम होते ही अन्तर्मुहूर्त मोक्ष माना है। वहाँ निश्चयतप आदिका अवसर ही कैसे हो सकता है?

उत्तर—ऐसी स्थितिमें भी निश्चयतप आदि रूप परमसमाधि तो होती ही है, किन्तु उसका अधिक काल न होनेसे वह लोकप्रसिद्ध नहीं हो पाती।

प्रश्न १२—क्या निश्चयतप, निश्चयव्रत व निश्चयश्रुत आजकल सम्भव हैं?

उत्तर—निश्चयतप आदि आजकल सम्भव तो हैं, परन्तु अत्यल्पकाल तक यह परिणति आजकल रह सकती है, इस कारण मोक्षका कारणभूत शुक्लध्यान भी नहीं हो पाता।

प्रश्न १३—तब फिर आजकल उत्कृष्टसे उत्कृष्ट कौनसा ध्यान हो सकता है?

उत्तर—आजकल धर्मध्यान तक ही हो सकता है।

प्रश्न १४—जब मोक्षका कारणभूत शुक्लध्यान नहीं हो पाता, फिर ध्यानके प्रयत्न से क्या प्रयोजन?

उत्तर—धर्म्यध्यान भी मोक्षका परम्परया कारणभूत है। इस समय भी ऐसा तो हो ही सकता है कि स्वशुद्धात्मभावनारूप निश्चयतप आदिके होनेपर देवायुका बन्ध कर मरणकर देवगतिमें उत्पत्ति हो। फिर वहाँसे चलकर विदेहक्षेत्रमें अथवा चतुर्थकालमें मनुष्य होकर वहाँसे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न १५—ध्यानके मुख्य सहायक साधन क्या हैं?

उत्तर—वैराग्य, तत्त्वज्ञान, निष्परिग्रहता, वशचित्तता, परीषहविजय—ये पाँच ध्यानके मुख्य साधक हैं।

प्रश्न १६—वैराग्यसे तात्पर्य क्या है?

उत्तर—संसार, देह और भोगोंसे उपेक्षा होनेको वैराग्य कहते हैं।

प्रश्न १७—संसारसे उपेक्षा कैसी होना चाहिये?

उत्तर—संसारका अर्थ है—मन वचन कायकी चेष्टायें, उन्हें अहित, विनश्वर और परभाव जानकर उनसे रति हट जाना चाहिये।

प्रश्न १८– देहसे वैराग्य कैसे होता है ?

उत्तर—यह ही दुःखका अवलम्ब कारण है। इसीका सम्बन्ध नाना वेदनाओंका मूल है और फिर भी यह देह हाड़ मांसका पुतला अनेक रोगोंसे घिरा हुआ है इत्यादि देहके स्वरूपके ज्ञानके बलसे देहसे अनुराग हट जाता है।

प्रश्न १६ —अङ्गोंसे उपेक्षा कैसे हो जाती है ?

उत्तर– पञ्च इन्द्रियोंके साधनभूत दृश्यमान ये जड़ पदार्थ मुझ चेतनसे अत्यन्त भिन्न हैं, इनकी चाहसे ही मेरा अनन्त वैभव ढका हुआ है, इनका समागम भी विद्युतकी तरह चञ्चल है इत्यादि सत्य भावनावोंके बलसे भोगोंसे उपेक्षा हो जाती है।

प्रश्न २०– संसारसे वैराग्य पानेसे ध्यानपर कैसे असर होता है ?

उत्तर—जब मन वचन कायकी चेष्टावोंमें रति नहीं होती है तब उपयोगको इनमें आश्रय न मिलनेसे उपयोगकी अस्थिरता समाप्त होती है। यही उपयोगकी स्थिरताका ध्यान है। इस प्रकार संसारसे वैराग्य होनेसे ध्यानकी वृद्धि होती है।

प्रश्न २१– तत्त्वज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– स्वभाव व परभावके भेदविज्ञानके बलसे स्वतःसिद्ध, ध्रुव सहजानन्दमय चैतन्य परमतत्त्वके उपयोगको तत्त्वज्ञान कहते हैं।

प्रश्न २२—तत्त्वज्ञानसे ध्यानकी सिद्धि क्यों सुगम है ?

उत्तर– तत्त्वज्ञानमें उपयोगका विषय अपरिणामी, स्वतःसिद्ध, परमपारिणामिक भावमय निज चैतन्यरस रहता है, सो स्थिर विषयके उपयोगसे ध्यान भी स्थिर होता है।

प्रश्न २३– तत्त्वज्ञानसे ध्यानकी कैसे सिद्धि होती है ?

उत्तर—बाह्य परिग्रहका आश्रय करके आभ्यन्तर परिग्रह इच्छाका प्रादुर्भाव होता है। इच्छाके उदयमें चित्तकी चञ्चलता रहती है। जब बाह्य परिग्रहका आश्रय छोड़ दिया जाता है तब बाह्य व आभ्यन्तर समस्त परिग्रहोंके अभावसे इच्छा समाप्त हो जाती है और इस निर्वाञ्छकताके फलमें स्वसंवेदनकी स्थिरता होती है। इस प्रकार इस उत्कृष्ट ध्यानकी साधिका निष्परिग्रहता है।

प्रश्न २४—वशचित्ततासे ध्यानकी सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर– चित्तके वश होनेसे अर्थात् भोग, प्रशंसा, कीर्ति आदिके आधीन चित्तके न होनेसे चित्तकी एकाग्रता रह सकती है। और इस एकाग्रतामें एक उपादेय तत्त्वकी ओर चिन्तन रुक जाता है। इस प्रकार वशचित्ततासे ध्यानकी सिद्धि होती है।

प्रश्न २५—परीषहविजय ध्यानकी सिद्धिमें कैसे कारण पड़ता है ?

उत्तर—परीषहोंके (उपसर्ग याने उपद्रवोंके) आने पर जो परीषहविजयी नहीं है उसे

विह्वलता हो ही जावेगी। विह्वल पुरुषके चित्तकी एकाग्रता नहीं रहती है, अतः ध्यान भी नहीं हो सकता। जो परीषहविजयी हैं वे मोहियोंके माने हुये संकटोंके उपस्थित होनेपर भी ज्ञानभावसे च्युत नहीं होते। इस प्रकार परीषहविजय ध्यानसिद्धिमें कारण होता है।

प्रश्न २६—तप, व्रत, श्रुतमें निरत सदा होनेका उपदेश किया, सो सदाका अर्थ क्या है ?

उत्तर—जब तक ध्यानसे च्युत होकर अपध्यानकी कभी भी संभावना न रहे तब तक इन तीनोंमें 'सदा निरत हो उन्हें' यह तात्पर्य सदा शब्दसे निकलता है।

प्रश्न २७– ध्यानकी प्राप्ति होनेपर क्या अनन्तकाल तक ध्यान बना रहता है ?

उत्तर– अन्तर्मुहूर्त परमोत्कृष्ट अभेदध्यान होनेपर परमात्मत्व, सर्वज्ञत्व प्रकट हो जाता है, पश्चात् अतीतध्यान अवस्था हो जाती है, फिर न तो ध्यान रहता है और न ध्यान की आवश्यकता ही होती है।

इस प्रकार द्रव्योंके यथार्थ परिज्ञानके फलभूत ध्यानका वर्णन करके ग्रन्थसमाप्तिपर पूज्य श्रीमन्नेमिचन्द्रजी सिद्धान्तिदेव अन्तमें श्रुतदेवताके प्रति भक्तिरूप अपनी लघुताकी सूचना करते हुये अन्तिम गाथा कहते हैं—

दव्वसंग्रहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदंपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणाभणियं जं ॥५८॥

अन्वव– तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा जं भणियं, इवं दव्वसंग्रह दोससंचयचुदा सुदंपुण्णा मुणिणाहा सोधयंतु।

अर्थ—अल्पज्ञानी नेमिचंद मुनिके द्वारा जो कहा गया है, ऐसे इस द्रव्यसंग्रहको समस्त दोषोंसे रहित और श्रुतमें परिपूर्ण, ऐसे मुनि प्रधान गुरुजन सिद्ध करें।

प्रश्न १—द्रव्यसंग्रहका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर– जिसने पर्यायोंरूपसे परिणमन किया व कर रहा है एवं करता रहेगा वह द्रव्य कहलाता है। ऐसे-ऐसे समस्त द्रव्योंका वर्णनात्मकसंग्रह जिसमें किया गया उस गाथाको द्रव्य-संग्रह कहा गया है।

प्रश्न २—समस्त द्रव्योंका जातिकी अपेक्षासे किस-किस प्रकार संग्रह किया जा सकता है ?

उत्तर– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन छः जातियोंमें तज्जातीय सर्वद्रव्योंका संग्रह हो जाता है।

प्रश्न ३– इन छः जातियोंका भी किन-किन विशेषताओंमें किन-किनका अन्तर्भाव हो सकता है ?

उत्तर— जीवत्व, मूर्तत्व, एक संख्यकत्व, सर्वगतत्व, कर्तृत्व, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, परिणमनहेतुत्व, अनन्तप्रदेशत्व, एकप्रदेशित्व, परिणामित्व, क्रियावत्व, विभावशक्तिमत्व, असंख्यातप्रदेशित्व, असंख्यातसंख्यक, अनन्तसंख्यक, नित्यत्व, कारणबहुप्रदेशित्व, अमूर्तत्व, जड़त्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व आदि विशेषतावों में १-१, २-२, ३-३, १, २, ३, ४, ५, ६ जातिके द्रव्योंका यथासम्भव संग्रह होता है।

प्रश्न ४— जीवत्व किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर— जीवत्व केवल जीवद्रव्यमें पाया जाता है, शेष ५ द्रव्योंमें जीवत्व कभी नहीं हो सकता। क्योंकि ज्ञान दर्शनरूप चैतन्य जीवमें ही होता है।

प्रश्न ५— मूर्तत्व किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर— मूर्तत्व केवल पुद्गल द्रव्योंमें ही पाया जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श— इन चारोंका सद्भावरूप मूर्तत्व शेष ५ द्रव्योंमें कभी नहीं पाया जाता।

प्रश्न ६— एक संख्यक द्रव्य कौन-कौन है ?

उत्तर— जो केवल एक ही है, जिनकी संख्या एकसे अधिक है ही नहीं, ऐसे द्रव्य ३ हैं— (१) धर्मद्रव्य, (२) अधर्मद्रव्य, (३) आकाशद्रव्य।

प्रश्न ७— सर्वगत्व किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर— सर्वगत्व याने सर्वव्यापीपना केवल आकाशद्रव्यमें है। आकाशद्रव्य सर्वव्यापी है। शेष ५ द्रव्योंमेंसे कोई भी द्रव्य लोकालोकव्यापक नहीं है।

प्रश्न ८— कर्तृत्व किन-किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर— अपने-अपने परिणमनसे परिणमना कर्तृत्व है, इस विवक्षासे तो कर्तृत्व सर्वद्रव्योंमें पाया जाता है, परन्तु कर्तृत्वकी जैसी प्रसिद्धि समझदारकी चेष्टामें है, ऐसे कर्तृत्व की अपेक्षा तो कर्ता एक जीवद्रव्य ही है। यह जीव यद्यपि परमशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टि बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप आदि सर्व भाव और पदार्थोंका अकर्ता है तथापि शुद्धनिश्चयनयसे जीव अनन्तज्ञानादिका कर्ता है, अशुद्ध निश्चयनयसे रागादि भावका कर्ता है, व्यवहारसे घट पट आदिका कर्ता माना गया है।

प्रश्न ९— गतिहेतुत्वकी विशेषता किन द्रव्योंमें पाई जाती है ?

उत्तर— गतिहेतुत्व केवल धर्मद्रव्यमें ही पाया जाता है। अन्य ५ द्रव्योंमें गतिहेतुत्व नहीं है।

प्रश्न १०— स्थितिहेतुत्व किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर— स्थितिहेतुत्व केवल अधर्मद्रव्यमें पाया जाता है।

प्रश्न ११— अवगाहनहेतुत्व किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर—अवगाहनहेतुत्व केवल आकाशद्रव्यमें पाया जाता है। शेष ५ द्रव्योंमें अवगाहनहेतुत्व नहीं है। क्योंकि सर्वद्रव्योंको अवकाश देनेमें समर्थ आकाशद्रव्य ही है।

प्रश्न १२—परिणमनहेतुत्व किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर— परिणमनहेतुत्व केवल कालद्रव्यमें ही पाया जाता है। क्योंकि सर्वद्रव्योंके परिणमनका साधारण निमित्तपना कालद्रव्यमें ही है।

प्रश्न १३—अनन्तप्रदेशवत्व किन-किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर— अनन्तप्रदेश केवल आकाशद्रव्यमें ही होते हैं, अतः अनन्त प्रदेशवत्व आकाशद्रव्यमें ही पाया जाता है।

प्रश्न १४— स्कन्ध भी तो अनेक अनन्तप्रदेशी होते हैं, उन्हें अनन्तप्रदेशी क्यों नहीं बताते ?

उत्तर—वे स्कन्ध अनन्त पुद्गलद्रव्योंका एक पिण्ड है, वस्तुतः उस स्कन्धमें जितने द्रव्य हैं वे सब एक-एक प्रदेशी हैं।

प्रश्न १५—एक प्रदेशित्व धर्म किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर—एक प्रदेशीपना पुद्गलद्रव्य (परमाणु) और कालद्रव्य—इन दो द्रव्योंमें पाया जाता है।

प्रश्न १६—परिणामित्व किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर—सूक्ष्मतासे तो परिणामित्व छहों द्रव्योंमें पाया जाता है, किन्तु यहाँ उस परिणामित्वकी विवक्षा है जिसमें आकार भी बदल जाता है। ऐसे विभावव्यञ्जन पर्यायकी विवक्षासे परिणामित्व केवल जीव और पुद्गलोंमें ही पाया जाता है।

प्रश्न १७—पुद्गल द्रव्य तो एकप्रदेशी है, फिर उसमें परिणामित्व कैसे हो सकता है ?

उत्तर— पुद्गलद्रव्य रूप, रस, गंध व स्पर्शकी अपेक्षा व्यक्तपरिणामी है और अनेक पुद्गलद्रव्योंका विलक्षण पिण्ड होनेसे एकरूपताका उपचार करके उसमें विभावव्यञ्जन पर्याय भी घटित होती है, अतः पुद्गलद्रव्यमें परिणामित्व घटित हो जाता है।

प्रश्न १८— क्रियावत्व धर्म किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— क्रियावत्व धर्म केवल जीव और पुद्गलद्रव्योंमें ही है। शेषके ४ द्रव्य अपने अवरुद्ध आकाशक्षेत्रको छोड़कर एक प्रदेशमें भी कहीं नहीं जा सकते हैं।

प्रश्न १९— विभावशक्तित्व धर्म किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर—विभावशक्तित्व धर्म जीव और पुद्गल— इन दो द्रव्योंमें ही है। जीव और पुद्गलमें दो द्रव्य ही अपने गुणोंमें विभावरूपसे परिणम सकते हैं अर्थात् नाना विषम विकारोंसे परिणम सकते हैं। शेषके ४ द्रव्योंका स्वभावपरिणमन ही होता है।

प्रश्न २०– असंख्यातप्रदेशी द्रव्य कौन-कौन हैं ?

उत्तर– जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य– ये तीन द्रव्य असंख्यातप्रदेशी हैं।

प्रश्न २१– असंख्यातसंख्यक द्रव्य कौन-कौन हैं ?

उत्तर– कालद्रव्य ही असंख्यातसंख्यक द्रव्य है अर्थात् कालद्रव्य असंख्यात हैं। प्रत्येक कालद्रव्य लोकाकाशके एक प्रदेशपर अवस्थित है और लोकाकाशके एक प्रदेशपर एक ही कालद्रव्य है। लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश होते हैं।

प्रश्न २२– अनन्तसंख्यात द्रव्य कौन-कौन हैं ?

उत्तर—जीव और पुद्गल द्रव्य– ये दो द्रव्य अनन्तसंख्यक हैं अर्थात् जीवद्रव्य अनन्तानन्त हैं और पुद्गलद्रव्य भी अनन्तानन्त हैं।

प्रश्न २३– नित्यत्व धर्म किन द्रव्योंमें पाया जाता है ?

उत्तर– यद्यपि सभी द्रव्य स्वतःसिद्ध और नित्य हैं, किन्तु यहाँ उस नित्यत्वकी विवक्षा है जिसमें व्यञ्जनपर्यायका न कभी परिवर्तन हुआ और न कभी होगा। इस नित्यत्व की विवक्षासे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य– इन चार द्रव्योंमें नित्यत्व है।

प्रश्न २४—कारणभूत द्रव्य कौन-कौन हैं ?

उत्तर—पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य– ये ५ द्रव्य चैतन्यशून्य होनेसे कर्तृत्वकी प्रसिद्धि नहीं है, अतः ये कारण ही हैं। अथवा ये पाँचों द्रव्य शरीर मन, वचन श्वासोच्छ्वास गति स्थिति अवगाह परिणमन आदि कार्यके करने वाले हैं, किन्तु जीव इन पांच द्रव्योंका कुछ कार्य नहीं करता, इस उपकारकी अपेक्षा ये ५ द्रव्य कारण हैं।

प्रश्न २५– बहुप्रदेशित्व धर्म किन-किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर– बहुप्रदेशित्व पुद्गल व कालद्रव्यको छोड़कर शेष चार द्रव्योंमें पाया जाता है।

प्रश्न २६– यदि बहुप्रदेशित्व पुद्गलद्रव्यमें नहीं है तो पुद्गलद्रव्य अस्तिकाय कैसे सिद्ध होगा ? यदि पुद्गलद्रव्य अस्तिकाय नहीं है तो अस्तिकायकी संख्या ४ ही कहना चाहिये, ५ नहीं कहना चाहिये ?

उत्तर—पुद्गलद्रव्य उपचारसे अस्तिकाय है। सजातीय अनेक द्रव्योंका एक पिण्डरूप स्कंध पर्याय पुद्गलद्रव्योंकी ही सम्भव है, अतः यह उपचार द्रव्यमें ही हो सकता है। अतः पुद्गलद्रव्यको अस्तिकाय भी माना है और बहुप्रदेशी भी माना है।

प्रश्न २७– अमूर्तत्व धर्म किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर– अमूर्तत्व धर्म पुद्गलद्रव्यको छोड़कर शेष ५ द्रव्योंमें है। क्योंकि इन पांच द्रव्योंमें रूप, रस, गंध, स्पर्श बिल्कुल सम्भव नहीं हैं।

प्रश्न २८—जड़त्वधर्म किन-किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— जड़त्वधर्म जीवको छोड़कर शेष ५ द्रव्योंमें है।

प्रश्न २९— अस्तित्वधर्म किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— अस्तित्वधर्म सभी द्रव्योंमें है, क्योंकि सभी द्रव्य सत्तावान हैं।

प्रश्न ३०— वस्तुत्वधर्म किन-किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— वस्तुत्वधर्म सभी द्रव्योंमें है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपनेमें अपनी शक्तियोंको बसाये हैं और अन्य द्रव्योंकी शक्तियोंका त्याग किये हुए हैं।

प्रश्न ३१— द्रव्यत्वधर्म किन-किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— द्रव्यत्वधर्म भी सब द्रव्योंमें है। क्योंकि सभी द्रव्य परिणमनशील होनेसे अपनी-अपनी पर्यायोंको प्रकट करते रहते हैं।

प्रश्न ३२— अगुरुलघुत्व धर्म किन-किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— अगुरुलघुत्व गुण भी सर्व द्रव्योंमें है, क्योंकि सभी द्रव्य षड्गुण हानिवृद्धिरूप परिणमते हैं।

प्रश्न ३३— प्रदेशवत्व धर्म किन-किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— प्रदेशवत्व धर्म भी सर्वद्रव्योंमें है। प्रदेशके बिना द्रव्यकी सत्ता कहाँ रहेगी ? चाहे एकप्रदेशी द्रव्य हो, चाहे बहुप्रदेशी द्रव्य हो, प्रदेश तो उनका होता ही है।

प्रश्न ३४— प्रमेयत्व धर्म किन-किन द्रव्योंमें है ?

उत्तर— प्रमेयत्व धर्म भी सर्वद्रव्योंमें पाया जाता है, क्योंकि सभी द्रव्य किसी न किसीके द्वारा ज्ञेय, प्रमेय हैं। सर्वज्ञदेवके ज्ञानमें तो सभी द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायें युगपत ज्ञात हो जाती हैं।

प्रश्न ३५— उक्त प्रकारोंसे द्रव्योंके ज्ञान करनेसे लाभ क्या होता है ?

उत्तर— अनन्तधर्मात्मक स्वतःसिद्ध सद्भूत स्वतन्त्ररूपी द्रव्योंके परिज्ञानसे संयोगबुद्धि नहीं रहती है, अतः आकुलताका एकमात्र कारणभूत मोह भी नष्ट हो जाता है। मोहके सर्वथा नष्ट होनेपर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द आदिका पूर्ण स्वाभाविक गुणविकास हो जाता है। यही स्थिति सर्वोपरि लाभ वाली है।

प्रश्न ३६— क्या द्रव्यसंग्रहके कर्ताको अपनी कृतिमें कुछ संशय था, जिससे अन्य मुनीश्वरों द्वारा शुद्ध किये जानेकी अपेक्षा करनी पड़ी ?

उत्तर— द्रव्यसंग्रहके रचयिता पूज्य श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवको इन द्रव्यों व तत्त्वों के विषयमें गूढ़ श्रद्धा थी, संशयका तो अवकाश ही नहीं था, परन्तु ज्ञानी जनोंकी और श्रुतदेवताकी भक्तिसे ओतप्रोत ग्रन्थकर्तानें अपनी लघुता और भक्ति प्रदर्शित की है।

प्रश्न ३७— "दोससंचयचुदा" इस पदसे किन दोषोंसे रहित मुनिनाथका ग्रहण है ?

उत्तर-- सहजसिद्ध परमात्मतत्त्व और कार्यपरमात्मतत्त्व तथा कार्यपरमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके उपायभूत द्रव्यस्वरूप, जीवादि सात तत्त्वोंके ज्ञानमें, जिनके न तो संशय है, न विपर्यता है और न अनध्यवसाय है तथा जिनके रागद्वेषादि भी अति मंद हैं, ऐसे मुनिनाथ राग, द्वेष, संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय---इन दोषोंसे रहित कहे गये हैं।

प्रश्न ३८-- "सुदंपुण्णा" इस पदसे कैसे श्रुतमें पूर्ण मुनिनाथोंको कहा गया है ?

उत्तर--- ग्रंथकर्ताके समयमें उपलब्ध परमागमके ज्ञानसे पूर्ण व उस परमागमके ज्ञानके अवलंबनसे संजात निरपेक्ष निजशुद्धात्मतत्त्वके संवेदनसे युक्त मुनिनाथोंको "सुदंपुण्णा" शब्दसे कहा गया है।

ऐसे मुनिनाथ द्रव्यसंग्रहका शोधन करके, इस प्रकार भक्ति और लघुता प्रदर्शन करके ग्रंथकर्ता श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवने मोक्षमार्ग रत्नत्रयका प्रतिपादन करने वाले तीसरे अध्यायकी समाप्तिके साथ द्रव्यसंग्रह नामक ग्रंथ सम्पूर्ण किया।

यह टीका सन् १९५७ के देहरादून वर्षायोगमें सम्पूर्ण हुई।

॥ द्रव्यसंग्रह--प्रश्नोत्तरी टीका समाप्त ॥